कथा भारती

उर्दू कहानियां

(एक)

कथा भारती

उर्दू कहानियां

(एक)

कृश्न चंदर
राजेंद्र सिंह बेदी
इस्मत चुग़ताई
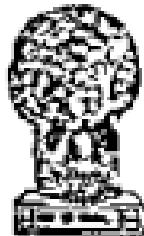
अनुवादक
लक्ष्मीकांत वर्मा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नयी दिल्ली

प्रस्तावना

भारत एक विशाल देश है। सांस्कृतिक दृष्टि से एक होते हुए भी इसे अभी एकता के उन सूत्रों को और मजबूत बनाना है जो इसे एक शक्तिशाली और प्रगतिशील राष्ट्र बना सकें।

हमारा भारत एक बहुभाषी देश है। संसार के शायद किसी भी देश में भाषाओं की संख्या इतनी अधिक नहीं है जितनी हमारे देश में। लेकिन दुर्भाग्य से अपने पड़ोसी प्रदेश की भाषा या भाषाओं के प्रति हम लोगों में बहुत कम दिलचस्पी दिखायी देती है। उनकी सांस्कृतिक व साहित्यिक संपदा की जानकारी तो हमें और भी कम है। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि यूरोपीय भाषाओं के साहित्य और समाज की जितनी जानकारी हमें है उतनी अपने देश की भाषाओं के साहित्य की नहीं है।

देश की भावनात्मक और सांस्कृतिक एकता के लिए यह नितांत आवश्यक है कि हमारे नागरिक देश की विभिन्न भाषाओं की उत्तम साहित्यिक कृतियों से अच्छी तरह परिचित हों और उनके माध्यम से विभिन्न प्रदेशों के रहन-सहन, आचार-विचार और सांस्कृतिक भावनाओं आदि का भी परिचय प्राप्त करें।

पश्चिमी जगत में अनेक राष्ट्र हैं, स्वतंत्र हैं, और हर राष्ट्र की अपनी अलग भाषा है, तब भी वहां के लोगों को एक-दूसरे के साहित्य और चिंतन का जितना सूक्ष्म और निरंतर ज्ञान है उतना हमें अपनी भाषाओं का नहीं है। यह एक विचित्र विरोधाभास है। यूरोप की किसी भी भाषा में किसी भी श्रेष्ठ पुस्तक का सभी भाषाओं में तुरंत अनुवाद हो जाता है! भारत एक राष्ट्र है, लेकिन हम देखते हैं कि हममें यह जानने की विशेष जिज्ञासा नहीं है कि हमारी पड़ोसी भाषाओं में क्या हो रहा है। यह स्थिति बदल तो रही है, लेकिन बहुत धीमी गति से।

इस स्थिति को दृष्टि में रखकर भारत सरकार ने हर भारतीय भाषा के समकालीन साहित्य की चुनी हुई पुस्तकों का अन्य सभी भाषाओं में अनुवाद करवाने की योजना बनायी है। इसके अंतर्गत ऐसी ही पुस्तकों का चुनाव किया जायेगा जो साधारण पाठक के लिए रोचक हों, अर्थात कहानियां, उपन्यास, मनोरंजक

भूमिका

उर्दू साहित्य के तीन स्रोत हैं : संस्कृत और प्राकृत का स्रोत, अरबी और फारसी का स्रोत तथा अंग्रेज़ी और अन्य यूरोपीय भाषाओं के आधार। उर्दू साहित्य की एशियाई उत्तराधिकार में जन-कहानियों, साहित्यिक कथाओं और बड़ी काव्यात्मक तथा गद्यात्मक गल्पों के बीच-बीच में छोटी-छोटी उप-कथाओं की अमूल्य निधि मिलती है।

जीवन और साहित्य में परंपरा और नये परिवर्तनों का एक क्रम मिलता है। इन दोनों के बीच कभी टकराव होता है और कभी सामंजस्य और समन्वय होता है। वर्तमान उर्दू कहानियों की पूंजी प्राचीन परंपराओं और नये परिवर्तनों की दौलत से भरी हुई है।

यदि हम खोज की दृष्टि को दूर तक ले जायें तो हम देखेंगे 1857 से पहले भी जो उर्दू साप्ताहिक समाचार-पत्र उत्तरी और दक्षिणी भारत के महत्वपूर्ण केंद्रों से प्रकाशित होते थे उनके समाचारों को भी कहानी का रूप दिया जाता था और कभी-कभी छोटे-छोटे किस्से भी प्रकाशित होते रहते थे। इस क्षेत्र में मास्टर रामचंद्र देहलवी, संपादक, "फ़वायदुलनाज़रीन" की सेवाएं विशेष महत्व रखती हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पश्चिमी कहानियों ने उर्दू की छोटी कहानियों के रंग-ढंग, काट-छांट और संगठन-संरचना को बीसवीं शताब्दी में स्पष्ट रूप से प्रभावित किया। इस शती के प्रारंभ में रोमानियत का ज़ोर रहा। यों तो पश्चिम में भी रोमानी प्रवृत्ति पहले विकसित हुई और उसका प्रभाव उर्दू कहानियों पर पड़ा। दूसरी बात यह कि उर्दू साहित्य की सामान्य प्रवृत्ति और विशेषकर दास्तानों और किस्सों-कहानियों की मुख्य प्रकृति रोमानी रही। रोमानियत के बाद यूरोप में यथार्थवाद की प्रवृत्ति प्रारंभ हुई और उर्दू की कहानियों की दुनिया में भी इसका प्रतिबिंब दिखायी दिया! यह कहना उचित न होगा कि यथार्थवादिता ने रोमानियत को जड़ से उखाड़ फेंका। बीसवीं शताब्दी में बहुत समय तक रोमानियत और यथार्थवादिता की धारायें साथ-

साथ समानांतर बहती रही और कभी ऐसा भी हुआ कि एक प्रवृत्ति ने दूसरी प्रवृत्ति को भी प्रभावित किया। साहित्य और जीवन के बीच कोई ऐसी लोहे की दीवार नही होती जिसे पार न किया जा सके। एक व्यापक दृष्टिकोण यह भी है कि यदि कलाकार यथार्थ की गहराइयो मे डूबे तो रोमानियत की नवीनतम धारायें मिलेंगी। यथार्थ की गहरी पर्तें अपने भीतर बड़ा रोमानी आश्चर्य रखती है और नयी अभिव्यक्ति पाठकों की रोमानी भावनाओ को जगाती है। उसी तरह रोमानियत का एक अटल सत्य है। एक व्यापक दृष्टि रखने वाला कलाकार रोमानियत की स्थिति मे भी यथार्थ के चमत्कार देखता और दिखाता है।

उर्दू कहानी की दुनिया को एक और महत्त्वपूर्ण विश्वव्यापी आदोलन ने प्रभावित किया। उसे प्रगतिशील आदोलन कहते हैं। सच पूछिये तो इस आदोलन का प्रारभ विश्व साहित्य मे रूसी जन-क्राति मे पहले ही हो चुका था। रूसी, फ्रासीसी, अंग्रेज़ी और उर्दू साहित्य मे 1918 से पहले ही प्रगतिशील प्रवृत्तिया मिलती है लेकिन इसमें भी कोई सदेह नही, प्रगतिशील आदोलन का विधिपूर्वक सगठन रूस मे साम्यवादी जन-क्राति के बाद हुआ। इस आदोलन के प्रवर्तकों ने आलोचनात्मक, सामाजिक, क्रातिकारी यथार्थ को साहित्य के लिए अनिवार्य घोषित किया। उर्दू कहानी मे इस आदोलन की गूज पूरे जोर-शोर से 1936 से सुनायी दे रही है और आज तक प्रगतिशील कहानीकार अपने सृजनात्मक कार्य मे सलग्न हैं, लेकिन 1936 से लेकर 1946 तक प्रगतिशीलता की खेती मे बहुत ही संपन्न उपलब्धिया हुई। इस बीच और इसके बाद इस आदोलन का विभिन्न दिशाओ से विरोध भी हुआ।

प्रगतिशील आदोलन मे सम्मिलित सभी कहानीकार साम्यवादी या समाजवादी न थे। उर्दू प्रगतिशीलता का दायरा (स्पेक्ट्रम) विविधतापूर्ण है परतु हम प्रगतिशील लेखकों और कवियो के बीच कुछ सामान्य मूल्य भी पाते है। एक बुनियादी बात की चर्चा पहले ही हो चुकी है। इसके अतिरिक्त हमारे प्रगतिशील लेखक या कवि राष्ट्र-प्रेमी होने के साथ-साथ फासिस्ट विरोधी और साम्राज्य विरोधी थे। यही रग हमारे उर्दू कहानीकारो पर भी चढ़ा हुआ था!

प्रगतिशीलता के चर्मोत्कर्ष काल मे ही उर्दू कहानी मे मनोवैज्ञानिक विश्लेपण

की गहरी प्रवृत्ति भी उभरी और बाद मे इस मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने रहस्यवादिता के साथ मिलकर 'आधुनिकता' की एक और प्रवृति पैदा की। आधुनिकता एक सीमा तक प्रगतिशीलता के तीव्र संगठन की प्रतिक्रिया भी है। आजकल नवजवान उर्दू कहानीकारो की एक बड़ी सख्या आधुनिकता पर मरती है लेकिन वर्तमान युग मे हम उर्दू कहानीकारो की उपरोक्त प्रवृत्तियो और आदोलनों की रचनात्मक उपलब्धिया भी देखते रहे हैं।

उर्दू रोमानी कहानी के प्रतिनिधि कहानीकारो की सूची मे हम सज्जाद हैदर 'यलदरम', न्याज फतेहपुरी, लतीफ अहमद अकबराबादी, हिजाब, इम्त्याज अली ताज, मजनू गोरखपुरी, मीरज़ा अदीब, कुर्रतुल ऐन हैदर आदि के नाम आते है। इनके अतिरिक्त और भी कहानीकार रोमानी रग में लिखते रहे हैं। यथार्थ-वादिता के अगुओं मे प्रेमचद है। उनके साथ-साथ सुदर्शन, आज़म कुरैवी, अली अब्बास हुसैनी और बहुत से अच्छे कहानीकार उर्दू दुनिया मे उभरे। दिलचस्प बात यह है कि यथार्थवादिता के आदोलन ने रोमानियत को भी प्रभावित किया और उनमे से कई एक किसी-न-किसी सीमा तक सामाजिक यथार्थवाद की तरफ आकृष्ट हुए। प्रेमचद और अली अब्बास हुसैनी की अनेक कहानिया यह सिद्ध कर देती हैं कि इन दोनो कलाकारो में प्रगतिशीलता की धारा मे भी अपनी कला की नाव चलाये रखी। उर्दू कहानी की दुनिया मे प्रगतिशील आदोलन ने बहुत अच्छे-अच्छे कलाकारो को जन्म दिया है, जैसे—सआदत हसन मटो, अख्तर हुसैन रायपुरी, रशीद जहा, कृश्न चदर, राजेंद्र सिंह बेदी, इस्मत चुगताई, अहमद नदीम कासिमी, मुमताज़ मुफ्ती, ह्यातुल्लाह, असारी आदि! इनके अतिरिक्त प्रगतिशील आदोलन के चर्मोत्कर्ष काल मे प्रगतिशीलता न केवल उर्दू साहित्य, काव्य पर छायी हुई थी बल्कि जहा तक मेरी जानकारी है अन्य भारतीय भाषाओ के साहित्य, काव्य की भूमि पर भी प्रगतिशील घटायें झूम रही थी।

साहित्य और जीवन मे प्रवृत्तियो, युगो और प्रतिष्ठानो की निश्चित अनुशासित सीमायें निर्धारित नही की जा सकती। मेरे विचार में उर्दू कहानी मे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा समन्वय और एक सीमा तक आधुनिकता की प्रवृत्ति प्रगतिशीलता के चर्मोत्कर्ष काल मे ही प्रारंभ हो चुकी थी। बल्कि कई लब्ध-

प्रतिष्ठित, प्रगतिशील कहानीकार मानवीय संवेदनाओं की पर्तों, कोणों, और अंतरालों पर दृष्टिगोचर करा देने वाला प्रकाश डालने लगे। इस संदर्भ में राजेंद्र सिंह बेदी, सआदत हसन मंटो, कृश्न चंदर, इस्मत चुगताई और मुमताज़ मुफ्ती की कई कहानियां मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कीर्तिमान कही जा सकती हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की विशेष प्रवृत्ति के प्रेरक हसन अस्करी और मोहसिन अज़ीमाबादी हैं। हसन अस्करी अविवेक से उभरने वाली लहरों को विवेक के स्तर पर बहती हुई स्थिति में प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानी 'हरामज़ादी' इसका अच्छा उदाहरण है लेकिन मोहसिन अज़ीमाबादी मनोवैज्ञानिक समस्याओं को अपनी कहानियों का शीर्षक बनाकर कहानी लिखते हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'अनोखी मुस्कुराहट' अपना प्रतिनिधि स्थान रखती है जो शहीद अहमद देहलवी के प्रकाशित संग्रह 'रेज़ा-ऐ-मीना' की एक महत्वपूर्ण कहानी है। यों तो कुर्रतुल ऐन हैदर की प्रारंभिक कहानियों में अविवेकात्मक और विवेकात्मक धाराओं की स्वाभाविक विशृंखलता पायी जाती है लेकिन वह उन्माद से चेतना का जन्म देकर उठ जाती है।

यह बात भी स्पष्ट है कि प्रत्येक अच्छा कहानीकार उसी समय सफल हो सकता है जब वह पार्थिवकता और नैसर्गिकता दोनों से भली-भांति परिचित हो और चरित्र-चित्रण, घटना-संगठन, और वातावरण-संयोजन में उस जानकारी का कलात्मक उपयोग करे। मेरे विचार से राजेंद्र सिंह बेदी को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त है और वह अपने इस ज्ञान का बड़े ही कलात्मक ढंग से प्रयोग करते हैं, हां उनकी एकाध कहानियों में कुछ झोल रह गया है। मोहसिन अज़ीमाबादी की कला पर उनका मनोविज्ञान बहुधा प्रधान हो जाता है लेकिन मंटो, मुमताज़ मुफ्ती, कृश्न चंदर और इस्मत चुगताई बहुत कम इन दुर्बलताओं के शिकार हैं।

चूंकि प्रस्तुत संकलन में कृश्न चंदर, बेदी और इस्मत चुगताई की कहानियां सम्मिलित हैं इसलिए उनके विषय में कुछ विस्तार से कहना चाहता हूं। इसके पहले मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि हमारे अन्य कलाकारों की न तो सृजन-शक्ति मुर्दा हुई है और न उनकी परंपरा के गहरे प्रभाव उर्दू कहानी की दुनिया से मिटे हैं। आज भी ताज़गी, वृद्धि और वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति के साथ

कृश्न चन्दर, बेदी और इस्मत उर्दू कहानी के पुष्प-समुच्चय के सर्वश्रेष्ठ पुष्प हैं। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों के चुनाव में मतभेद हो सकते हैं फिर भी इस संकलन में संकलित कहानियां हमारी उर्दू के तीन महान कलाकारों की प्रथम श्रेणी की कहानियां हैं।

अध्यक्ष, उर्दू विभाग,
पटना विश्वविद्यालय

—अख़्तर ओरेन्वी

लेखक-परिचय

1. कृश्न चंदर

कृश्न चंदर उर्दू के अति प्रसिद्ध कहानीकार है और इनकी कहानियों की एक बहुत बड़ी संख्या प्रथम श्रेणी में गिनी जाती है। कृश्न चंदर जीवन-आस्था और मानव सहानुभूति के कथाकार है। इनकी कथा-शैली में अजब प्रवाह और पकड़ है। इसमें मिठास, रोशनी और सुगंध है। यह जिंदगी के काले पहलुओं को भी उसी स्तर से प्रकट करते हैं।

2. राजेंद्र सिंह बेदी

राजेंद्र सिंह बेदी भी उर्दू के एक बहुत महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। इनकी कला बहुत बनी-सवरी और पुष्ट है। इनकी कहानियों में संजीदगी और गहराई पायी जाती है। वेदी प्रयम श्रेणी के हकीकत-पसंद हैं और इनकी शैली, इनकी कला, इनके स्वभाव के अनुसार है। यह इन्सान के यथार्थ जीवन का विश्लेषण बड़े कलात्मक ढंग से करते हैं।

3. इस्मत चुग़ताई

इस्मत चुग़ताई एक उच्च-कोटि की कहानी-लेखिका हैं और इन्होंने उर्दू को बहुत अच्छी-अच्छी कहानियां दी हैं। इनका जीवन के यथार्थ का अध्ययन अति गहरा है और यह मानव मनोविज्ञान की गुत्थियों से भी अच्छी तरह परिचित है। इस्मत की शैली में बड़ी कुशलता है और औरतों का माहौल और ज़बान पेश करने में यह बेजोड़ है।

कृश्न चंदर, बेदी और इस्मत उर्दू कहानी के बड़े खूबसूरत फूल हैं। इस संग्रह में शामिल इनकी कहानिया हमारी उर्दू ज़बान और अदब के तीन बहुत बड़े और प्रथम श्रेणी के कलाकारों की नुमाइंदगी करती है।

पूरे चांद की रात

अप्रैल का महीना था। बादाम की डालियां फूलों से लद गयी थी और वायु में बर्फीली ठंडक के बावजूद वसंत ऋतु की भी सुंदरता आ गयी थी। ऊंची-ऊंची चोटियों के नीचे मखमल-जैसी दूब पर कहीं-कहीं बर्फ के टुकड़े सफेद फूलों की तरह खिले हुए नजर आ रहे थे। अगले मास तक ये सफेद फूल इसी दूब में समा जायेंगे और दूब का रंग गहरा सब्ज हो जायेगा, और बादाम की शाखाओं पर हरे-हरे बादाम पुखराज के नगीनों की तरह झिलमिलाने लगेंगे। और नीले-नीले पर्वतों के चेहरों से कुहरा छंटता चला जायेगा, और इस झील के पुल के पार पगडंडी की धूल मुलायम भेड़ों की जानी-पहचानी 'बा-आ' से झनझना उठेगी, और फिर इन ऊंची-ऊंची चोटियों के नीचे चरवाहे भेड़ों के शरीरों पर से शरद ऋतु की पली हुई मोटी गफ ऊन कतरते जायेंगे और गीत गाते जायेंगे।

लेकिन अभी अप्रैल का महीना था। अभी चोटियों पर पत्तियां न फूटी थीं। अभी पर्वतों पर बर्फ का कुहरा था। अभी पगडंडी की छाती भेड़ों के स्वर से न गूंजी थी। अभी समल की झील पर कमल के दीप न जले थे। झील का गहरा सब्ज पानी अपनी छाती के भीतर उन लाखों रूपों को छिपाये न बैठा था जो वसंत ऋतु के आगमन पर एकाएक इसके स्तर पर एक सरल, मृदु हंसी की तरह खिल उठेंगे। पुल के किनारे-किनारे बादाम के पेड़ों की शाखाओं पर कलियां चमकने लगी थीं। अप्रैल की अंतिम रात्रि में, जब बादाम के फूल जागते हैं और वसंत ऋतु के सूचक बनकर झील के पानी में अपनी नौकायें तैराते हैं, फूलों के नन्हे-नन्हे शिकारे पानी के स्तर पर नृत्य करते हुए वसंत ऋतु की प्रतीक्षा में हैं।

पुल के जंगले का सहारा लेकर मैं देर से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। तीसरा पहर समाप्त हो गया था और संध्या उतर आयी थी। वुल्लर झील को जाने वाले हाउस-बोट पुल की पथरीली महराबों के बीच में से निकल गये थे और अब क्षितिज की रेखा पर कागज की नाव की तरह कमजोर और बेबस नजर आ रहे थे। संध्या की लालिमा सुरमई से स्याह होती गयी, यहां तक कि पगडंडी भी बादाम के पेड़ों की पंक्ति की ओट में सो गयी और फिर रात की चुप्पी में पहला सितारा किसी पथिक

बादाम के पहले फूलों का खुशी भरा त्योहार है। आज उसने तुम्हारे लिए अपनी सहेलियां, अपने अब्बा, अपनी नन्ही बहन, अपने बडे भाई—सबको धोखे में रखा है, क्योंकि आज पूरे चाद की रात है और बादाम के श्वेत और शीतल फूल बर्फ के गालों की तरह चारो तरफ फैले हुए हैं। और कश्मीर के गीत, बच्चे के दूध की तरह, उसकी छातियों में उमड आये हैं। तुमने उसकी गर्दन में मोतियों की यह मनलडी देखी? यह मुर्ख सतलडी उसके गले मे डाल दी गयी और उसे कहा गया—'तू आज रात-भर जागेगी। आज कश्मीर की बहार की पहली रात है। आज तेरे गले से कश्मीर के गीत यो खिलेंगे जैसे चादनी रात मे केसर के फूल खिलते है,—ले, यह मुर्ख सतलडी पहन ले।'

चाद ने यह सब कुछ उसकी हैरान पुतलियों से झांककर देखा। फिर एकाएक किसी पेड पर एक बुलबुल उठी, दूर नौकाओं मे दीपक झिलमिलाने लगे और चोटियों से परे बस्ती में गीतों का मध्यम स्वर उभरा। गीत और बच्चों के कहकहे और पुरुषों की भारी आवाजें और बच्चों का मीठा-मीठा चीत्कार। छतों से जीवन का धीरे-धीरे उठता हुआ धुआ और सध्या के खाने की महक। मछली और भात और कडम के साग का नरम और नमकीन स्वाद और पूरे चांद की रात का पूरा यौवन। मेरा क्रोध धुल गया। मैंने उसका हाथ अपने हाथ मे ले लिया और उससे कहा, "आओ, चले झील पर।"

पुल गुजर गया। पगडडी गुजर गयी। बादाम के वृक्षों की पक्ति समाप्त हो गयी। तल्ला गुजर गया। अब हम झील के किनारे-किनारे चल रहे थे। झाडियो मे मेढक टर्रा रहे थे। मेढक और झींगुर और बीडे। उनका ऊटपटांग शोर भी एक सगीत बन गया था। एक स्वप्नमय वातावरण, सोई हुई झील के बीच मे चाद की नाव खडी थी निश्चेष्ट चुपचाप, प्रेम की प्रतीक्षा मे—हजारों साल से इसी प्रकार खडी थी, मेरे और उसके प्रेम की प्रतीक्षा मे। तुम्हारी और तुम्हारे प्रेमी की मुस्कान की प्रतीक्षा मे। मानव के मानव को चाहने वाली आकाक्षा की प्रतीक्षा मे। यह पूरे चाद की सुदर, निर्मल रात किसी कुमारी के अछूते शरीर की तरह प्रेम के पवित्र स्पर्श की प्रतीक्षा मे है।

नाव खूबानी के एक पेड से बंधी थी जो बिलकुल झील के किनारे उगा हुआ था। जहां पर जमीन बहुत नरम थी और चादनी पत्तों की ओट से छन-छन

कर आ रही थी और मेंढक हौले-हौले गा रहे थे और झील का पानी बार-बार किनारे को चूमता जाता था और बार-बार उसके चुंबनो का स्वर हमारे कानों मे पड रहा था। मैंने अपने दोनों हाथ उसकी कमर मे डाल दिये और उसे जोर से अपनी छाती से लगा लिया। झील का पानी बार-बार किनारे को चूम रहा था। पहले मैंने उसकी आँखें चूमी और झील के स्तर पर लाखो कमल खिल उठे। फिर मैंने उसके गाल चूमे और निर्मल वायु के कोमल झोंके एकाएक ऊंचे होकर सैकडों गीत गाने लगे। फिर मैंने उसके होंठ चूमे और लाखों मंदिरो, मसजिदों और गिरजाओं मे प्रार्थनाओं का शोर उठा और धरती के फूल और आकाश के तारे और वायु मे उड़ने वाले बाज सब मिलकर नाचने लगे। फिर मैंने उसकी ठोडी को चूमा और फिर उसकी गर्दन को, और कमल खिलते-सिमटते गये, कलियों की तरह। और गीत उभर-उभरकर मौन होते गये और नृत्य धीमा पडता-पड़ता थम गया। अब वही मेंढकों की आवाज थी, वही झील के नरम-नरम चुंबन, और कोई छाती से लगा सिसकियां भर रहा था।

मैंने धीरे से नाव खोली। वह नाव में बैठ गयी। मैंने चप्पू अपने हाथ में ले लिया और नाव को खेकर झील के मध्य मे ले गया। यहा नाव आप ही आप खड़ी हो गयी। न इधर बहती थी और न उधर। मैंने चप्पू उठाकर नाव में रख दिया। उसने पोटली खोली। उसमें से जरदालू निकाल कर मुझे दिये और स्वयं भी खाने लगी।

जरदालू सूखे थे और खट्टे-मीठे।

वह बोली, "ये पिछली बहार के हैं।"

मैं जरदालू खाता रहा और उसकी ओर देखता रहा।

वह धीरे से बोली, "पिछली बहार में तुम न थे।"

पिछली बहार में मैं न था और जरदालू के पेड़ फूलों से लद गये थे और जरा-सी टहनी हिलाने पर टूटकर मोतियों की तरह बिखर जाते थे। पिछली बहार में मैं न था और जरदालू के पेड फलों से लदे-फदे थे। हरे-हरे जरदालू। बेहद खट्टे जो नमक-मिर्च लगाकर खाये जाते थे और जबान सी-सी करती थी और तार बहने लगती थी, और फिर भी खट्टे जरदालू खाये जाते थे। पिछली बहार में मैं न था और ये हरे-हरे जरदालू पककर पीले, सुनहरे और लाल

होते गये। और डाल-डाल में प्रसन्नता के लाल फूल भूल रहे थे और प्रसन्नतापूर्ण आखें, चमकती हुई सरल आखें, उन्हे भूमता हुआ देखकर नृत्य-सा करने लगती थी। पिछली बहार में मैं न था·· और सुंदर हाथो ने लाल-लाल जरदालू एकत्रित कर लिये। सुदर होठो ने उनका ताजा रस चूसा और उन्हें अपने घर की छत पर ले जाकर मूखने के लिए डाल दिया। जब ये ज़रदालू सूख जायेंगे, जब एक बहार गुजर जायेगी और दूसरी बहार आने के लिए होगी, तो मैं आऊगा और इनके स्वाद से प्रसन्न हो सकूगा।

जरदालू खाकर हमने सूखी हुई खूबानिया खायी। खूबानी पहले तो कुछ इतनी मीठी मालूम न होती, लेकिन जब मुह के लुआब में घुल जाती तो शहद और शक्कर का स्वाद देने लगती।

"नरम-नरम, बहुत मीठी हैं ये," मैंने कहा।

उसने दातों से एक गुठली को तोड़ा और खूबानी का बीज निकालकर मुझे दिया, "खाओ।"

बीज बादाम की तरह मीठा था।

"ऐसी खूबानियां मैंने कभी नहीं खायी।" उसने कहा, "यह हमारे आंगन का पेड़ है। हमारे यहा खूबानो का एक ही पेड़ है, मगर इतनी बडी, इतनी मीठी खूबानियां होती हैं इसकी कि मैं क्या कहू। जब खूबानियां पक जाती हैं, तो मेरी सब सहेलियां इकट्ठी हो जाती हैं और खूबानियां खिलाने को कहती हैं। पिछली बहार में···"

और मैंने सोचा, पिछली बहार मे मैं न था मगर खूबानी का पेड़ आंगन में इसी तरह खड़ा था। पिछली बहार मे वह कोमल-कोमल पत्तों से भर गया था, फिर उसमें कच्ची खूबानियों के सब्ज और नुकीले फल लगे थे। अभी उसमे कच्ची खूबानियां पैदा हुई थीं और ये कच्चे खट्टे फल दुपहर के खाने के साथ चटनी का काम देते थे। पिछली बहार में मैं न था और इन खूबानियों मे गुठलिया पैदा हो गयी थी और खूबानियों का रंग अपने स्वाद मे हरे बादामों को मात करता था। पिछली बहार में मैं न था और ये लाल-लाल खूबानियां जो अपनी रगत मे कश्मीरी युवतियों की तरह सुदर थीं और वैसी ही रसीली, हरे-हरे पत्तों के झूमरो से झांकती नजर आती थी। फिर अल्हड़ लड़कियां आंगन में नाचने लगी और

हर बात पूरी हो गयी है। कल तक पूरी न थी, लेकिन आज पूरी है।"

उसने भुट्टा मेरे मुह से लगा दिया। उसके होंठो का गरम-गरम सहज स्पर्श अभी तक भुट्टे पर था। मैंने कहा, "मैं तुम्हें चूम लू ?"

वह बोली, "हुश। ··नाव डूब जायेगी।"

"तो फिर क्या करें ?" मैंने पूछा।

वह बोली, "डूब जाने दो।"

वह पूरे चाद की रात मुझे अब तक नही भूलती। मेरी आयु अब सत्तर वर्ष के लगभग है, परतु वह पूरे चाद की रात मेरे मस्तिष्क मे उसी तरह चमक रही है जैसे वह अभी कल आयी थी। ऐसा पवित्र प्रेम मैंने आज तक न किया होगा। उसने भी न किया होगा। वह जादू ही कुछ और था जिसने पूरे चाद की रात को हम दोनो को एक-दूसरे मे यो मिला दिया कि वह फिर घर न गयी। उसी रात मेरे साथ भाग आयी। और हम पाच-छह दिन प्रेम में खोये हुए, बच्चो की तरह इधर-उधर जगलो मे, नदी-नालो के किनारे अखरोटो की छाया तले घूमते रहे। फिर मैंने उसी झील के किनारे, एक छोटा-सा घर खरीद लिया और उसमे हम दोनों रहने लगे। कोई एक मास के बाद मैं श्रीनगर गया और उससे यह कहकर गया कि तीसरे दिन लौट आऊगा। तीसरे दिन मैं लौट आया, लेकिन क्या देखता हू कि वह एक नौजवान से घुल-मिलकर बातें कर रही है। वे दोनो एक ही रकाबी मे खाना खा रहे है। एक-दूसरे के मुह मे कौर डालते है और हसते जाते हैं। मैंने उन्हे देख लिया, लेकिन उन्होंने मुझे नही देखा। वे अपने-आप मे इतने खोये हुए थे कि वे किसी भी दूसरी ओर न देख रहे थे, और मैंने सोचा कि यह पिछली बहार या उससे भी पिछली बहार का प्रेमी है, जब मैं न था, और शायद आगे और भी कितनी ही ऐसी बहारें आयेंगी। कितनी ही पूरे चाद की रातें, जब मुहब्बत एक बदकार स्त्री की तरह बेकाबू हो जायेगी और नग्न होकर नृत्य करने लगेगी। आज तेरे घर मे खिजा आ गयी है, जैसे हर बहार के बाद आती है। अब तेरा यहा क्या काम ? यह सोच मैं उनसे मिले बिना ही वापस चला गया और फिर अपनी पहली बहार से कभी नही मिला।

और अब मैं अड़तालीस वर्ष के बाद लौटकर आया हूं। मेरे बेटे मेरे साथ हैं। मेरी पत्नी मर चुकी है, परतु मेरे बेटो की पत्निया और उनके बच्चे मेरे साथ

है। और हम लोग सैर करते-करते समल झील के किनारे आ निकले हैं, और अप्रैल का महीना है, और तीसरे पहर से सध्या हो गयी है और मैं देर तक पुल के किनारे खडा बादाम के पेडों की पक्तिया देखता जाता हूं, और शीतल वायु में सफेद फूलों के गुच्छे लहराते जाते हैं और पगडंडी की धूल पर से किसी के जाने-पहचाने कदमों का स्वर सुनाई नही दे रहा। एक सुदरी हाथों में एक छोटी-सी पोटली दबाये हुए पुल पर से भागती हुई गुजर जाती है और मेरा दिल धक-से रह जाता है। दूर पार चोटियों से परे बस्ती में कोई पत्नी अपने पति को आवाज दे रही है। वह उसे खाने पर बुला रही है। कहीं से एक दरवाजा बद होने का स्वर सुनाई देता है, और एक रोता हुआ बच्चा सहमा चुप हो जाता है। छतो से धुआं निकल रहा है और पक्षी शोर मचाते हुए वृक्षों की घनी शाखाओं में अपने पख फड़फड़ाते है और फिर एकदम चुप हो जाते है। कोई नाविक गा रहा है और उसका स्वर गूंजते-गूंजते क्षितिज के उस पार लीन होता जा रहा है।

मैं पुल को पार करके आगे बढता हू। मेरे बेटे और उनकी पत्नियां और बच्चे मेरे पीछे आ रहे हैं, अलग-अलग टोलियों में बटे हुए। यहा पर बादाम के पेडों की पक्ति समाप्त हो गयी, तल्ला भी निकल गया, झील का किनारा है। यह खूबानी का पेड है, लेकिन कितना बडा हो गया है। परतु यह नाव···यह नाव है, परतु क्या यह वही नाव है? सामने वह घर है। मेरी पहली बहार का घर। मेरे पूरे चाद की रात का प्रेम।

घर मे प्रकाश है। बच्चों का शोर है। कोई भारी आवाज मे गाने लगता है। कोई बुढिया उसे चीखकर चुप करा देती है। मैं सोचता हू, आधी शताब्दी हो गयी। मैंने उस घर को नही देखा। देख लेने मे क्या बुराई है? आखिर मैंने उसे खरीदा था। देखा जाये तो मैं अभी तक उसका मालिक हूं, देख लेने मे बुराई ही क्या है? मैं घर के भीतर चला जाता हू।

बडे सुदर प्यारे-प्यारे बच्चे है। एक युवा स्त्री अपने पति के लिए रकाबी मे खाना रख रही है। मुझे देखकर ठिठक जाती है। दो बच्चे लड रहे थे। मुझे देखकर आश्चर्य से चुप हो जाते है। बुढिया, जो अभी क्रोध से डाट रही थी, थंभ के पास खड़ी होती है। कहती है, "तुम कौन हो?"

मैंने कहा, "यह घर मेरा है।"

वह बोली, "तुम्हारे बाप का है ?"

मैंने कहा, "मेरे बाप का नही है, मेरा है। कोई अड़तालीस साल हुए मैंने इसे खरीदा था। इस वक्त तो यो ही मैं इसे देखने चला आया, आप लोगों को निकालने के लिए नहीं आया हू। यह घर तो अब आप ही का है, मैं तो यो ही ··" यह कह कर मैं लौटने लगा। बुढिया की उगलिया सख्ती से थभ पर जम गयी। उसने जोर से श्वास भीतर खीचा। बोली, 'तो तुम हो ··अब इतने साल बाद कोई कैसे पहचाने ··" वह थभ से लगी देर तक मौन खडी रही। मैं नीचे आगन में चुपचाप खडा उसकी ओर ताकता रहा। फिर वह आप ही आप हस दी। बोली, "तो आओ, मैं तुम्हे अपने घर के लोगो से मिलाऊ···देखो यह मेरा बड़ा बेटा है। यह इससे छोटा है, यह बडे बेटे की स्त्री है, यह मेरा बड़ा पोता है, सलाम करो बेटा। यह पोती···यह···यह मेरा खाविंद, है हश ! इसे जगाना नही, परसो से इसे बुखार आ रहा है, सोने दो इसे···!"

वह फिर बोली, "तुम्हारी क्या सेवा करूं ?"

मैंने दीवार पर खूटी से टंगे हुए मक्की के भुट्टो की ओर देखा···सेके हुए भुट्टे, सुनहले मोतियों के से चमकीले दाने।

हम दोनों मुस्करा दिये।

वह बोली, "मेरे तो बहुत से दात झड़ चुके हैं, जो हैं वे भी काम नही करते।"

मैंने कहा, "यही हाल मेरा भी है, भुट्टा न खा सकूगा।"

मुझे घर के भीतर घुसते देखकर मेरे घर के लोग भी भीतर चले आये थे। अब खूब चहल-पहल थी। बच्चे शीघ्र ही एक दूसरे से मिल-जुल गये।

हम दोनो धीरे-धीरे बाहर चले आये। धीरे-धीरे झील के किनारे चलते गये।

वह बोली, "मैंने छह साल तक तुम्हारी बाट देखी, तुम उस दिन क्यो नही आये ?"

मैंने कहा, "मैं आया था, लेकिन तुम्हे किसी दूसरे नवयुवक के साथ देखकर वापस चला गया था।"

"क्या कहते हो ?" वह बोली।

"हां, तुम उसके साथ खाना खा रही थीं, एक ही रकाबी में और वह तुम्हारे मुंह में, और तुम उसके मुंह में कौर डाल रही थीं?"

वह एकदम चुप हो गयी, फिर जोर-जोर से हंसने लगी।

"क्या हुआ!" मैंने आश्चर्य से पूछा।

वह बोली, "अरे, वह तो मेरा सगा भाई था।"

वह फिर जोर-जोर से हंसने लगी। "वह मुझसे उसी दिन मिलने के लिए आया था। उसी दिन तुम भी आने वाले थे। वह वापस जा रहा था। मैंने उसे रोक लिया कि तुमसे मिलकर जाये ''लेकिन तुम न आये।"

वह एकदम गंभीर हो गयी। "छह साल तक मैंने तुम्हारा इंतजार किया। तुम्हारे जाने के बाद खुदा ने मुझे बेटा दिया, तुम्हारा बेटा, लेकिन एक साल बाद वह भी मर गया। चार साल और मैंने तुम्हारी राह देखी, मगर तुम नहीं आये।" खेलते-खेलते एक बच्चा दूसरी बच्ची को मक्की का भुट्टा खिला रहा था।

उसने कहा, "वह मेरा पोता है।"

मैंने कहा, "वह मेरी पोती है।"

वे दोनों भागते-भागते झील के किनारे दूर तक चले गये। हम देर तक उन्हें देखते रहे। वह मेरे निकट आ गयी। बोली, "आज तुम आये हो तो मुझे अच्छा लग रहा है। मैंने अब अपना जीवन बना लिया है। इसकी सारी खुशियां और गम देखे हैं। मेरा हरा-भरा घर है, और आज तुम भी आये हो। मुझे जरा भी बुरा नहीं लग रहा है।"

मैंने कहा, "यही हाल मेरा है। सोचता था, जीवन भर नहीं मिलूंगा। इसी लिए इतने साल इधर कभी नहीं आया। अब आया हूं तो रत्तीभर भी बुरा नहीं लग रहा।"

हम दोनों चुप हो गये। बच्चे खेलते-खेलते हमारे पास वापस आ गये। उसने मेरी पोती को उठा लिया, मैंने उसके पोते को, उसने मेरी पोती को चूमा, मैंने उसके पोते को, और हम दोनों प्रसन्नता से एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उसकी पुतलियों में याद चमक रही थी और वह याद आश्चर्य में और प्रसन्नता से कह रही थी, मनुष्य मर जाते हैं, परन्तु जीवन नहीं मरता। बहार समाप्त हो जाती है, परन्तु फिर जीवन का महान, सच्चा प्रेम सदैव स्थिर रहता है। तुम दोनों

कचरा बाबा

जब वह अस्पताल से बाहर निकला, तो उसकी टाँगें काँप रही थी और उसका सारा शरीर भीगी हुई रूई का बना हुआ मालूम होता था और उसका जी चलने को नही चाहता था, वही फुटपाथ पर बैठ जाने को चाहता था।

कायदे से उसे अभी एक महीना और अस्पताल मे रहना चाहिए था, मगर अस्पताल वालो ने उसकी छुट्टी कर दी थी। साढे चार महीने तक वह अस्पताल के प्राइवेट वार्ड मे रहा था और डेढ महीने तक जनरल वार्ड मे। इस बीच मे उसका एक गुर्दा निकाल दिया गया था और उसकी आंतो का एक भाग काटकर आंतो की क्रिया को ठीक किया गया था। अभी उसके कलेजे की क्रिया ठीक नही हुई थी कि उसे अस्पताल से निकल जाना पड़ा, क्योकि दूसरे लोग इंतजार कर रहे थे, जिनकी हालत उससे भी बदतर थी।

डाक्टर ने उसके हाथ मे एक लबा-सा नुस्खा दे दिया और कहा, "यह टानिक पियो और पौष्टिक अन्न खाओ। बिलकुल स्वस्थ हो जाओगे, अब अस्पताल मे रहने की कोई आवश्यकता नही है।"

"मगर मुझसे चला नही जाता, डाक्टर साहब।" उसने कमजोर आवाज मे कहा।

"घर जाओ, कुछ दिन बीवी सेवा करेगी, बिलकुल ठीक हो जाओगे।"

बहुत ही धीरे-धीरे, लडखडाते हुए कदमो से, फुटपाथ पर चलते-चलते उसने सोचा, 'घर !—मगर मेरा घर है कहा ?'

कुछ महीने पहले मेरा एक घर जरूर था—एक बीवी भी थी, जिसके एक बच्चा होने वाला था—वे दोनो उस आने वाले बच्चे की कल्पना से कितने खुश थे। होगी दुनिया मे ज्यादा आबादी, मगर वह तो उन दोनो का पहला बच्चा था। दुनिया का सबसे पहला बच्चा होने जा रहा था।

दुलारी ने अपने बच्चे के लिए बडे खूबसूरत कपड़े सिये थे और अस्पताल मे लाकर उसे दिखाये थे और उन कपडो पर हाथ फेरते हुए उसे ऐसा लगा था जैसे वह अपने बच्चे को बाहो मे लेकर उससे प्यार कर रहा है।

मगर फिर अगले कुछ महीनों में बहुत कुछ लुट गया। जब उसके गुर्दे का पहला आपरेशन हुआ, तो दुलारी ने अपने जेवर बेच दिये, कि ऐसे ही वक्त के लिए होते हैं। लोग समझते हैं कि जेवर स्त्री की सुंदरता बढ़ाने के लिए होते हैं, वह तो किसी दूसरे के दर्द की दवा होते हैं। पति के आपरेशन, बच्चे की पढ़ाई, लड़की की शादी—यह बैंक ऐसे ही अवसर के लिए खुलना है और खाली कर दिया जाता है। औरत तो इस जेवर की रखवालन होती है और जिंदगी में मुश्किल से पांच-छह बार उसे इस जेवर को पहनने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

गुर्दे के दूसरे आपरेशन से पहले दुलारी का बच्चा नष्ट हो गया। वह तो होता ही—दुलारी को दिन-रात जो कड़ी मेहनत करनी पड़ रही थी, उसमें यह खतरा सबसे पहले मौजूद था। ऐसे लगता था जैसे दुलारी का यह छरेरा सुनहरा शरीर इतनी कड़ी मेहनत के लिए नहीं बनाया गया है। इसलिए वह अक्लमंद बच्चा बीच ही में से कहीं सटक गया था। बुरा वातावरण देखकर और मा-बाप की पतली हालत भांपकर उसने स्वयं ही पैदा होना उचित नहीं समझा। कुछ बच्चे इतने अक्लमंद होते हैं। दुलारी कई दिनों तक अस्पताल नहीं आ सकी, और जब उसने आकर खबर दी, तो वह कितना रोया था। यदि उसे मालूम होता कि आगे चलकर उसे इससे कहीं अधिक रोना पड़ेगा, तो वह इस घटना पर रोने के बजाय प्रसन्नता प्रकट करता।

गुर्दे के दूसरे आपरेशन के बाद उसकी नौकरी जाती रही। लंबी बीमारी में यही होता है, कोई कहां तक इंतजार कर सकता है। बीमारी मनुष्य का अपना जाती मामला है, इसलिए यदि वह चाहता है कि उसकी नौकरी बनी रहे तो उसे ज्यादा देर तक बीमार न पड़ना चाहिए। मनुष्य, मशीन की तरह है, यदि एक मशीन लंबे समय के लिए बिगड़ी रहती है, तो उसे उठाकर एक ओर रख दिया जाता है और उसकी जगह नयी मशीन आ जाती है, क्योंकि काम रुक नहीं सकता, बिजनेस बंद हो नहीं सकता और समय थम नहीं सकता, इसलिए जब उसे मालूम हुआ कि उसकी नौकरी भी जाती रही है, तो उसे गहरा धक्का-सा लगा जैसे उसका दूसरा गुर्दा भी निकाल लिया गया हो। इस धक्के से उसकी आखों में आसू भी नहीं आये। उसने महसूस किया, सिर्फ दिल के अंदर एक शून्य-सा मालूम होता है, जमीन कदमों के नीचे से खिसकती मालूम होती है और नाड़ियों में खून के बजाय

डर दौड़ता हुआ मालूम होता है।

कई दिन तक वह आने वाली जिंदगी के डर और भय में खो नहीं गया था। लंबी बीमारी के खर्चे भी लंबे होते है। धीरे-धीरे घर की हर कीमती चीज चली गयी, मगर दुलारी ने हिम्मत नहीं हारी। उसने गाढ़े चार महीने तक अपने पति को प्राइवेट वार्ड में रखा, उसका बेहतरीन इलाज कराया, अपने घर की एक-एक चीज बेच दी और अंत में नौकरी भी कर ली। वह एक फर्म में नौकर हो गयी थी और एक दिन अपनी फर्म के मालिक को लेकर अस्पताल भी आयी थी। वह एक दुबला-पतला नाटे कद वाला, अधेड़ उम्र का शर्मीला आदमी दिखाई देता था। कम बात करने वाला और मीठी मुस्कराहट वाला। सूरत-शक्ल से वह किसी फर्म का मालिक होने के बजाय किताबों की किसी दुकान का मालिक मालूम होता था। दुलारी उसकी फर्म में दो सौ रुपये महीने पर नौकर हो गयी थी, चूंकि वह ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी इसलिए उसका काम लिफाफों पर टिकटें लगाना था।

"यह तो बहुत आसान काम है।" दुलारी के पति ने कहा।

फर्म का बास, "काम तो आसान है, मगर जब दिन में पांच-छह सौ पत्रों पर टिकटें लगानी पड़े तो इसी प्रकार का बहुत आसान काम भी बहुत मुश्किल होता है।"

दुलारी ने मुस्कराकर कहा, "सच बहुत थक जाती हूं।"

और फर्म के बास ने उससे कहा, "अच्छे हो जाओ, तो तुम अपनी बीवी के बजाय टिकटें लगाया करना, मैं यह काम तुम्हें सौंप दूंगा।"

जब फर्म का बास जाने लगा तो दुलारी भी उसके साथ चली गयी। उसने महसूस किया कि आज दुलारी के कदमों की चाप में एक विचित्र स्वाभिमान-सा है। उसका शरीर किसी फूलदार डाल की तरह लचक रहा है। कमरे से बाहर निकलते हुए बास ने दुलारी के लिए एक हाथ से दरवाजा खोला और फिर वह आदरपूर्वक दुलारी को दरवाजे से बाहर जाने की दावत देते हुए थोड़ा-सा झुका और एक क्षण के लिए उसका दूसरा हाथ दुलारी की कमर पर एक पल के लिए रुका। दुलारी के पति को फर्म के बास के पहले हाथ की हरकत तो पसंद आयी लेकिन दूसरे हाथ की हरकत पसंद नहीं आयी। लेकिन फिर उसने अपने दिल को यह

कहकर सभाला कि कभी-कभी एक हाथ जो करता है वह दूसरे हाथ को मालूम नही होता। फिर यह भी हो सकता है कि उसकी आखो को धोखा हुआ हो---केवल एक भ्रम---इसलिए उसने इत्मीनान से अपनी आखें बद कर ली और नर्म-नर्म तकियो पर सर टिकाकर ग्लूकोज़ के इजेक्शन का इतजार करने लगा।

उसका तीसरा आपरेशन अस्पताल के जनरल वार्ड मे हुआ था। उस वक्त तक दुलारी फर्म के बास के साथ दार्जिलिंग जा चुकी थी। आखिर कोई कब तक सबर कर सकता है। जिंदगी छोटी है और जिंदगी की बहार उससे भी छोटी होती है। जब भावनाए प्रबल होती हैं और आखो मे चाद उतर आते है, जब उगलियों मे आग की सी जलन महसूस होती है और सीने मे मीठा-मीठा-सा दर्द होता है, जब चुबन भौरो की तरह होठो की पखडियो पर गिरते हैं और गरदन के 'सुराहीदार खम किसी की गरम-गरम साम की मद्धिम-मद्धिम आच को तरसते है, ऐसे मे कोई कब तक फिनायल और पेशाब की बू सूघे, थूक और पीप और खून का रग देखे और मौत के दरवाजे तक जाती हुई लौटकर आती हुई सिसकिया सुने ?' आखिर बरदाश्त करने की एक सीमा होती है और बीस वर्ष की लड़की की बरदाश्त भी क्या ? जिसकी शादी को अभी दो साल भी न हुए थे और जिसने अपने पति के साथ मुसीबतों के सिवा और कुछ देखा ही न था। वह यदि अपने सपनो की डोर से बधी-बधी दार्जिलिंग चली जाये तो उसमे किसी का क्या दोष।

और वह उस मजिल से गुजर चुका था जब वह किसी को दोषी ठहरा सकता था। इतनी चोटें उस पर एक के बाद एक पड़ी थी कि वह बिलकुल बौंरा गया, बिलकुल सन्नाटे मे आ गया, वह बिलकुल भौचक्का-सा रहा था। अब उसकी मुसीबत और तकलीफ मे किसी प्रकार का कोई भाव या आसू न रह गया था। बार-बार हथौडे से चोटें खा-खाकर उसका दिल धातु के एक पतरे की तरह शीतल हो गया। इसीलिए आज जब उसे अस्पताल से निकाला गया तो उसने डाक्टर से किसी मानसिक-पीडा की शिकायत नही की थी, उसने उससे यह नही कहा था कि अब वह इस अस्पताल से निकलकर कहा जाये ? अब उसका कोई घर नही था, कोई बीवी नही, कोई बच्चा नही, कोई नौकरी नही, उसका दिल खाली था, उसकी जेब खाली थी और उसके सामने एक खाली और सपाट भविष्य था।

मगर उसने ये सब कुछ नही कहा था, उसने केवल यह कहा था, "डाक्टर

साहब, मुझसे चला नहीं जाता।"

बस यही एक सत्य था जो उसे इस समय याद था, बाकी हर बात उसके दिल से मिट चुकी थी। इस वक्त चलते-चलते वह केवल यह अनुभव कर सकता था कि उसका शरीर गीली रुई का बना हुआ है, उसकी रीढ़ की हड्डी किसी पुरानी टूटी चारपाई की तरह चटख रही है, धूप बहुत तेज है, रोशनी तीर के समान चुभती है, आकाश पर एक मैले और पीले रंग का वार्निश फिरा हुआ है, और वातावरण में काले तिरमिरे और चित्तियां-सी गंदी मक्खियों की तरह भिनभिना रही हैं और लोगों की नजरें हैं कि गंदे खून और पीप की तरह उसके शरीर से चिपचिपाकर रह जाती हैं। उसे भाग जाना चाहिए, कहीं दूर इन लंबे, उलझे, बिजली के तारों वाले खंभों और उनके बीच गड-मड होने वाले रास्तों से कहीं दूर भाग जाना चाहिए और उसे अपनी मां की याद आयी जो मर चुकी थी, अपना बाप याद आया जो मर चुका था, अपना भाई याद आया जो अफ्रीका में था। सन्-सन्-सन् एक ट्राम उसके करीब से गुजरने लगी। ट्राम की बिजली की छड़, बिजली के लंबे तार से घिसटती हुई मानो उसके शरीर के अंदर घुसती चली जा रही थी। वह पूरी ट्राम को अपने शरीर के अंदर चलती हुई महसूस कर सकता था, उसे ऐसा लगा जैसे वह कोई मनुष्य नहीं है एक घिसा-पिटा रास्ता है।

देर तक वह चलता रहा, हांफता रहा और चलता रहा, अंदाज से एक अनजान सिम्त की ओर चलता रहा, जिधर कभी उसका घर था। जबकि उसे मालूम था कि अब उसका कोई घर नहीं है। मगर वह यह जानते हुए भी उधर ही चलता रहा, घर जाने की आदत से मजबूर होकर। मगर धूप बहुत तेज थी और उसके शरीर में च्यूंटियां-सी रेंग रही थीं और वह रास्ता भी भूल गया, और अब उसके शरीर में इतनी शक्ति भी नहीं थी कि वह किसी मुसाफिर से रास्ता ही पूछ ले, मालूम कर ले यह शहर का कौन-सा भाग है। धीरे-धीरे उसके कानों में ट्रामों और बसों का शोर बढ़ने लगा, नजरों में दीवारें टेढ़ी होने लगीं, इमारतें गिरने लगीं, बिजली के खंभे गड-मड होने लगे, फिर उसकी आंखों तले अंधेरा और कदमों तले एक भूचाल-सा आया और वह अचानक जमीन पर गिर पड़ा।

जब वह होश में आया, तो रात हो चुकी थी, एक ठंडा-सा अंधेरा चारों ओर छाया हुआ था। उसने आंखें खोलकर देखा कि जिस जगह पर वह गिरा था, अब

तक वह वहीं पर लेटा हुआ है। यह फुटपाथ का एक ऐसा मोड़ था जिसके पिछ-वाडे दोनों ओर दो दीवारें खिंची हुई थी। एक दीवार फुटपाथ से लगी-लगी सीधी उत्तर से दक्षिण को चली गयी थी, दूसरी उत्तर से पश्चिम को, और वह दोनों दीवारों के जोड पर लेटा हुआ था। ये दोनों दीवारें कोई चार फुट के करीब ऊंची थी और इन दीवारों के पीछे बांस के झुड थे, मोनोलिया की वेलें थी, अमरूद और जामुन के पेड थे और उन पेडों के पीछे क्या था वह उसे इस वक्त नजर नही आता था। दूसरी ओर, पश्चिमी दीवार के सामने पच्चीस-तीस फुट का फासला छोडकर एक पुरानी इमारत का पिछला भाग था। तीन मंजिला इमारत थी और हर मंजिल में पीछे की ओर केवल एक खिडकी थी और छह बड़े-बडे पाइप थे। पिछलें पाइप और पश्चिमी दीवार के बीच मे पच्चीस-तीस फुट चौडी एक अंधी गली बन गयी थी जिसके तीन ओर दीवार थी और चौथी ओर सडक थी। कहीं दूर किसी गिरजे के घंटे ने रात के तीन बजाये और वह फुटपाथ पर लेटा-लेटा अपनी कुहनियों पर जोर देकर थोड़ा-सा ऊपर उठा और इधर-उधर देखने लगा। सड़क बिलकुल खाली थी। सामने की दुकानें बंद थी और फुटपाथ के अंधेरे सायो में कही-कही बिजली के कमजोर बल्ब झिलमिला रहे थे। कुछ क्षण के लिए उसे यह ठंडा अंधेरा बहुत भला मालूम हुआ। कुछ क्षण के लिए उसने अपनी आखें बंद करके सोचा, शायद वह किसी कृपालु समदर के पानियो में डूब रहा है।

मगर इस अनुभव से वह अपने-आपको केवल कुछ क्षणों तक ही धोखा दे सका क्योकि अब उसे सख्त भूख लग रही थी। कुछ क्षणों की लुभावनी सर्दी के बाद उसने महसूस कर लिया कि वह बहुत भूखा है। जब से उसकी आंतो का आपरेशन हुआ था उसे बहुत भूख लग रही थी और उसने सोचा कि डाक्टरों ने उसकी आतों की क्रिया को सजग करके उसके साथ किसी प्रकार की भलाई नही की है। उसके मेदे के अंदर विचित्र ऐंठन-सी हो रही थी और आतें अदर ही अंदर तड़प-तड़प कर रोटी का सवाल कर रही थीं और इस वक्त उसके नथुने किसी शहरी इंसान के नथुनों की तरह नही बल्कि किसी जंगली पशु के नथुनो की तरह काम कर रहे थे। विचित्र-विचित्र-सी बासें उसकी नाक से आ रही थी। सुगंधो की एक सिमफ़नी थी जो उसकी चेतना पर फैली हुई थी और आश्चर्य की बात यह

थी कि वह इस सिमफनी के एक-एक स्वर का अलग-अलग अस्तित्व पहचान सकता था। यह जामुन की खुशबू है, यह अमरूद की, यह रात की रानी के फलों की, यह तेल में तली पूरियों की, यह प्याज और लहसुन में बघारे हुए आलुओं की, यह मूली की, यह टमाटर की, यह किसी सड़े हुए फल की, यह पेशाब की, यह पानी में भीगी हुई मिट्टी की जो शायद बांसों के झुंड में आ रही थी। वह हर रूप, भाव, गति और उग्रता तक का अनुभव कर सकता है। अचानक उसे यह मालूम भी हुआ, और वह इस बात पर चौंका भी कि किस प्रकार भूख ने उसकी छिपी शक्तियों को सजग कर दिया था। मगर इस बात पर ज्यादा ध्यान दिये बिना उसने उस ओर घिसटना शुरू कर दिया जिस ओर से उसे तेल में तली पूरियों और लहसुन में बघारे आलुओं की बास आयी थी। वह धीरे-धीरे अंधेरी गली के अंदर घिसटने लगा क्योंकि वह अपने शरीर में चलने की शक्ति बिलकुल नहीं पाता था। हर पल उसे ऐसा मालूम हो रहा था जैसे वह गहरे पानियों में डूब रहा है। फिर मालूम होता जैसे कोई धोबी उसकी आंतों को पकड़कर मरोड़ रहा है। फिर उसके नथुने में पूरियों और आलू की भूख चमकाने वाली बास आयी और वह अधीर होकर अध-मुंदी आंखों से अपने लगभग निर्जीव से शरीर को उधर घसीटने की कोशिश करता, जिधर से आलू-पूरी की बास आ रही थी।

कुछ समय के बाद जब वह उस स्थान पर पहुंचा तो उसने देखा कि पश्चिमी दीवार और उसके सामने की इमारत के पिछवाड़े के पाइपों के बीच पच्चीस-तीस फुट के फासले पर कचरे का एक बहुत बड़ा खुला लोहे का टब रखा है। यह टब कोई पंद्रह फुट चौड़ा होगा और तीस फुट लंबा और उसमें भांति-भांति का कूड़ा-करकट भरा है। गले-सड़े फलों के छिलके और डबलरोटी के गंदे टुकड़े और चाय की पत्तियां और एक पुरानी जाकेट और बच्चों के गंदे पोतड़े और अंडों के छिलके और अखबार के टुकड़े और पत्रिकाओं के फटे पन्ने और रोटी के टुकड़े और लोहे की टोटियां और प्लास्टिक के टूटे हुए खिलौने और मटर के छिलके और पुदीने के पत्ते और केले के पत्तल पर कुछ जूठी पूरियां और आलू की भाजी। पूरियों और आलू की भाजी को देखकर मानो उसकी आंतें उमड़ पड़ीं। उसने कुछ क्षणों के लिए अपने अधीर हाथ रोक लिये, मगर दूसरी सुगंधों के मुकाबले में उसके नथुनों में अगले कुछ क्षणों तक पूरी और भाजी की भूख जगा देने वाली

बास उसी तरह तेज-तेज होती गयी जैसे किसी सिमफनी में अचानक कोई विशेष स्वर एकदम ऊंचे हो जाते हैं और अचानक सभ्यता की अंतिम दीवारें ढह गयी और कापते हुए अधीर हाथो ने केले की उस पत्तल को दबोच लिया और वह एक अमानुषिक भूख से मजबूर होकर उन पूरियों पर टूट पडा। पूरी-भाजी खाकर उसने केले के पत्ते को बार-बार चाटा और उसे इतना साफ करके छोड दिया जितना कि प्रकृति ने उसे बनाया था। पत्तल चाटने के बाद उसने अपनी उंगलिया चाटी और लबे-लंबे नाखूनों मे भरी हुई आलू की भाजी जीभ की नोक से निकाल कर खायी और जब इससे भी उसकी तृप्ति न हुई तो उसने हाथ बढाकर कूडे के ढेर को खधोलते हुए उसमे से पुदीने के पत्ते निकालकर खाये और मूली के दो टुकड़े और एक आधा टमाटर अपने मुंह मे डालकर मजे से उसका रस पिया और जब वह सब कुछ खा चुका तो उसके सारे शरीर मे आलसमयी नीद की एक लहर-सी उठी और वह वहीं टब के किनारे गिरकर सो गया।

आठ-दस दिन इसी आलसमयी निद्रा और अर्द्ध चेतना की स्थिति मे गुजरे। वह घिसट-घिसटकर टब के किनारे जाता और जो खाने को मिलता खा लेता, और जब भूख जगाने वाली बास की तृप्ति हो जाती तो दूसरी गदी बासें उभरने लगती ओर वह घिसट-घिसटकर टब से परे फुटपाथ के नुक्कड पर चला जाता और पिछली दीवार से टेक लगाकर बैठ जाता या सो जाता।

पंद्रह-बीस दिन के बाद धीरे-धीरे उसके शरीर की ताकत उभरने लगी। धीरे-धीरे वह अपने वातावरण से परिचित होने लगा—यह स्थान कितना अच्छा था, यहा धूप नही थी, यहा पेडों का साया था, कभी-कभी पिछली इमारत से कोई खिडकी खुलती और कोई हाथ फैलाकर नीचे के टब मे रोज कूडा फेंक देता। यह कूडा जो उसका अन्नदाता था, उसे दिन-रात रोटी देने वाला था, उसके जीवन का रक्षक था। दिन मे सड़क चलती थी, दुकानें खुलती थी, लोग-बाग घूमते थे, बच्चे अबाबीलो की तरह चहकते हुए सड़क से गुजर जाते थे, औरतें रंगीन पतंगो की तरह डोलती हुई गुजर जाती थी, लेकिन वह एक दूसरी दुनिया थी। इस दुनिया से उसका कोई सबंध न था, इस दुनिया मे अब उसका कोई न था और वह किसी का न था। इस दुनिया से उसे घृणा थी और इस दुनिया से उसने मुह मोड लिया था। शहर की गलिया और बाजार और सड़कें उसके लिए एक धूमिल

छाया-सी बन गयी और उससे बाहर के मैदान और शोर और गुस्सा मात्र एक व्यर्थ कल्पना। घर, काम-काज, जीवन, समाज, संघर्ष, ये अर्थहीन शब्द, जो कब के इस कूड़े-कचरे के ढेर में गिर गये थे। उस दूर की दुनिया से उसने मुंह मोड़ लिया था और अब उसकी यह दुनिया थी—चार फुट लंबी और तीन फुट चौड़ी।

महीने और साल गुज़रते गये और वह फुटपाथ पर बैठा-बैठा एक पुराने ठूंठ की तरह या किसी पुरानी यादगार की तरह सब की नज़रों में समाता गया। वह किसी से बात नहीं करता था, किसी को फायदा नहीं पहुंचाता था या किसी से भीख नहीं मांगता था, लेकिन अगर वह किसी दिन यहां से उठकर चला जाता तो उस क्षेत्र के हर आदमी को इस पर आश्चर्य होता और शायद थोड़ी तकलीफ़ भी होती।

सब लोग उसे कचरा बाबा कहते थे, क्योंकि यह सबको मालूम था कि वह केवल कचरे के टब में से अपनी खुराक निकालकर खाता है और जिस दिन उसे यहां से कुछ न मिलता, वह भूखा ही सो जाता था। बरसों से राहगीर और ईरानी रेस्तोरां वाले उसकी इस आदत को पहचान गये थे और अक्सर उन्हें जो कुछ डालना होता उसके लिए वे उसे कचरे के ढेर में फेंक देते थे, और अक्सर इमारत की पिछली खिड़कियों से अब कूड़े-कचरे के अलावा खाने-पीने की दूसरी चीजें भी फेंकी जातीं। साबत पूरियां और बहुत-सी भाजी और गोश्त के टुकड़े और अधचूसे हुए आम और चटनी और कबाब के टुकड़े और खीर से सनी हुई पत्तल। खाने-पीने की हर नयामत कचरा बाबा को इस टब में से मिल जाता था। कभी-कभी कोई फटा हुआ पजामा, कोई उधड़ी हुई नेकर, कोई तार-तार फटी कमीज़, प्लास्टिक का गिलास। यह कचरे का टब क्या था, उसके लिए खुला बाजार था जहां वह दिन-दहाड़े सबकी आंखों के सामने मटरगश्ती किया करता था। जिस दुकान से जो सौदा चाहे मुफ्त लेता था, वह इस बाजार का एकमात्र स्वामी था। शुरू-शुरू में कुछ भूखी बिल्लियों और खुजली के मारे कुत्तों ने उसका विरोध किया था मगर उसने मार-मारकर सबको बाहर निकाल दिया था और अब वह इस कचरे के टब का अकेला मालिक था और उसके अधिकार को सबने स्वीकार कर लिया था। महीने में एक बार म्युनिसिपेलिटी वाले आते थे और

इस टब को खाली करके चले जाते थे और कचरा बाबा उनका विरोध नहीं करता था क्योंकि उसे मालूम था दूसरे दिन से टब फिर उसी तरह भरना शुरू हो जायेगा और उसका विश्वास था कि इस दुनिया से नेकी खत्म हो सकती है, वफा खत्म हो सकती है, मित्रता खत्म हो सकती है लेकिन गंदगी कभी खत्म नहीं हो सकती। सारी दुनिया से मुंह मोड़कर उसने जीने का आखिरी तरीका सीख लिया था।

मगर यह बात नहीं है कि उसे बाहर की दुनिया की खबर न थी। जब शहर में चीनी महंगी हो जाती तो महीनों कचरे के टब में मिठाई के टुकड़े की सूरत नजर न आती। जब गेंहू महंगा हो जाता तो डबलरोटी का एक टुकड़ा तक न मिलता। जब सिगरेट महंगें हो जाते तो सिगरेट के जले हुए टुकड़े इतने छोटे मिलते कि वह उन्हें सुलगाकर पी नहीं सकता था। जब भंगियों ने हड़ताल की थी, तो दो महीने तक उसके टब की किसी ने सफाई नहीं की थी। और किसी दिन उसे टब में इतना गोश्त नहीं मिलता था जितना बकरीद के दिन, और दीपावली के दिन तो टब के अलग-अलग कोने में मिठाई के बहुत से टुकड़े मिल जाते थे। बाहर की दुनिया की कोई ऐसी घटना न थी जिसका सुराग वह कचरे के टब से न पा सकता हो। पिछले महायुद्ध से लेकर औरतों की गुप्त बीमारी तक। मगर उसे बाहर की दुनिया में कोई रुचि न रह गयी थी।

पच्चीस साल तक वह इस कचरे के टब के किनारे बैठा-बैठा अपनी आयु गुजारता रहा। रात-दिन, महीने-साल उसके सर से हवा कि लहरों की तरह गुजर गये और उसके सर के बाल सूख-सूख कर बड़ की शाखों की तरह लटकने लगे। उसकी काली दाढ़ी खिचड़ी हो गयी। उसके शरीर का रंग मलगजा, मटमैला और हरा होता गया और वह अपने गंदे बालों, फटे चीथड़ो और बदबूदार शरीर से रास्ता चलते लोगों को खुद भी कचरे का एक टब-सा नजर आने लगा। एक ऐसा टब जो कभी-कभी हरकत करता था और बोलता था, किसी दूसरे से नहीं, केवल अपने-आपसे, या ज्यादा कचरे के टब से।

लोग कचरा बाबा को कचरे के टब से बातचीत करते देखकर चकित रह जाते थे, जबकि इसमें आश्चर्य करने की बात कौन-सी है। कचरा बाबा लोगों से कुछ कहता नहीं था, मगर उनके आश्चर्य को देखकर दिल में जरूर सोचता होगा कि

इस संसार मे कौन है जो दूसरे से बातचीत करता है। वास्तव मे इस संसार मे जितनी बातचीत होती है, मनुष्यों के बीच नहीं होती है बल्कि केवल अपनी जात और उसके किसी स्वार्थ के बीच होती है। दो मित्रों के बीच भी जो बातचीत होती है वह वास्तव में एक प्रकार का स्वगत कथन होता है। यह दुनिया एक बहुत बडा कचरे का ढेर है जिसमे से हर आदमी अपने स्वार्थ का कोई टुकड़ा, व्यक्तिगत लाभ का कोई छिलका या मुनाफे का कोई चीथड़ा ढूंढने के लिए हर वक्त तैयार रहता है। ऊह —ये लोग जो मुझे हकीर-फकीर या जलील समझते है जरा अपनी आत्मा के गिरेबान मे तो झांककर देखें—यहां कितनी गंदगी भरी है। जिसे केवल यमराज ही उठाकर ले जायेंगे।

इसी तरह दिन पर दिन गुजरते गये, देश स्वतन्त्र हुए, देश परतन्त्र हुए, हुकूमतें आयी, हुकूमतें चली गयी, मगर कचरे का यह टब वही का वहीं रहा और उसके किनारे बैठने वाला कचरा बाबा उसी तरह अर्धचेतना की दशा मे दुनिया से मुह मोड़े हुए, मुह ही मुह में कुछ बुदबुदाता रहा और कचरे के टब को खपोलता रहा।

तब एक रात अधी गली मे जब वह टब से कुछ फुट के फासले पर दीवार से पीठ लगाये और अपने फटे-चीथड़ो मे दुबका हुआ सो रहा था उसने एक जोर की तेज चीख सुनी और वह घबराकर कचरे के टब की ओर भागा जिधर से यह चीखें सुनाई दे रही थी।

कचरे के टब के पास जाकर उसने टटोला, तो उसका हाथ किसी नर्म-नर्म लोथड़े से जा टकराया और फिर एक जोर की चीख बुलंद हुई। कचरा बाबा ने देखा कि टब के अदर डबलरोटी के टुकडो, चिचोडी हुई हड्डियो, पुराने जूतो, काच के टुकड़ों, आम के छिलकों, बासी वेणियो और दर्रे की टूटी हुई बोतलो के बीच एक नवजात शिशु नगा पडा है और अपने हाथ-पाव हिला-हिला कर जोर-जोर से चीख रहा है।

इस समय तक कचरा बाबा आश्चर्य मे डूबा हुआ उस नन्हे इसान को देखता रहा जो अपने छोटे-से सीने की पूरी ताकत से अपने आगमन का एलान कर रहा था। कुछ समय तक वह चुपचाप, परेशान, फटी-फटी आखो से इस दृश्य को देखता रहा फिर उसने तेजी से आगे झुककर कचरे के टब से उस बच्चे को उठाकर अपने

सीने से लगा लिया और जल्दी से उसे अपने फटे चीथड़ों में छुपा लिया।

मगर बच्चा उसकी गोद में जाकर भी किसी तरह चुप न रहा। वह इस जीवन में नया-नया आया था और बिलख-बिलख कर अपनी भूख का एलान कर रहा था। अभी उसे मालूम न था कि गरीबी क्या होती है, ममता किस प्रकार बुज़दिल हो जाती है। ज़िंदगी कैसे बिगड़ जाती है। वह किस तरह मैली-चीकट और गंदी बनाकर कचरे के टब में डाल दी जाती है। अभी उसे कुछ मालूम न था, अभी वह केवल भूखा था और रो-रोकर अपने पेट पर हाथ मार रहा था और टांगें चला रहा था।

कचरा बाबा की समझ में कुछ न आया कि वह कैसे इस बच्चे को चुप कराये। उसके पास कुछ न था, न दूध, न चुसनी। उसे तो कोई लोरी भी याद न थी। वह बेकल होकर, बच्चे को गोद में लेकर थपथपाने लगा और गहरी निराशा से रात के अंधेरे में चारों ओर देखने लगा कि उसे इस वक्त बच्चे के लिए दूध कहां से मिल सकता है। लेकिन जब उसकी समझ में कुछ न आया तो उसने जल्दी से कचरे के टब से आम की एक गुठली निकाल ली और उसका सिरा बच्चे के मुंह में दे दिया।

अध-खाये हुए आम का मीठा-मीठा रस जब बच्चे के मुंह में जाने लगा तो वह रोता-रोता चुप हो गया और चुप होते-होते कचरा बाबा की बांहों में सो गया। आम की गुठली खिसककर ज़मीन पर जा गिरी और अब बच्चा उसकी बांहों में बेखबर सो रहा था। आम का पीला-पीला रस अभी तक उसके कोमल होंठों पर था और उसके नन्हें से हाथ ने कचरा बाबा का अंगूठा बड़े ज़ोर से पकड़ रखा था।

एक पल के लिए कचरा बाबा के दिल में खयाल आया कि वह बच्चे को यहीं फेंककर कहीं भाग जाये। धीरे से कचरा बाबा ने उस बच्चे के हाथ से अपने अंगूठे को छुड़ाने की कोशिश की, मगर बच्चे की पकड़ बड़ी मज़बूत थी और कचरा बाबा को ऐसा लगा जैसे ज़िंदगी ने उसे फिर से पकड़ लिया है और धीरे-धीरे झटकों से उसे अपने पास बुला रही है। अचानक उसे दुलारी की याद आयी और वह बच्चा जो उसकी कोख में कहीं नष्ट हो गया था, और अचानक कचरा बाबा फूट-फूटकर रोने लगा। आज समुद्र के पानियों में इतने कतरे न थे जितने आंसू

उसकी आंखों में थे, ऐसा मालूम होता था। पिछले पच्चीस सालों में जितनी मैल और गंदगी उसकी आत्मा पर जम चुकी है वह इस तूफान के एक ही रेले में साफ हो जायेगी।

रात भर कचरा बाबा उस नवजात शिशु को अपनी गोद में लिये बेचैन और बेकरार होकर फुटपाथ पर टहलता रहा और जब सुबह हुई और सूरज निकला तो लोगों ने देखा कि कचरा बाबा आज कचरे के टब के करीब कहीं नहीं बैठा है बल्कि सड़क के पार नयी बनने वाली इमारत के नीचे खड़ा होकर ईंटें ढो रहा है, और उस इमारत के करीब गुलमुहर के एक पेड़ की छांव में एक फूलदार कपड़े में लिपटा हुआ एक नन्हा-सा बच्चा मुंह में दूध की चुसनी लिये मुस्करा रहा है।

अब तो यह गलीचा पुराना हो चुका है, परंतु आज से दो वर्ष पूर्व जब मैंने इसे हजरतगंज मे एक दुकान से खरीदा था तो उस समय यह गलीचा बिलकुल मासूम था। इसकी जिल्द मासूम थी, इसकी मुस्कराहट मासूम थी, इसका हर रंग मासूम था। अब नही, दो साल पहले। अब तो इसमे विष घुल गया है। इसका एक-एक तार विषैला और बदबूदार हो चुका है। रंग फीका पड गया है। मुस्कान मे आंसुओं की झलक और जिल्द में किसी उपदंशकग्रस्त रोगी की तरह स्थान-स्थान पर गड्डे पड़ गये हैं। पहले यह गलीचा मासूम था, अब निराशावादी है। विषैली हंसी हंसता है और इस तरह सांस लेता है जैसे ससार का सारा कूड़ा-कर्कट उसने अपनी छाती में छिपा लिया हो।

इस गलीचे का कद नौ फीट है। चौडाई मे पांच फीट। बस, जितनी एक आम पलग की चौड़ाई होती है। किनारा चौकोर बादामी है और डेढ इंच तक गहरा है। इसके बाद असल गलीचा शुरू होता है और गहरे लाल रंग से शुरू होता है। यह रग गलीचे की पूरी चौडाई मे फैला हुआ है और दो फीट की लबाई में है। अर्थात 2-5 फीट का चौकोर। लाल रग की एक झील बन गयी है। परंतु इस झील मे भी लाल रग की झलकियां कई रगों के तमाशे दिखाती हैं। गहरा लाल, गुलाबी, हल्का गुलाबी और सुर्ख जैसे गदा रक्त होता है। लेटते समय गलीचे के इस भाग पर मैं सदैव अपना सिर रखता हूं और मुझे हर बार यह अनुभव होता है कि मेरे सिर मे जोंके लगी है जो मेरा गदा रक्त चूस रही हैं।

फिर इस खूनी चौकोर के नीचे पाच और चौकोरें हैं जिनके अलग-अलग रग हैं। ये चौकोरें गलीचे की पूरी चौड़ाई में फैली हुई है, इस प्रकार कि अंतिम चौकोर पर गलीचे की लबाई भी समाप्त हो जाती है और फिर दरी की कोर शुरू होती है। खूनी चौकोर के बिलकुल नीचे तीन छोटी-छोटी चौकोरें है—पहली श्वेत और स्याह रग की शतरजी है, दूसरी श्वेत और नीले रंग की, तीसरी ब्ल्यू-ब्लैक और खाकी रंग की। ये शतरंजियां दूर से बिलकुल चेचक के दागों की तरह दिखाई देती हैं और निकट से देखने पर भी इनकी सुंदरता में अधिकता नही

आती बल्कि नीलामशुदा पुराने कोट की जिल्द की तरह मैली-मैली और बदरंग नजर आती है। पहली चौकोर यदि खून की झील है तो ये तीन छोटी-छोटी चौकोरें इकट्ठी होकर पीप की झील का सा प्रभाव उत्पन्न करती हैं। इनके श्वेत, काले, पीले, स्पून्जीक रग पीप की झील मे गडमड होते नजर आते है। इस झील मे मेरे बच्चे, मेरा दिल और मेरे फेफड़े पसलियों के घेरा मे घिरे रहते हैं।

चौथे चौकोर का रग पीला है और पाचवें का हरा, परन्तु ऐसा हरा है जैसा गहरे समदर का होता है। ऐसा हरा नहीं जैसा वसन्त ऋतु का होता है। यह एक खतरनाक रग है। इसे देखकर शार्क मछलियों की याद आने लगती है और डूबते हुए जहाजरानों की चीखें सुनाई देने लगती है और उठती हुई तूफानी तरंगों की गूज और गरज कफन-सा पैदा करती है और यह पीला मटियाला रग तो मनहूस है ही। यह रग केसर की तरह है, वसत की तरह पीला नहीं। यह रग मिट्टी की तरह पीला है। क्षय रोगी की तरह पीला है। पहले पाप की तरह पीला है। एक ऐसा पीला रग जिसमे पश्चाताप का हल्का-सा अनुभव भी शामिल है। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे यह चौकोर बार-बार कह रहा हो, "मैं क्यों हू ? मैं क्यों हू ?"

जहा मैं अपना अनुभव रखता हू उसके दायें कोने मे नीले और पीले रग की दस सीधी रेखाये बनी हुई हैं और जहा मैं अपने पाव पसार कर सोता हू वहा ग्यारह सीधी रेखायें है। ये पीले और फीरोजी रग की है। गलीचे के मध्य मे छह सीधी रेखाये लाल और श्वेत रग की है और उनके बीच मे एक गहरा स्याह बिंदु है। जब मैं गलीचे पर लेट जाता हू तो मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे सिर से पाव तक किसी ने मुझे इन सीधी रेखाओं की हुको मे जकड लिया है। मुझे सलीब पर लटका कर मेरे मन मे एक गहरे स्याह रग की कील ठोक दी हो। चारो ओर गदा रक्त है, पीप है और हरे रग का समुद्र है जो शार्क मछलियों और ओरसमुद्री हजार-पायो से भरा पडा है। शायद मसीह को भी सलीब पर इतना कष्ट न हुआ होगा जितना मुझे इस गलीचे पर लेटते समय होता है। परतु कष्ट-साधना तो मनुष्य का एक नियम है इसीलिए तो यह गलीचा मैं अपने-आपसे अलग नही कर सकता। न इसके होते हुए मुझे कोई और गलीचा खरीदने का साहस होता है। मेरे पास यही एक गलीचा है और मेरा विचार है कि मरते समय तक यही

एक गलीचा रहेगा।

इस गलीचे को वास्तव में एक युवती खरीदना चाहती थी। हजरतगंज में एक दुकान के भीतर वह इसे खुलवाकर देख रही थी कि मेरी नजरों ने इसे पसंद कर लिया। वह युवती कुछ निश्चय न कर सकी और इसे वहीं छोड़कर अपने ब्लाउज के रेशमी कपड़े देखने लगी।

मैंने मैनेजर से कहा, "यह गलीचा मैं खरीदना चाहता हूं।"

वह युवती की ओर संकेत करते हुए बोला, "मिस रूपवती ··· शायद पसंद कर चुकी हैं ··· शायद। ठहरिए, मैं उनसे पूछता हूं।"

रूपवती बोली, "गलीचा बुरा नहीं।"

"·· बुरा नहीं, क्या मतलब है आपका?" मैंने भड़ककर कहा, "ऐसा गलीचा संसार में कहीं न होगा। दांते की कल्पना ने भी ऐसा सुंदर नक्शा तैयार न किया होगा। यह गलीचा अस्पताल की गंदी बाल्टी की तरह सुंदर है। पागलपन के रोगों की तरह आत्मवर्द्धक है। यह आग और पीप की नदी हातिमताई की यात्रा की याद दिलाता है। प्राचीन अतालवी संन्यासी चित्रकारों की अनुपम कृतियों की याद ताजा करता है। यह गलीचा नहीं इतिहास है, मानवता की आत्मा है।"

वह मुस्करायी। उसके दांत अत्यंत श्वेत थे, परंतु जरा टेढ़े-मेढ़े और एक-दूसरे से जुड़े हुए-से। फिर भी वह मुस्कराहट अच्छी मालूम हुई। कहने लगी, "क्या आप कभी इटली गये हैं?"

मैंने उत्तर दिया, "इटली कहां? मैं तो अभी हजरतगंज के उस पार भी नहीं गया। उम्र गुजरी है इसी वीराने में—यह पान की दुकान और वह सामने काफी हाउस।"

मैनेजर ने अब हमारा परिचय कराना उचित समझा, बोला, "आप कलाकार हैं। कागज पर चित्र बनाते हैं। यह मिस रूपवती हैं। यहां लड़कियों के कालेज में प्रिंसिपल होकर आयी हैं। अभी-अभी इंग्लैंड से शिक्षा प्राप्त करके यहां ···"

वह बोली, "चलिये, यह गलीचा आप ही ले लीजिये। मुझे तो अधिक पसंद नहीं।"

"आपकी बड़ी कृपा है।" मैंने गलीचे का मूल्य चुकाते हुए कहा, "क्या आप मेरे साथ काफी पीना पसंद करेंगी? चलिये न जरा काफी हाउस तक, यदि बुरा

न··अर्थात · "

"धन्यवाद ! लेकिन मैं जरा यह ब्लाउज देख लू ।" वह फिर मुस्करायी।

मुस्कराहट भी भली मालूम हुई । सुदर गोल चेहरे का रग पीला था । सदली रग पर होठो की हल्की-सी लाली एक विचित्र प्रकार का रगीला सम्मिश्रण-सा उत्पन्न कर रही थी । ब्लाउज का कपडा खरीदकर जब वह मेरे साथ चलने लगी तो लडखडा गयी । मैंने बाह से पकडकर सहारा दिया और पूछा, "क्या बात है ? आप सदैव लडखडाकर चलती है ?"

वह बोली, "नही तो " मैंने ध्यान से देखा । पाव पर पट्टी बधी हुई थी ।

"घाव है ?" मैंने पूछा ।

"हा, अगूठे का नाखून बढ गया था । जिल्द के अदर जराह का सर्जन बिलकुल गधा था · " उसने माथे पर साडी का पल्लू सरकाया और जब वह पहली बार मुडी तो मैंने उसके बालो मे गर्दन के निकट दायी और गुलाब के पीले फूल टिके हुए देखे । जब फिर वह मुडी तो माथे का कुमकुम उज्वल नजर आया । इससे पूर्व यह कुमकुम इतना सुदर क्यो न था ? मैंने सोचा ।

काफी हाउस मे बैठकर मालूम हुआ कि वह सुदर थी । कुछ तो काफी हाउस मे प्रकाश का प्रबध ऐसा है कि पुरुष कुरूप नजर आते है और स्त्रिया सुदरतम । फिर—हा—कुछ तो था, अन्यथा ये लोग बार-बार मुड़कर क्यो देखते थे ? स्त्रिया तेज नजरो से क्यो घूरती थी ? बैरे इतने शीघ्र मेज पर क्यो आते थे ?

वह मुस्कराकर कहने लगी, "देखो बैरा, थोडा-सा गर्म दूध और गर्म पानी एक अलग प्याले मे ।"

"गर्म पानी तो · " बैरे ने रुककर कहा ।

"थोडा-सा गर्म पानी, बस ।" वह फिर मुस्करायी और बैरा सिर से पाव तक पिघल गया जैसे उसका सारा शरीर शीशे का बना हुआ हो । मैं उसे पिघलते हुए देख रहा था । उसके होठो पर मुस्कराहट आयी और उसके सारे शरीर को पिघलाती हुई चली गयी । यह नजर क्या है ? यह चमक कैसी है ? क्या यह काफी हाउस की बिजलियो का चमत्कार तो नही ?

"और बैरा, अडे के सैंडविचेज " वह फिर बोली ।

बैरे ने वापस आकर कहा, "जी, अडे के सैंडविचेज तो खत्म हो गये ।"

"थोड़े से भी नहीं?" उसकी बड़ी-बड़ी मासूम, घायल-सी आंखें और भी खिलती हुई मालूम हुईं, बस लाचार। "एक प्लेट भी नहीं?"

सैंडविचेज़ भी मिल गये।

"नहीं बिल मैं दूंगी।"

"नहीं, यह कैसे हो सकता है? मैं पुरुष हूं।"

वह हंसी, "बहुत पुरानी बात है।" और उसने बिल दे दिया।

घर पर नौकर को गलीचा पसंद न आया। उन दिनों एक तेज स्वभाव का कवि मेहमान था जो फ्री वर्स में कविता लिखा करता था, शराब पीता था और पांच वक्त नमाज पढ़ता था। उसे भी गलीचा पसंद न आया। मैंने पूछा तो बस 'हूं' करके रह गया। वह कविताएं जितनी लंबी लिखता था, बातें उतनी ही कम करता था।

"हूं क्या मतलब?" मैंने चिढ़कर कहा, "कुछ तो कहो, इन रंगों का मेल…"

"हूं।"

रूप उसे बड़े ध्यान से देख रही थी। अब वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। उस सड़े-घुसे कवि से कहने लगी, "अपनी नयी कविता सुनाओ…तुम्हें मालूम है आजकल अस्पेंडर और लाडन किस चीज पर कविताएं लिख रहे हैं?"

"हूं।" वह अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर गुर्राया।

मैंने रूप से पूछा, "क्या उन्होंने तुम्हें अपनी कविताएं सुनायी थीं?"

"नहीं, लेकिन मुझे तो जौ ने बताया था।"

"कौन जौ?"

"जौ ब्राउन। नाम नहीं सुना क्या? आजकल आक्सफोर्ड का सर्वप्रिय कवि है। भारत में अभी उसकी कविताएं नहीं पहुंचीं। लंदन में मुझ पर मोहित हो गया था।" वह कुछ विचित्र, कुछ निर्लज्ज, कुछ शर्मीली-सी हंसी के साथ कहने लगी और माथे का कुमकुम याकूत की तरह चमकने लगा।

मैंने पूछा, "तुम्हारा जीवन विजयपूर्ण मालूम होता है।"

"नहीं।" उसने आह भरकर कहा, कुछ इस प्रकार कि मेरा जी चाहा कि उसे छाती से लगा लूं।

"हूं।" कवि बोला।

बन जाती है। जो एक को आंसू रुलाती है और दूसरे के होंठो पर मुसकान की छाया भी नही ला सकती ?

मैंने गलीचे को थपकते हुए पूछा।

गलीचे ने उत्तर दिया, "मैं सलीब हूं, मैं दुख और दर्द जानता हूं, दुख और दर्द की दवा नही जानता।"

और रूप ने कहा, "यह भाग्य है। भाग्य तुम्हें गलीचा खरीदने के लिए वहा ले गया। भाग्य ने तुम्हे मुझसे मिलने का अवसर दिया। अब यह तुम्हारा भाग्य है कि मुझे तुमसे वह प्रेम न हो सका। हजार प्रयत्न करने पर भी यह मित्रता प्रेम मे परिवर्तित नही हो सकती। यह भाग्य नही तो और क्या है ?" फिर कहने लगती है, "कवि ! अपनी कविता सुनाओ।"

कुछ दिनों बाद उसने एकाएक मुझसे कहा, "मुझे तुम्हारे कवि से प्रेम हो गया है।"

"झूठ ··उस चुगद से···"

"उसकी आखें देखी हैं तुमने ?" वह आह भरकर बोली, "जैसे मसीह सलीब पर लटका हुआ हो · कितना दुख है उन आखो मे।"

मैंने कहा, "अगर तुम कहो तो मैं अपनी आखें अंधी कर लू ?"

शायद मेरी बात उसे बुरी लगी। गभीर होकर बोली, "क्या करू ?"

"हा, दिल ही तो है।" मैंने व्यगपूर्वक कहा।

"हू।" कवि बोला।

जिस दिन वे दोनों विदा हुए मैंने घर पर एक छोटी-सी दावत दी। रूप ढाके की काली साडी पहने हुए थी। आंखों में काजल गहरा था। रेशमी चूडियो का रग भी काला था। हर रोज उसे देख कर उजाले का, सूरज का, चाद का, चाद की किरणो का, प्रकाश का अनुभव होता था। न जाने आज उसे देखकर क्यो अंधकार का अनुभव हो रहा था। क्यों वह अपने उन पूर्ण प्रसन्नता के क्षणो मे भी दुख और निराशा की मूर्ति दिखाई देती थी ? क्या यह निर्धन कलाकार के मन का अंधकार तो नही था ? आज मैंने उससे वह गीत सुनाने की प्रार्थना की थी जो उसने पहले दिन गाया था···मुझे स्मरण है, गाने के बाद वह नाची भी थी। मैंने उसका चेहरा नही देखा, मैं उसके पांव देखता रहा। धुंधले-धुंधले से पांव,

सुंदरता का विश्लेषण करता। कोयले से उसने आशा का चित्र बनाया और फिर अपने स्टुडियो में हर किसी को वह चित्र दिखाता। वह अपने घाव दिखा रहा था 'देखो''देखो' देखो मुझे तुम्हारी क्या परवाह है मैं अपनी आत्मा का स्वयं मालिक हूं''विष।''कोयले।

परंतु वह जो कभी हजरतगंज के उस पार न गया था, अब वहां से भागने की सोचने लगा। फुटपाथ पर चलते-चलते वह हजारों उल्टे-सीधे स्वप्न देखने लगता। मार्ग के हर पत्थर पर उसे किसी के पांव के धुंधले-धुंधले साये कांपते हुए मालूम होते। काफी की प्याली के हर श्वास में वह उसके गर्म श्वास का स्पर्श महसूस करता और बिजली के लट्टुओं के उज्ज्वल प्रकाश में उसे हजारों कुमकुम तैरते दिखायी देते। यह हंसी, वह मुड़कर देखना, कहां से आयी थी? बुलबुल पिंजरे की तालियां तोड़कर उड़ गयी थी और वह अभी तक क्यों हजरतगंज के वीराने में कैद था?'''क्यों? क्यों? क्यों? वह मेंहदी-रंगी रेखा बार-बार बिजली की तरह चमक कर उससे बार-बार पूछ रही थी।

अब जब कि वह शहर छोड़कर जा रहा था उसने अपने सब मित्रों को, उस 'वीक' लड़की को और उसकी सब सहेलियों को दावत दी और जब दावत के बाद सब लोग चले गये तो 'वीक' लड़की हैरान और परेशान उसी गलीचे पर बैठी रही थी और फिर एकाएक उसकी छाती से लगकर रो पड़ी थी। वे गर्मागर्म आंसू उसकी छाती में बर्फ के फल बने जा रहे थे। प्रेम का उत्तर प्रेम क्यों नहीं होता? यह कैसी आग है जो एक को जलाती है और दूसरे के दिल में पत्थर की सिल बन जाती है?

एक लड़की गलीचे पर लेटी थी। बांहें ऊपर की सीधी रेखाओं की दुम में थीं और पांव नीचे की सीधी रेखाओं में। गलीचे ने चुपके से उसके दिल में एक काली कील ठोंक दी। अहराम के लिए एक और ममी तैयार हो गयी, परंतु वहां जगह कहां थी। छाती में अब भी वह दो पांव नाच रहे थे और वही गुलाब की एक पीली कली'''

मैंने गलीचे से पूछा, "यह कैसा खेल है? मैं किसको मुंह चिढ़ा रहा हूं? ये घाव किसके हैं? यह लड़की क्यों रो रही है? यदि यह सब भाग्य है तो फिर यह क्रियात्मक चेष्टा क्या है जो ममी को भी जीवित कर देने पर तुली हुई है?"

गलीचे ने उत्तर दिया, "मुझे मालूम नही, मै तो एक गलीच हू जो दिल मे काली कील ठोकती है, उज्वल प्रकाश नही लाती, जो भाग्य का अत दिखलाती है उसका प्रारभ या यौवन नही।"

तुझे जलाकर राख न कर डालू ?

उस नये शहर मे।

चार आदमी गलीचे पर बैठे ताश खेल रहे हैं।

दो ऐक्टर।

और जो तमाशा दिखा रहा है वह कलाकार है।

ताश खेलते-खेलते ऐक्टर और सौदागर लडना शुरू करते हैं। हाथापाई की नौबत आती है। गलीचा नोचा जाता है क्योकि एक चाल मे सौदागर भूल से या जान-बूझकर आठ आने अधिक ले गया था। मेरा गरेबान तार-तार हो चुका है क्योकि जो आदमी बीच-बचाव करता है वही सबसे अधिक पिटता है।

फिर मै सोचता हू इस बदमिजाजी को दूर करने का क्या तरीका है ? गपशप ? असभव, ग्रामोफोन ? वाहियात, चाय ? लानत, शराब ? वाह-वाह।

सब लोग शराब पी रहे है। कलाकार की आखें लाल है। सदैव हसने और प्रसन्न रहने वाला सुदर ऐक्टर, सदैव चुप रहने वाले, कदरे कम सुदर ऐक्टर से कह रहा है, "प्रेम ? प्रेम ? साले। तू प्रेम क्या जाने ? अभी कालेज का लौडा है तू·· ऐं प्रेम का नशा मुझसे पूछ· साली यह शराब बिलकुल फीकी है · रानी को देखा है तुमने ?"

"रानी 1944 की नबर एक ऐक्टर्स है न ?" मैने पूछा।

"जी हा, वह—वही—साले तू क्या जाने वह मेरी प्रेमिका है समझे ? · ऐं। मैने उसके लिए अपने मा-बाप से गालिया खायी रकीबो से कई लडाइया लड़ी·· अपना घरबार छोड दिया· यह अगूठी साले, देखते हो · ये कमीज के बटन· यह कफ बटन ये सब सोने के हैं, साले। तू क्या जाने· ये सब उसने दिये हैं · उपहार लेकिन मै उससे शादी नही करूगा, कभी नही करूगा।" उसने निश्चयपूर्ण स्वर मे कहा।

"क्यो ?"

"वह मुझे चाहती है लेकिन वह मुझसे बहुत अमीर है·· वह मुझसे शादी

करना चाहती है, पर मैं मर जाऊंगा, उससे ब्याह नहीं करूंगा।"

"तुम्हें उससे प्रेम नहीं?" एक सौदागर ने पूछा।

"भई, घर आती लक्ष्मी क्यों छोड़ते हो?" दूसरे सौदागर ने पूछा।

ऐक्टर ने मुट्ठियां भींचकर कहा, "मैं जो हूं वही रहूंगा। मैं उससे प्रेम करता हूं लेकिन उसका दास बनकर नहीं रह सकता। मैं उसका प्रेम चाहता हूं, धन नहीं, उफ्।" ऐक्टर ने जोर से गलीचे पर हाथ मार कर कहा और फिर कहकहा लगाकर हंसने लगा।

गलीचा कांप उठा। उसका रंग विचित्र-सा हो गया।

"और शराब दे हरामजादे।" वह अपने खाली गिलास को टटोल रहा था।

मैंने कहा, "रानी! अरे भई, आज ही तो मैंने समाचार पत्र में पढ़ा है कि रानी ने एक अमेरिकन से शादी कर ली है।"

ऐक्टर ने धीरे से शराब का गिलास गलीचे पर लुढ़का दिया। उसकी उंगलियां कांच के स्तर पर दृढ़ता से जम गयीं। कांच उसकी उंगलियों को काटता हुआ टुकड़े-टुकड़े हो गया।

वह रुंधे हुए कंठ से बोला, "यह झूठ है, बिलकुल झूठ है।"

कलाकार ने मेज पर से समाचार-पत्र उठाकर पढ़ा।

ऐक्टर का चेहरा।... वह गलीचे पर दोनों कुहनियां टेके मेरी ओर देख रहा था...उसके चेहरे का रंग बदलने लगा। उसका चेहरा सूता जा रहा था। नसों के नैन-नक्श उभर रहे थे।

"यह झूठ है, बिलकुल झूठ है।"

वह फिर चिल्लाया। फिर एकदम चुप हो गया। दूसरा ऐक्टर उसके गिलास में शराब उंडेलने लगा। वह अब भी चुप था, परन्तु पहला ऐक्टर गलीचे से लगकर सिसकियां भर रहा था। फिर उसने गलीचे पर कै कर दी...मुझे गलीचे का रंग उड़ता हुआ मालूम हुआ। सुर्ख से श्वेत और फिर पीला। जैसे यह गलीचा न हो, जीवन का कफन हो।

रानी! रानी! रानी!

सुबह मैंने गलीचा धुलवाया और साफ कराकर फिर कमरे में रखा कि मेरी प्रेमिका कमरे में प्रविष्ट हुई। यह मेरी नये शहर की प्रेमिका थी। यहां आकर

कलाकार ने फिर पेश कर दिया था। प्रेम करना कितना कठिन है परन्तु जब एक बार प्रेम की मृत्यु हो जाये तो उसके बाद प्रेम करना कितना सरल हो जाता है। है न! मरदूद! बोलते क्यों नहीं हो? उत्तर दो। मेरी प्रेमिका के होंठ मोटे थे, गाल भी मोटे थे, शरीर भी मोटा था, हंसी भी मोटी थी, बुद्धि भी मोटी थी, वह औरत न थी, एक दूसरा निखरा गलीचा थी। आज उसने अपने बालों की दो चोटियां बना डाली थीं और उनमें चमेली के फूल सजाये थे।

वह गलीचे पर आकर बैठ गयी।

मैंने उसका मुंह चूमकर कहा, 'आज तो तुम क्लियोपेट्रा को भी मात दे रही हो।'

"क्लियोपेट्रा क्या है?' उसने पूछा।

"मिस्र की महारानी।"

"मिस्र?'

"हां, मिस्र! वह देश जहां मरने के बाद अहराम तैयार होता है और मृतकों की ममियां तैयार की जाती हैं। भगवान करे तुम्हारी मृत्यु भी क्लियोपेट्रा की तरह हो।"

"हाय, कैसी बातें करते हो? क्या हुआ था उसे?"

"सांप से डसवा कर मर गयी थी।'

वह एक हल्की-सी चीख मारकर मेरे निकट आ गयी, "डराते हो मुझे।" उसने मेरी बांह पकड़कर कहा। फिर वह हंसी, अपनी मोटी भद्दी हंसी, जैसे भैंस जुगाली कर रही हो। फिर उसने अपने होंठ मेरे आगे बढ़ा दिये जैसे कोई उदार जाट किसी अपरिचित राही को गन्ना चूसने को दे दे।

मैंने गन्ना चूसते हुए कहा, "यह गलीचा जीता एक बार है लेकिन मरता बार बार है। आह! यह मौत बार-बार क्यों आती है! अब आ भी जाये अन्तिम मौत।"

"आज यह तुम बार बार मौत का वर्णन क्यों कर रहे हो?" वह भिनभिनायी।

"कुछ नहीं, तुम नहीं समझोगी।" मैंने कहा, "हां, यह तो बताओ आज तुम्हारे ताजा होंठों में, आंखों से, बालों से यह कैसी सुंदर महक निकल रही है?"

"कुछ नहीं," वह हंसकर बोली, "आज खोपरे का सुगंधित तेल लगाया है।"

मैंने गलीचे की ओर कनखियों से देखा। उसका रंग उड़ता जा रहा था।

उसकी मृत्यु मुझसे देखी न जाती थी। मैं घबराकर कमरे से बाहर निकल गया।

सीधा स्टेशन पर पहुंच गया। इरादा था कि जी भरकर बियर पियूंगा। केवल अपने गुर्दों ही को नहीं, अपनी आत्मा को भी जुलाब दूंगा ताकि यह सारा कूड़ा-करकट बह जाये, निकल जाये। तबियत हल्की हो जाये।

स्टेशन पर बियर से पहले रूप मिल गयी।

"अरे, तुम कहां ?"

"जूनागढ़ गयी थी पहाड़ पर।"

"और कवि ?"

वह खासकर बोली, "उसने मुझे छोड़ दिया है।"

"छोड़ दिया है, क्यों ?"

"मुझे क्षय रोग है, जूनागढ़ गयी थी न ?"

उसकी नजरों में हरे रंग का समुद्र था और एक पीलियामय सूखा चेहरा भवर में डुबकियां खा रहा था। फिर वह चेहरा भी गायब हो गया। अब कवि का सड़ा-बुसा चेहरा लहरों में तैरने लगा। कवि का चेहरा सिर हिलाकर कह रहा था, "हूं।"

मैंने कहा, "कहां है वह हरामजादा ?"

"जाने दो," वह विनयपूर्ण स्वर में बोली "उसे गाली न दो मुझे उससे अब भी प्रेम है।"

'लेकिन…"

"हां," वह बोली, "इस लेकिन के बाद भी अब मैं अपने घर जा रही हूं—मायके—आराम में मरूंगी।"

"नहीं-नहीं।" मैंने सख्ती से कहा, "अब तुम्हें नहीं जाने दूंगा। जीवन ने तुम्हें मुझसे छीन लिया। अब मृत्यु के दरवाजे तक दोनों एक साथ चलेंगे और यदि इस संसार के बाद कोई संसार है तो शायद…'

वह हंसी। वही उज्वल हंसी। वही संदली चेहरा। वही दमकता हुआ कुमकुम।

मैंने उसकी बांह पकड़कर कहा, "घर चलो रूप। जीते-जी तुमने मुझे अपने साथ न रहने दिया, अब मृत्यु के कुछ क्षण तो प्रदान कर दो।"

वह मुस्करायी। बोली, "तुम नहीं जानते, प्रेम जीवन में और मृत्यु में भी एक सा व्यवहार करता है।"

गाड़ी ने सीटी दी।

वह बोली, "मुझे आशा न थी कि तुम कभी मिलोगे। खेद है कि मैं यहां रुक नहीं सकती। हां, यह पुस्तक तुम्हें दे सकती हूं, अरल्के की कविताएं।"

गार्ड ने झंडी दिखायी।

वह अपने डिब्बे की ओर चल दी। मैं उसके चेहरे की ओर देख न सका। मेरी आंखें फिर उसके पांव पर गड़ गयीं। वे पांव चलते गये, चलते गये, दूर जाते हुए भी मानो निकट आते गये। बिलकुल मेरी छाती पर आ गये और मैंने उन्हें उठा कर अपनी छाती के भीतर छिपा लिया।

मैंने नजर उठायी।

गाड़ी जा चुकी थी।

प्रमिला अभी तक मेरी बाट देख रही थी। बोली, "कहां चले गये थे?"

मैं चुप ही रहा।

"यह कौन-सी पुस्तक है?"

"अरल्के की।"

"क्या?"

"एक कवि की कविताएं हैं।"

"मुझे सुनाओ, क्या कहता है यह?"

मैंने पुस्तक खोली। पद्रहवां पन्ना आंखों के सामने आया। मैंने धीरे-धीरे पढ़ना शुरू किया, "हे भगवान! तूने जीवन अपनी इच्छानुसार दिया, अब मृत्यु तो मेरी इच्छा के अनुसार प्रदान कर दे। तुझसे और कुछ नहीं चाहता हूं, भगवान!"

"फिर मृत्यु?" वह बोली, "बुरा शकुन है।" उसने पुस्तक मेरे हाथ से छीन कर परे रख दी और अपने होंठ मेरी ओर बढ़ा दिये। गलीचा उबल रहा था। बिलकुल आग था। शोलों की नदी, पीप का समुद्र, विष का खौलता हुआ चश्मा। मैंने उससे पूछा, "तुम सलीब हो, तुमने मनुष्य के बेटे को मसीह बनाया है। बताओ, मुझे क्या बनाओगे?"

गलीचे ने कहा, "जो तुम स्वयं बन चुके हो—एक अहराम—एक खोखला अहराम, जिसकी छाती में ममियां दफन हैं।"

मैंने अपनी प्रेमिका से कहा, "मेरा जी चाहता है इस गलीचे को जलाकर राख कर दूं।"

वह बोली, "हां, पुराना तो हो गया है।"

"लेकिन, मैंने रुककर दुखी स्वर में कहा, मेरे पास तो यही एक ही गलीचा है और यही एक जीवन है। न इसे बदल सकता हूं, न इसे ."

यह कहकर कलाकार गन्ना चूसने लगा।

चौराहे का कुआं

मेरा बच्चा बीमार था। मेरा अनुमान था कि वह मर रहा है। लोगो ने कहा, "अगर तुम इसे चौराहे के कुए पर ले जाओ और उस कुए का एक घूट पानी उसके कठ मे उतार दो तो तुम्हारा बच्चा बच जायेगा।"

मैने पूछा, "चौराहे का कुआ कहा है?"

वे बोले, "वह कही नही गाव मे है।"

"कही नही गाव कहा है?" मैने पूछा।

हमारे गाव के सबसे बुड्ढे वैद्य ने कहा, "तुम यहा से वहा जाओ, वहा से जहा जाओ, जहा से तहा जाओ, और जब तुम तहा पहुचोगे तो वहा से कहा को मुड जाओ, बिलकुल सामने तुम्हे कही नही गाव मिलेगा। उसके मध्य मे चौराहे का कुआ है।"

मैने वैद्य का शुक्रिया अदा किया। बच्चे को अपनी गोद मे उठाया और अपने गाव से बाहर निकल खडा हुआ।

मै यहा से वहा गया, वहा से जहा गया, जहा से तहा गया और तहा मे पहुच कर मै जब कहा को मुडा तो मुझे अपने सामने चार सडकें दिखायी दी।

एक लाल सडक थी।

एक नीली सडक थी।

एक काली सडक थी।

एक सफेद सडक थी।

और इन चारो सडको को काटते हुए मडलाकार रूप मे वह कही नही गाव बसा हुआ था और इस गाव के मध्य मे चौराहे का कुआ था।

चौराहे के कुए पर बहुत-से लोग एकत्र थे, पुरुष और स्त्रिया, बूढे और बच्चे, बहुत-से लोग जमा थे, एक मेला-सा लगा था और इन लोगो मे एक लबे डील-डौल का सफेद बालो वाला बूढा इधर-उधर घूमता हुआ अत्यत सुदर और शील-वान मालूम होता था। प्रत्येक व्यक्ति उसे आदर दे रहा था, और बूढा आदर स्वीकार करते हुए बडे शायराना अदाज मे अपनी बाहो को ऊपर-नीचे घुमाता

रहा, ऐसी शायरी जो केवल फलदार डालियो मे होती है।

बूढे ने मुझसे पूछा, "तुम इस गाव मे अपरिचित हो ?"

मैने आदर से सर झुका दिया।

बूढे ने पूछा, "तुम कहा से आये हो ?"

"मै यहीं कहीं गाव से आया हू। मेरा बच्चा बीमार है और वैद्य जी ने कहा है—अगर मैं अपने बच्चे को चौराहे के कुए का एक घट पानी पिला दू तो मेरा बच्चा बच जायेगा।"

"पानी से क्या होगा ?" बूढे ने बडे निराश स्वर मे पूछा।

"पानी मे बडी ताकत है बाबा।"

"आग मे बडी ताकत है बेटे।"

"आग और पानी दो ही बडी ताकते है बाबा। आग, जो मनुष्य के दिल के अदर है, पानी, जो उसकी आख मे है, जिस काम को आग पूरा नहीं कर सकती, उसे पानी कर देता है, ऐसा वैद्य जी ने कहा था।"

बूढा मेरी बात सुनकर मुस्कराया, मेरे कधे पर हाथ रख कर बोला, "तुम्हारे गाव का वैद्य बड़ा समझदार मालूम होता है, मगर अफसोस, इस समय तुम्हे इस कुए से एक बूद पानी नहीं मिल सकता।"

"क्यो ?"

"देखते नहीं हो, हम कुआ साफ कर रहे है ?"

सहसा ठीक उसी समय एक पनडुब्बे ने बाहर निकल कर जाल को कुए के बाहर उलट दिया। जाल मे बहुत-सा कीचड जमीन पर बिखर गया। एकदम बहुत-से लोग दौड पडे और अपने दोनो हाथो मे उस कीचड मे कुछ टटोलने लगे, मगर उन्हें कीचड मे कुछ न मिला। पनडुब्बे ने खाली जाल को हाथ मे लेकर फिर कुएं मे छलाग लगा दी।

"यह पनडुब्बा क्या ढूढ रहा है ?" मैने बूढे से पूछा।

"कुछ ढूढ नहीं रहा है।" बूढे ने उत्तर दिया, "यह कुए का गदा कीचड़ बाहर निकाल के फेक रहा है। जब सारा कीचड बाहर निकल जायेगा तो यह कुआ साफ हो जायेगा, फिर तुम इसका पानी अपने बच्चे को पिला सकते हो।"

मैं बच्चे को लिए किनारे पर खड़ा हो गया। पनडुब्बा जाल को लिए हुए

बाहर निकला, उसने कीचड नीचे जमीन पर बिखेर दिया। कीचड मे से एक कघी निकली।

पनडुब्बे ने पूछा, "यह कघी किसकी है?"

एक नवविवाहित लडकी ने शरमा कर पनडुब्बे के हाथ से कघी ले ली और फिर अपने पति के कधे पर झुक गयी। उस लडकी के बाल सुनहरे और लबे थे, चेहरे का रग गेहुंवा, आखें बडी-बडी और भूरी। कभी-कभी जब उनमे आसू आ जाते तो प्रातःकालीन आकाश की लालिमा की तरह चमक उठती थी।

"याद है?" वह अपने पति से धीरे से बोली, और उसकी उगलिया कघी पर फिरने लगी, जैसे कघी का प्रत्येक दाता समय का एक मधुर क्षण हो, जो अब कभी वापस न आयेगा।

"याद है।" उसके जवान पति ने धीरे से कहा और वह स्वप्नो मे खो गया। इसी कुए के किनारे उसने अपनी शरमीली को पहली बार देखा था, जब वह स्नान करने से पहले अपने सुनहरे बालों मे कघी कर रही थी और वह प्यासा था और उसने अपना घोडा इसी कुए पर रोक कर उससे पानी मागा था।

पानी।

पानी मे बडी ताकत है।

पानी मे बडी मुहब्बत है।

युवा पति ने अपनी नवविवाहिता पत्नी से कघी ले कर उसे अपने होंठो से लगाया, फिर उसे अपनी जेब मे रख लिया। लडकी ने उसे पानी पिलाने से पहले कघी कुए की जगत पर रख दी थी, उसके सुनहरे बाल उसके कधो पर बिखर गये थे और जब वह पानी पिला कर पलटी थी, तो नौजवान ने उसका हाथ पकड लिया था और खीचातानी मे कघी उछलकर कुए मे आ गिरी थी।

"याद है?"

किसको याद न होगा, हाथों का वह पहला स्पर्श, जब कघी पानी मे गिर गयी थी, जब निगाह दिल मे उतर गयी थी, जब बालो की हर किरण सूर्य बन गयी थी। किसे याद न होगा?

पनडुब्बा फिर बाहर निकला, बाहर निकल कर फिर उसने जाल उलट दिया, अब की उसमे से एक लबी-सी छुरी निकली।

उज्वल बालों वाले बूढे ने छुरी को हाथ मे लेकर पूछा, "यह छुरी किसकी है?"
कुछ क्षण के लिए उस भीड मे से कोई न बोला, सब उस छुरी को जानते थे। उस छुरी की मूठ हाथीदात की थी और बहुत ही सुदर थी। यह छुरी जिस नवयुवक की थी, वह भी इस जनसमूह मे खड़ा था और सब लोग उसकी तरफ देख रहे थे, क्योकि सबको मालूम था कि उसने उस अत्याचारी थानेदार को समाप्त कर दिया था, जो उनके गाव की बहू-बेटियो की इज्जत लूटता था। मगर नवयुवक के विरुद्ध कोई प्रमाण न मिल सका था और पुलिस का मुक्दमा खारिज हो गया था, और जिसने गाव की इज्जत ली थी उसका नाम व निशान पृथ्वी तल से मिट चुका था। पानी की लहरों ने इस छुरी को इस तरह लोगो की दृष्टि से छिपा दिया था जिस तरह मा अपने अपराधी बच्चे को छिपा लेती है।

पानी मे बडी ताकत है।

पानी जो प्रतिशोध है।

उस नौजवान की आखें लाल हो गयी। सहसा उसने आगे बढकर वृद्ध के हाथ से छुरी अपने हाथ में लेकर अपने कमरबद मे खोस ली, और गर्व व अभिमान से उसकी मां ने उसका हाथ पकड़ लिया।

पनडुब्बा फिर जाल बाहर लाया। अब की काले रग के कीचड में हाथीदात की बहुत-सी चूडियां थी।

गाव की सबसे नौजवान विधवा धीरे-धीरे सिसकने लगी, क्योकि शादी के दिन उसके दुलहा ने विष खा लिया था। उसके दुलहे ने इसलिए जहर खाया था, क्योकि उसे किसी दूसरे गाव की लडकी से प्रेम था —वह लडकी जो कभी उसकी न हो सकी। सुहागरात को अपने सामने अपने पति की लाश देख कर वह लजीली और शरमीली चीख कर बाहर भाग गयी थी और उसने अपनी सारी चूडियां उतार कर कुए मे फेंक दी थी।

बूढा चुपचाप खड़ा रहा ··

वह युवती विधवा धीरे-धीरे आगे बढी और झुक कर एक-एक चूडी को बडी सावधानी से अपने आचल मे समेटने लगी, जैसे वह अपनी चूडिया नही अपनी अनदेखी कामनाए गिन रही हो। सब चूडिया उठा के उसने अपने आंचल मे डाल ली और फिर सर झुकाए हुए वहा से चली गयी। उसके जाने के बाद भी देर तक

लोग चुपचाप खड़े रहे।

बूढ़े ने कहा, "यह हमारे पुरखों का कुआ है, यह हमें जीवन भी देता है और मृत्यु भी। इस कुए से कोई बच नहीं सकता।"

सहसा पनडुब्बा फिर बाहर निकला, अब की उसका चेहरा नीला पड़ गया था और छाती जोर-जोर से धड़क रही थी। अब मालूम हुआ था जैसे वह बहुत दूर नीचे गहरे अथाह पानियों से कुछ ढूढ के लाया है

पनडुब्बे ने बड़ी सावधानी से जाल को खोला। अब की जाल में कीचड़ कम था, रेत अधिक थी। इस रेत में एक नन्हे बच्चे का शव था।

यकायक सब लोग दो कदम पीछे हट गये और ध्यान से उस बच्चे की लाश को देखने लगे। उन सब की निगाहें आश्चर्य से फटी-फटी थीं। उज्जल कानि वाले बूढ़े ने उस मुर्दा बच्चे को अपने दोनों हाथों में ऊपर उठा लिया और बोला, "यह बच्चा किसका है।"

कोई नहीं बोला।

कोई आगे नहीं बढ़ा।

पुरुषों के चेहरे पीले थे, विवाहिता स्त्रियों ने घूघट काढ़ लिये थे, युवती-कुवारियों की नगिाहें नीची थीं।

"यह बच्चा किसका है?" उज्जल कानिवाले वृद्ध ने कुछ कठोर स्वर में फिर पूछा।

सब चुपचाप, सन्न कुए के चारों ओर घेरा बांधे खड़े थे, किसी ने कोई उत्तर न दिया, किसी ने उस बच्चे को अपना न कहा।

बूढ़े ने मुर्दा बच्चे को पनडुब्बे के हवाले करते हुए बड़े अफसोस से कहा, "पनडुब्बे। इस बच्चे को वापस कुए में डाल दो।"

फिर वह मेरी तरफ खेद और दुख भरी निगाहों से देखते हुए बोला, "अतिथि। मुझे अत्यंत खेद है कि अब यह कुआ साफ न हो सकेगा, तुम अपने बच्चे को इसका पानी पिला कर उसे जिंदगी न दे सकोगे "

पनडुब्बे ने मुर्दा बच्चे को कुए में डाल दिया।

सहसा मेरी गोद से मेरा बच्चा उछल कर कुए की तरफ भागा, "ठहरो-ठहरो! मैं इस बच्चे से खेलूगा।"

और पहले उसके कि मैं आगे बढ़ू मेरे बच्चे ने कुए मे छलाग लगा दी।

"मेरा बच्चा। मेरा बच्चा !!" कहते हुए मैं आगे बढा, मगर गांव के लोगो ने मुझे रोक दिया।

"देखते नही हो ?" मैंने झल्लाकर कहा, "मेरा बच्चा इस कुए में चला गया है।"

"वह उस दूसरे बच्चे से खेल रहा है।" उज्वल काति वाले वृद्ध ने धीरे से कहा।

मैंने कुएं मे झाक कर कहा—"बेटा !! बेटा वापस आ जाओ !"

कुए मे एक विषैली हसी की आवाज आयी, जैसे कुए मे पानी न हो, जहर का झाग ही झाग हो, जो उस कुए से उबल कर सारे ससार की तराइयो, घाटियो और मैदानो मे फैल रहा हो।

लोग मुझे वहा से खीच कर अलग ले गये। मैंने दोनो घुटने टेक कर बूढे के कुरते का पल्ला पकड लिया और गिडगिड़ा कर बोला, "मेरा बच्चा ! बाबा ! मेरा बच्चा मुझे वापस दे दो। मैं खुद चलके तेरे कुए के पास आया हूं, मेरा बच्चा मुझे वापस मिल जाये।"

"मिल जायेगा।" बाबा सीधा तन कर खडा हो गया और उसकी आखो मे एक विलक्षण-सी प्रकाश किरण आ गयी। धीरे-धीरे लेकिन बड़ी दृढता से वह बोला, "तेरा बच्चा तुझे वापस मिल जायेगा लेकिन उसी समय जब कोई कुवारी इस कुए पर आयेगी और इस कुए की जगत पर झुक कर उस दूसरे बच्चे को आवाज देगी और उसे अपना बेटा कहकर पुकारेगी, उसी क्षण तुम्हे तुम्हारा बच्चा मिल जायेगा।"

मैं वहा से उठा और गाव की स्त्रियो के पास गया।

"मेरा बच्चा मुझे दे दो।"

विवाहिता स्त्रियों ने अपने घूघट लबे कर लिये और मेरी तरफ पीठ करके खडी हो गयी।

"मेरा बच्चा मुझे दे दो।"

कुवारियां ने अपने मुह फेर लिये, उनके होंठ पीले थे और पलकें आसुओ से थरथराती हुईं।

"मेरा बच्चा मुझे दे दो।"

बूढ़ी स्त्रियां घृणा से अट्टहास करके हंस पड़ीं, वह घृणा से हंस सकती थीं, क्योंकि उनकी कोख अभी तो पूरी थी।

मैंने अपने दोनों हाथों से अपना चेहरा छिपा लिया ताकि वे लोग मेरे गालों पर मेरे गिरते हुए आंसू न देख सकें।

बहुत देर बाद जब मैंने अपने चेहरे से अपने हाथ हटा लिये तो वहां कोई न था। मैंने देखा कि मैं उस गांव में अकेला हूं, जो कहीं नहीं है, उस कुएं के किनारे खड़ा हूं जो हर चौराहे पर है, और उस कुमारी की प्रतीक्षा कर रहा हूं जो एक दिन मेरे बच्चे की जान बचाने के लिए उस कुएं पर आयेगी।

नो और यस

अन्तिम महायुद्ध सन 2165 ई. में लडा गया और सारी दुनिया उसमें तबाह हो गयी, केवल तीन व्यक्ति बचे⋯।

1. प्रोफेसर मेहताब।
2. एक हब्शी लडका चार साल का।
3. एक छह माह की फ्रांसीसी बच्ची—जिसका नाम मिस नो था।

प्रोफेसर मेहताब अपने जमाने का सबसे बडा जीनियस माना जाता था। फोटोन राकेट उसने अविष्कार किया था, जो लगभग रोशनी की रफ्तार से चलता था, वह ईथर के कच्चे तत्व से जो अंतरिक्ष में हर जगह पाया जाता है, आक्सीजन, हाइड्रोजन, और नाइट्रोजन के परमाणु उगा सकता था और उनसे खुराक पैदा कर सकता था, उसने गुरुत्वाकर्षण का तोड मालूम किया था और बनावटी गुरुत्वाकर्षण भी पैदा कर सकता था।

श्वेत किरण भी उसी ने मालूम की थी, जो धूप की तरह प्रत्येक समय सूर्य से अलग होती रहती है, लेकिन यह किरण न दिन को दिखाई देती है और न रात को, उसे इन्द्रधनुष के रंगो में भी बांटा नही जा सकता। एक्सरे, राडार, अणुवीक्षयंत्र, रेडियो, इलेक्ट्रोनिकी आले भी उसे अपनी गिरफ्त में लेने में असमर्थ थे, प्रोफेसर मेहताब ने एक एटीमीटर यंत्र से उस किरण का होना साबित किया था और उसकी विशेषता से भी दुनिया को परिचित कराया था।

प्रोफेसर ने यह साबित कर दिया था, कि मनुष्यों के दिलो में जो घृणा एक-दूसरे के लिए पैदा होती है, उसके लिए यह सफेद नजर न आने वाली किरण जिम्मेदार है, जो धीरे-धीरे सूर्य के भीतरी भाग से निकलती रहती है और मनुष्य की नस-नस मे जज्ब होती रहती है।

मगर पेश्तर इसके के प्रोफेसर मेहताब इस सफेद किरण के हानिकारक प्रभाव का कोई तोड मालूम कर सकता, यह दुनिया सन 2165 ई. की अंतिम लडाई मे तबाह हो गयी और कोई न बचा सिवाय उन तीन व्यक्तियों के, जिनका मैंने ऊपर जिक्र किया, अर्थात प्रोफेसर मेहताब, मिस नो, और हब्शी लड़का—जिसका नाम यस था।

प्रोफेसर मेहताब ने इस दुनिया को छोड दिया, और जमीन से उडकर के इस सौरमडल को छोडकर आकाश गगा की दूसरी ओर ड्रोमेदा ग्रह मे चला गया। ड्रोमेदा ग्रह को दो सूर्य गर्मी पहुचाते थे, मगर यह गर्मी अत्यत मानदिल किस्म की थी, क्योंकि यह अधेड आयु के सूर्य थे, इसके अतिरिक्त इन दोनों सूर्यों से दो भिन्न प्रकार की किरणे निकलती थी।

एक सूर्य से जमीनी सूर्य की तरह नजर न आने वाली श्वेत किरणे निकलती थी, तो दूसरे को समाप्त कर देती थी, इसलिए इस ग्रह का जलवायु अत्यत समशीतोष्ण था, जहा न दिल में क्रोध आता था ज्यादा, न नफरत इस अदाज की, कि आदमी आदमी की जान का दुश्मन हो जाये – गर्मी कम-कम—सर्दी भी कम-कम और गुरुत्वाकर्षण ऐसा कम कि दोनों बच्चे उस ग्रह में पहुचकर जब ग्रह के धरातल से उछलते तो धरातल से हजार गज ऊपर उछल जाते।

यू समझिये कि अगर वह ग्रह जमीन होता तो बच्चे पृथ्वी के धरातल से उछलकर माउट एवरेस्ट को छू सकते थे। धूप इस कदर धीरे-धीरे छन-छनकर आती थी कि मिस नो उन किरणो की डोरिया बटकर सुनहरी स्वीटर तैयार कर लेती थी और मास्टर यम जब किसी बात पर ठहाका लगाता तो वह ठहाका हवा मे आइसक्रीम बनकर उडता था।

दिन भर इस ग्रह मे दोनों बच्चे हस-हसकर अपने कहकहो की आइसक्रीम खाते रहते थे, यद्यपि पहाड माउट एवरेस्ट से भी ऊचे थे, मगर हल्के सब्जी तत्व के बने हुए थे और इस कदर हल्के थे कि अगूठे का जोर लगाने से पूरा पहाड जमीन पर बिखर जाता था और फिर हौले-हौले किसी दूसरी जगह से उभरता था—बडा दिलचस्प खेल होता था मास्टर यम और मिस नो के लिए। दोनों हर रोज उस ग्रह की पहाडी पर खेलते और उसी के अनुसार जलवायु मे परिवर्तन होता रहता।

प्रोफेसर मेहताब ने बहुत सोच-समझकर उस ग्रह का चुनाव किया था। उसे मालूम हो चुका था कि हजारों साल मे जो यह नफरत मनुष्य की हड्डियों मे घुस गयी है, एक दिन रग लायेगी और मनुष्य की बदनसीब नस्ल को खत्म कर देगी और चूकि समय कम था और वह इस किरण का कोई उचित तोड ज्ञात न कर सकता था, इसलिए उसने धीरे-धीरे अपने बहुत फोटोन राकेट के द्वारा कई बार

उस सौरमंडल से बाहर उडान भी भरी और उस ग्रह की खोज में घूमता रहा, मनुष्य की नस्ल दूसरी जगह जाकर घृणा की इस विनाशता से बचकर जीवित रह सके। सौभाग्य से उसे जल्दी ही यह ग्रह मिल गया। और वह अगले दस साल मे मानव के ज्ञान और कला से सबधित सारी सभ्यता व सस्कृति के बहुमूल्य अनुभव और अन्य आवश्यक साज व सामान खुफिया तरीके से जमीन से ले जाकर उस ग्रह मे ढोता रहा और जब उसने व्यवस्था सपूर्ण कर ली और जब उसे अपने साइंसी अनुभवो के जरिए उस विषय का पक्का विश्वास हो गया कि ड्रोमेदा ग्रह से चलकर हमारी जमीन पर उतरा यह खुशखबरी देने के लिए उसने एक ऐसा ग्रह मालूम कर लिया है, जिसमे निवास करने से न केवल मनुष्य बल्कि उसकी सभ्यता-सस्कृति की उन्नति भी सुरक्षित रह सकेगी।

मगर अफसोस जब प्रोफेसर ड्रोमेदा ग्रह से वापस हमारी धरती पर पहुचा, तो अतिम महायुद्ध अपनी अतिम सासो पर था। मनुष्य जाति खत्म हो चुकी थी, उसकी सभ्यता तबाह। प्रोफेसर की खुशखबरी पर अमल करने के लिए कोई जीवित न बचा था, बडी मुश्किल से प्रोफेसर मेहताब को यह दो बच्चे धरती के दो अलग टुकडो मे किसी तरह जीवित मिल गये और वह उन्हे लेकर अपने फोटोन राकेट मे बैठकर नये ग्रह की ओर बढ गया।

ड्रोमेदा मे पहुंचकर उसने उन दो बच्चो की रक्षा और उनकी शिक्षा-दीक्षा मे दिन-रात एक कर दिया, यह दो बच्चे मनुष्य जाति को आगे चलाने वाले थे-- इनमे से अगर एक भी मर गया, इनमे से अगर किसी एक की शिक्षा दीक्षा भी गलत हो गयी तो वही समस्यायें फिर से पैदा हो जायेंगी, जिन्होंने इसान को इक्कीसवी सदी में मौत के घाट पर लाकर खडा किया था।

इसलिए प्रोफेसर मेहताब ने इन दोनों बच्चो की शिक्षा-दीक्षा, लालन-पालन, देख-रेख मे कोई कसर उठा न रखी, उसे अपने मरने से पहले मनुष्य जाति के इन दो प्रतिनिधियों को मानव-ज्ञानों, सभ्यता और संस्कृति की वह पूरी पूजी सौंपनी थी, जो अब पृथ्वी पर सदैव के लिए नापैद हो गयी थी।

विज्ञान, इतिहास, साहित्य, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र कही जीवन का कोई पहलू छूट न जाये। पहले स्वर-व्यंजन से लेकर शेक्सपियर, कालिदास, दाते, तुलसीदास और गालिब तक--साइस मे सेब के गिरने से लेकर सितारो के उड़ने

इतने बच्चे भी न थे कि न समझते, वह खूब जानते थे कि अगर उन्होंने जल्द एक दूसरे से विवाह न किया तो इसके परिणाम भयानक होंगे। इस पूरी गैलेक्सी मे सुबोध शृंखलाबद्ध, मनीषी जीवन सदैव के लिए समाप्त हो जायेगा। मगर जाने क्या बात थी वह दोनों एक दूसरे को चाहते नही थे, एक-दूसरे मे प्रेम नहीं करते थे, एक-दूसरे के साथ रहते थे, एक-दूसरे को पसद भी करते थे मगर एक-दूसरे से मुहब्बत नही करते थे।

मास्टर यस को एतराज था, नो बहुत गोरी क्यों है, मुझे इतनी गोरी लडकी नहीं चाहिए, वह कहता था।

नो को यस की काली रंगत पर एतराज नही था, मगर उसके घुघराले बाल बहुत ही नापसद थे, "मुझे सीधे बालों वाला एक लडका चाहिए।"

"मुझे तो काली आखों वाली लडकी चाहिए, किसी कदर सावली भी हो, बहस बेशक करे, लेकिन अत मे हार जाया करे।"

"वाह! मैं क्यों हारने लगी? हुं, हु।" नो तुनक कर कहती, "तुमसे हारूगी?" "और नो दात-बेबात शेर न पढा करो।" यस की दिलचस्पी साइस, गणित, अलजबरे मे अधिक थी। नो को शेर पसद थे, साहित्य, दर्शनशास्त्र और गपबाजी। वैसे वह बहुत-सी जबाने जानती थी और राकेट तक चला लेती थी।

"क्या समझते हो? मैं तुम्हारे जैसे पडित, नीरस, अलजबरिक अहमक से शादी करूगी।"

'यस।" यस ने कहा।

'नो।" नो ने कहा, "मुझे तो ऐसा लडका चाहिए, जो पानी के बुलबुले की तरह नर्म हो, सूर्य की तरह सुनहरा और राकेट की तरह तेज रफ्तार हो, इस बुद्धू की तरह नही जो हर समय उल्टे-सीधे फार्मूले सोचता रहता है।"

"मगर ऐसा लड़का आयेगा कहां से?" प्रोफेसर विवश होकर नो से पूछता, "तुम ही तो रह गये हो, मैं चाहता हू तुम दोनों जल्दी से शादी कर लो, अगले बीस वर्ष मे मान लो अगर तुम्हारे सोलह बच्चे भी हुए··" प्रोफेसर हिसाब करने में व्यस्त हो गया।

"मुझे इससे मुहब्बत नही है।" नो रुआसी होकर बोली, "जब यह मेरे हाथ को अपने हाथों से छूता है, तो मुझे इसके हाथ बिलकुल ठडे मालूम होते हैं, मुझे

ऐसा लगता है, जैसे मेरे हाथ को बर्फ के किसी टुकडे ने छू लिया, मुझे अंगारे की तरह दहकता हुआ लडका चाहिए।"

"और यह महा बदसूरत है।" यम मुह बना बेजारी से कहता, "इसकी नीली आंखें और गर्दन पर बेशुमार छोटे-छोटे तिल और लाल-लाल होठ, जैसे नगा छिला जख्मी गोश्त। छिः, मैं इस लडकी से मुहब्बत नही कर सकता, कभी नही कर सकता।"

प्रोफेसर निराश होकर अपने सर के बाल नोचने लगा, उसके जीवन भर का परिश्रम अकारथ जा रहा था था, वह दुनिया का सबसे बडा जीनियस था और इस समय इस सृष्टि का अंतिम बुद्धिमान था वह सब कुछ जानता था, तमाम ज्ञान, तमाम विज्ञान, और कला।

मगर वह मुहब्बत के बारे मे कुछ नही जानता था।

जब उसने पीछे मुडकर देखा तो उसे अपना बचपन याद आया—वह गलियो मे पला था, एक भिखारिन ने उसे पाला था, कौन उसकी मा थी ? कौन उसका बाप था, उसे कुछ मालूम ही न था, उनकी जरूरत भी उसने कभी न समझी, बहुत छोटी उम्र मे ही उसे अपनी जिंदगी मे समझदारी सीखनी पडी। कितने अधकारपूर्ण वर्ष थे ? गलियो की खाक मे लिथडे हुए, बदबूदार चोबी सीढियो के पीछे लेटे हुए, पादरी की खैरात पर पलने वाले—साल—चदे से शिक्षा पाने वाले क्षण—जिनमे रोशन और चमकदार साल थे। हीरो की तरह पहलूदार और कठोर जब उसे शोहरत मिली, दौलत मिली, ताकत मिली, मगर इन सबके बीच उसे मुहब्बत नही मिली और जो काम वह कर रहा था और जो काम उसने नीचे जमीन पर भी अपने जिम्मे लिया था, वह इतना बडा था कि उसे मुहब्बत की कभी जरूरत ही महसूस नही हुई, वह उस अजीब व गरीब जज्बे से अपरिचित रहा, उसने मुहब्बत के भाव के बारे मे सब कुछ पढा था, इन दोनो नौजवानो को पढा भी दिया था, मगर पढना और बात है, समझना और बात है। वह कभी मुहब्बत को समझा ही नही, अपनी आग को माचिस की तीली की तरह इस्तेमाल किया, उसमे अपनी उगलिया कभी नही जलाई थी, इसलिए उन्हें मुहब्बत के सिलसिले मे मनवाने मे असमर्थ रहा।

जब उसकी समझ मे कुछ न आया कि वह क्या करे, तो वह फिर वापस एक

और चक्कर पृथ्वी का लगाने के लिए तैयार हो गया, शायद इस धरती पर उसे अपने जैसे कोई दो व्यक्ति अकेले या इकट्ठे या अलग-अलग कहीं उस उजाड बरबाद वीराने में मिल जायें जो कभी एक उत्तम सभ्यता का घर था, जो एक दूसरे से शादी करने के लिए तैयार हो जायें और उसके साथ इस ग्रह पर आकर मनुष्य जाति को आगे बढाने में वृद्धि करें, उसको उसे इतनी उम्मीद तो नहीं थी, किंतु एक अंतिम प्रयास कर लेने मे क्या हर्ज है ?

उसने अपनी इस सोची-समझी स्कीम से इन दोनो नौजवानो को आगाह तो नहीं किया, उन्हे इतना ही बताया कि वह पृथ्वी पर सभ्यता व नागरिकता के शेष चिन्ह देखने के लिए अपना फोटोन राकेट लेकर जा रहा है, अगर वह चलना चाहे तो चल सकते हैं, उसके साथ।

यस और नो दोनों फौरन तैयार हो गये, दोनों अपना वतन देखने के लिए बेताब और उतावले से होने लगे—वह जगह कैसी होगी ? जहां से वह आये थे, जिसके इतिहास और सभ्यता के बारे में उन्होने प्रोफेसर से इस कदर सुन रखा था, वह जरूर अपने पहले वतन को अपने पूर्वजों की पृथ्वी को देखने जायेंगे, केवल एक ऐतिहासिक और भौगोलिक जानकारी के लिए।

एक मैला कुहरा-सा जमीन पर छाया हुआ था, जब फोटोन राकेट जमीन के वायुमंडल से उतरकर धीमे-धीमे उड़ने लगा, सुबह की एक गदी मैली लाली चारों ओर छाई हुई थी, सूर्य का रंग कबूतर के खून की तरह गदा सुर्ख था, हर तरफ शहर मलबे के ढेर थे, पेड जल चुके थे, खेतों में खाक उडती थी और हवा में बारूद की बू थी, कहीं पर इसानी जिंदगी का नामोनिशान बाकी न था।

प्रोफेसर महताब ने अपने फोटोन को कई बार चारो तरफ जमीन के गिर्द घुमाया, अपनी इलेक्ट्रोनिक और राडरी दूरबीन से जमीन के चप्पे-चप्पे का मुआइना किया—कहीं पर जिंदगी के आसार न थे, तेज तुद हवा भल्लाए हुए भेड़िये की तरह रूखे-सूखे महाद्वीपो से गुजर रही थी, दरियाओं में पानी था, मगर कोई पानी पीने वाला न था, विशाल शानदार चोटिया बर्फ के फरगुल पहने खड़ी थी, मगर कोई देखने वाला न था, कहीं-कहीं घाटियो पर घास उगने लगी थी, मगर उस पर कोई चलने वाला न था।

थोड़े-थोड़े अंतर के बीच राकेट के अत्यत बलशाली माइक सिस्टम पर प्रोफेसर

एलान करता—"कहीं पर कोई इन्सान है तो बोलो—कहीं पर कोई इन्सान है तो बोलो।" और राकेट के एलेक्ट्रोनिकी एंटेना मकड़ी के जाल की तरह अपना ताना-बाना फैलाये किसी बारीक से बारीक इन्सानी आवाज को सुनने के लिए व्याकुल थे।

कोई क्षीण अंतिम, आवाज, किसी बच्चे की कोई तोतली बोली, मानवीय शब्द की कोई छोटी से छोटी लहर भी नहीं, अगर होती तो यह एंटेना उसे फौरन पकड़ सकता था, मगर जवाब में कोई आवाज न आयी।

राकेट एक निःशब्द वायुमंडल में घूम रहा था, हाय कैसी चुप लगी थी, इस हरदम बोलने वाले, बकवास करने वाले, कभी न चुप रहने वाले मनुष्य को। वह जो भाषण देते थे, वह जो गीत गाते थे, वह जो मजहब के नाम पर युद्ध के लिए कहते थे, वह जो अधिकार व त्याग की गवाही के लिए कट मरने के लिए तैयार थे—वह सब कटकर मर गये थे, और उनके साथ उनकी सच्चाइयां भी मर गयी थीं, उनके मजहब और धर्म और अधिकार व न्याय के अंदाज और इल्म सब खत्म हो चुके थे।

दरियाओं में पानी रोता था, पेड़ों की बांझ टहनियां सर झुकाये थीं, लालिमा सज-संवर कर क्षितिज से पृथ्वी पर उतरी थी, मगर अपने चाहने वाले किसी जीव को न पा निराश सूर्य की गोद में लौट गयी थी।

बहुत धीरे-धीरे फोटोन रोकेट पृथ्वी के निकट, बहुत करीब उड़ रहा था, प्रोफेसर सहमा बहुत उदास-सा हो गया, उसने धीरे-धीरे कहना शुरू किया, जैसे किसी करुण कहानी का अंतिम परिच्छेद सुना रहा हो

"यहां न्यूयार्क की गगनचुंबी इमारतें थीं, यह पेरिस था, नाजुक बदन सुंदरियों का शहर, यह मास्को था, चेखोफ दोस्तोवस्की और टालस्टाय का माशूक यह पेकिंग नीले जेड की नाजुक इमारतों वाला शहर, यहां पर टोकियो था—मीनाओं और चेरी के शगूफों का शहर, यह तेहरान था, सुंदर गुलाबों का हिंडोला, यह लाहौर था शेर व अदब के हंगामों का केंद्र, यह देहली है, हिंदोस्तान की राजधानी और सात सभ्यताओं की राजधानी और सात सभ्यताओं का घर, मगर अब यह सब मलबे के ढेर हैं—खामोश, उजड़े, बे-आवाज वीराने, टूटे-फूटे खंडहर, कहीं कोई इमारत बाकी नहीं, एक बिल्डिंग तक साबित व सालिम नहीं, सब मलबे के ढेर हैं।"

प्रोफेसर की आवाज डूबकर खामोश हो गयी, जैसे वह उदास यादों में खो गया हो, अचानक प्रोफेसर ठिठककर आश्चर्य में नीचे देखने लगा ।

"हैं ।" यह आश्चर्य से चीखा ।

यस और नो दोनों उसकी चीख सुनकर उसके पास आ गये और उनकी निगाह भी नीचे उठने लगी—प्रोफेसर की निगाह के साथ-साथ नीचे चली गयी ।

सचमुच एक इमारत नीचे सही अपनी असली हालत में साबित व सलामत खड़ी थी । वह दोनों धक् से रह गये, उन्होंने अपनी आखें मलकर फिर देखा । सचमुच एक इमारत खड़ी थी, वह नजर का धोखा न था, इस पूरी पृथ्वी पर एक इमारत खड़ी थी ।

प्रोफेसर ने अपने राकेट को धीरे-धीरे उस इमारत के सामने उतार दिया, फिर वह तीनों निकलकर उस इमारत की तरफ बढ़ गये । वह अकेली मगरूर इमारत जो इस पूरी पृथ्वी पर इसानी हाथों की आखिरी इमारत थी, अपनी असली हालत में ज्यों की त्यों खड़ी थी ।

अंधेरा बढ़ चला था, मगर जहां वह इमारत खड़ी थी, वहां अंधेरा न था, ऐसा महसूस होता था, जैसे अंधेरा भी इस इमारत को हाथ लगाते हुए डरता है ।

दरिया-किनारे एक सुदर सजल सुहाना सपना किसी हसीना की तरह अगड़ाई लेता हुआ अपनी मरमरी बांहों को उठाकर मुहब्बत के दरबार में नमाज पढ़ता हुआ ।

"ताजमहल ।" नो पहचानकर जोर से चीखी और भागती हुई दरवाजे के अंदर चली गयी । प्रोफेसर ताजमहल के बारे में उन दोनों को बता चुका था और उसकी तस्वीर भी दिखा चुका था, अब वही ताजमहल उनके सामने था ।

सब कुछ तबाह हो गया था, मगर ताजमहल बच गया था, यह एक अद्भुत बात थी और अब वह तीनों आश्चर्य और प्रसन्नता से कांपते मनोभाव अपने दिलों में छिपाये हुए ताज के हुजूर में खड़े थे । सहसा एक मरमरी मीनार के ऊपर चौथे दिन का चद्रमा आ के रुक गया । ऐसा लगा जैसे किसी की कोमल मस्ती उगली को चादी की अगूठी पहना दी हो ।

"आह !" नो के दिल से एक दबी-दबी आह निकली, उसने यस का हाथ पकड़ लिया और धीरे-धीरे उसके हाथ को टटोलकर कहने लगी, "तुम्हारा हाथ अंगारे की तरह क्यो दहक रहा है !"

"ओह ! तुम कितनी हसीन हो।" यस ने नो से कहा, "मुझे मालूम नही था तुम इतनी सुदर हो।" वह आश्चर्यचकित होकर नो के चेहरे की तरफ देखने लगा, जैसे उसे पहली बार देख रहा हो।

नो ने प्रोफेसर से कहा, "मैं यस से शादी कर रही हू और हम इसी ताजमहल के कदमो मे रहेंगे और यही पर हमारे बच्चे पैदा होंगे।"

"क्या कह रही हो ?" प्रोफेसर ने घबराकर कहा, "यह नफरत-भरी जगो की जमीन है, खाक व खून मे लिथडी हुई, भाई-भाई के खून की प्यासी जालिम जमीन, फिर से वही किस्सा दुहराना चाहती हो ?"

"जब तक ताजमहल बाकी है, इसान की उम्मीद बाकी है।" नो बडे प्यार से ताजमहल की ओर देख रही थी।

"मैं तुम्हारे लिए अपने फोटोन राकेट के द्वारा ताजमहल को यहा से उड़ाकर ड्रोमेदा ग्रह मे ले जा सकता हू।"

"इससे अधिक अन्याय और क्या होगा प्रोफेसर," यस ने घबराकर कहा।

"ताजमहल को देखो। लगता है, उसे इसानी हाथों ने नही बनाया, यह इसी जमीन से उगा है, यह तो इसी धरती का ख्वाब है प्रोफेसर, और ख्वाब चुराये नही जा सकते।"

"मगर इस सरजमीन पर घृणा की किरण बरसती है और इसान की हड्डियो मे घुस जाती है।" प्रोफेसर जोर से चिल्लाया।

"फिर यह ताजमहल कैसे बना ?" यस ने पूछा।

"नफरतो की सरजमीन से मुहब्बत की यह करामात कैसे उगी ?" नो ने प्रोफेसर से पूछा और बडी मजबूती से यस का हाथ पकडकर बोली, "यू न कहो प्रोफेसर, यू न कहो !! कभी तो वह सदा आयेगी ? कभी तो वह खुशबू लहरायेगी ? कभी तो मुहब्बत जागेगी ? और गाव-गाव और गली-गली इस दुनिया पर राज करेगी।"

फिर एक लंबा सांस लेकर नो ने यस के सीने पर अपना सर रख दिया और आंखें बंद करते हुए, बड़े शांतिमय भाव से बोली, "मैं अपने बच्चे देख सकती हूं ?"

वह ताज का संदेश लेकर सारी दुनिया में फैलते जा रहे हैं।

लिजे हिंदुओं की इस रस्म का आदर करना ही पड़ता था। हां, नहीं करते थे तो दोगले कुत्ते जो दिन भर टांग उठा-उठाकर उस पेड़ पर पेशाब करते रहते थे जिसके बारे में भगवान ने कहा था—"और वृक्षों में मैं पीपल हूं।" जरूर वह पिछले जन्म में मुसलमान होंगे जो मैतानीम के झगड़े में हिंदुओं के हाथ मारे गये।

सिराजा हमेशा पीपल की गूलरें खाता हुआ दिखाई देता था। उसकी वजह बाजार का मंदा होना या भूख न थी। सिराजा हर उस चीज को खाता था जो उसके वीर्य को गाढ़ा कर दे। हां उसका काम ही है खाना-पीना और भोग करना। वह दिमागी तौर पर ओछे लड़ने वाले खानाबदोश हैं जो हिंदुस्तान में रहे तो पाकिस्तान की बातें करेंगे। पाकिस्तान में रहेंगे तो—"मेरे मौला बुला ले मदीने मुझे।" उन्हें किसी चीज से लगाव नहीं। मगन टकले ने कई बार इस बारे में सोचा भी—उनका अल्लाह खूब ऐश करता है। एक अपना भगवान है जो नीचे के बजाय ऊपर त्रिकूट के आसपास ही मंजिल होना रहता है। शायद सिराजा जाने-बूझे बिना एक तांत्रिक था जो वीर्य (बिंदु) की रक्षा के लिए कुंडलनी जगाते और ऊपर का रास्ता बनाते थे। वह औरत के अंदर अकड़े पड़े रहते लेकिन किसी तरह जीवन के जौहर (जौहरे हयात-वीर्य) को न जाने देते। मुक्ति को इस गुद-गर्ज तरीके से पाने वालों, औरत को सिर्फ एक जरिया (माध्यम) बनाने वालों ने कभी सोचा कि उस बेचारी की क्या हालत हुई होगी? उसे भूखा-प्यासा, रोता-तड़पता रखकर कैसे मोक्ष को पहुंच सकता है कोई? किस परमात्मा को पा सकता है? फिर जो मुक्ति बिंदु में छुटकारा पा लेने में है—पुरुष के लिए, स्त्री के लिए? स्वाती बूंद तो मोती नहीं। न सीपी मोती है। मोती तो बूंद के गिरने और सीपी के उसे अंदर लेकर मुंह बंद कर लेने में है।

रात लपक आयी थी। बाहर वह दुनिया का किनारा अंधेरे के साथ कुछ और भी पास रेंग आया था। रेशम वाले विलायती राम, कशमीरी बड़शाह, यहां तक कि उडपी के चक्रपाणि की दुकान भी बंद हो गयी थी। हो सकता है महीने का दूसरा सनीचर होने की वजह से उसका सब इडली दोसे, साभर, रवा केसरी, बिक गये हों। सिर्फ सिराजा की दुकान खुली थी। न जाने वह किस मार पर था। शायद इसलिए कि बैटरी की जरूरत रात ही को पड़ती है। मगर वह सुबह-

सुबह मुँह-मुँह की दुकान खोल लेता था जो रात ही का हिस्सा होती है—उसका आखिरी हिस्सा। असली सुबह कहाँ किसकी नहीं। यह तो कम्यूनिस्टों की हो सी। शायद गिराजा टूरिस्ट एजेंट मार्टेल के इन्तजार में था कि वह दोनों मिल कर अगले रोज कहीं आगरे, खजुराहो का प्रोग्राम बना लें। थोड़े पैसे कमा लें। नहीं गिराजा पैसे के पीछे भागता था। वह तो जाता था उन पश्चिमी औरतों के पीछे जो कई सदियाँ और समन्दर की सतह से भूखी-प्यासी आती थीं और यहाँ आकर मुमताज की मुहब्बत को इधर-उधर के किसी भी शाहजहाँ कहलाने वाले मर्द पर आजमातीं और खजुराहो के मिथुन को जिन्दा करती थीं।

तभी गिराजा की आवाज ने मगनलाल का पीछा किया—"हाय स्वीटी गाई।"

गिराजा लगभग अनपढ़ था। मगर टूरिस्टों के साथ रहने से इतनी अंग्रेजी सीख गया था। उसकी आवाज से मगन समझ गया कीर्ति आयी है।

वह सचमुच कीर्ति ही थी जो छोटे कद, गठे हुए बदन और मोटी कमरेखा वाली एक उदास लड़की थी। उसका रंग पक्का था फिर ऊपर से जामुनी रंग की धोती पहन रखी थी। जब वह आती तो या लगता जैसे अंधेरे का कोई टुकड़ा साकार होकर सामने आ गया। वह हमेशा रात ही को आती थी। जैसे उसे अपने आप को छिपाना है। गिराजा अपनी दुकान के सामने खड़ा था और कीर्ति हमेशा की तरह से उसकी तरफ देखे बगैर उससे बात किये बगैर निकल आयी थी। इसके बावजूद वह सीटियाँ बजा रहा था।

मगर कीर्ति बात ही कहाँ करती थी। इससे, उससे, किसी से भी नहीं। उससे बात करने के लिए कुछ ऐसे सवाल गढ़ने पड़ते थे कि उसका जवाब "हाँ" हो या "ना"। सिर्फ ऊपर से नीचे या दाएँ से बाएँ सिर हिलाने से बात बन सके। गिराजा का उसे छेड़ना मगन को बहुत नापसन्द था। उसने कई बार मगन से कहा भी था—

"तू कहीं इश्क के चक्कर में तो नहीं पड़ गया मेरे यार? जवान लड़की है खींच डाल। बहुत इधर-उधर रहा तो लक्के कबूतर की तरह से वह उड़ जावेगी।"

लेकिन मगन ने उसे डाँट दिया था।

असल में मगन टकले का धंधा बड़ी किच-किच का था। कीर्ति कोई लकड़ी का काम या शिल्प बना कर बेचने की गर्ज से उसके पास लाती तो वह उसमें बहुत

नहीं तो क्या हमारी-आपकी मौत मरना ।

"क्या लायी हो ?" मगन टकले ने कीर्ति से पूछा । कीर्ति ने अपनी धोती के पल्लू में लकड़ी का काम निकाला और धीरे से मगन के सामने रोल टाप की मेज पर रख दिया क्योंकि ऊपर के लैंप की रोशनी वहीं केंद्रित हो रही थी। उसे देखने से पहले मगन ने एक बेंत कुर्सी कीर्ति के सामने सरका दी मगर वह वैसी ही खड़ी रही ।

"तुम्हारी मां कैसी है ?"

कीर्ति ने कोई जवाब न दिया । उसने एक बार पीछे उस तरफ देखा जहां सड़क नीचे गिरती थी और जब चेहरा मगन की तरफ किया तो उसकी आंखें नम थीं ।

कीर्ति की मां छावनी के अस्पताल में पड़ी थी जहां उसके बाप नारायण ने दम तोड़ा था । बुढ़िया को गुर्दे का रोग था । उसके पेट में सुराख करके एक नली लगा दी गयी थी और उसके ऊपर एक बोतल बांध दी थी ताकि मल-मूत्र नीचे जाने के बजाय ऊपर बोतल में चले जाये । बोतल किसी वजह से खराब हो गयी थी और अब दूसरी के लिए पैसे चाहिए थे । अगर वह यह मगन को बता देती तो वह दूसरे तरीके से बात करता लेकिन उस बुड्ढे को देखकर वह वैसे ही भयर गया था ।

"न्यूड ?"

"हां ' आजकल लोग न्यूड पसद करते है ?"

कीर्ति चुप हो गयी। कुआरी होने के नाते वह शर्मा सकती थी, लजा सकती थी, मगर यह सब बातें उस लडकी के लिए विलासता थी। उसे फिक्र थी तो सिर्फ इस बात की कि मगन उस वुड वर्क को खरीदता, पैसे देता है या नही ? कुछ सोचते-रुकते हुए उसने कहा—

"मुझे नही आता · "

"क्या बात करती हो, तुम्हारे बाप ने बीसियो बनाये है "

"वह तो देवी मा के थे "

"फर्क क्या है ?" मगन टकले ने कहा—"देवी भी तो औरत होती है तुम वही बनाओ मगर भगवान के लिए कोई देवमाला उसके साथ नत्थी मत करो इन्ही हरकतो से तुम्हारे पिता ऐसी मौत मरे स्वर्गवासी हुए "

कीर्ति ने अपने जीवन के पिछवाड़े में झाका। अब जैसे वह खडी न रह सकती थी किसी और खतरे से उसका सारा बदन काप रहा था जिसे वह जानती थी कोई दूसरा नही। वह उस बेरोक पर बैठी नही। उसका सहारा लेकर खड़ी हो गयी। उस तरफ से उसके बदन के हसीन मगर आकर्षक खम दिखाई दे रहे थे। क्या शिल्प था जिसे ऊपर के नही नीचे के नारायण ने बनाया था। मगन लाल के दिमाग में पसदगी और नापसदगी का द्वद्व चल रहा था और वह नही जानता था कि बराबर वाली लडकी के अदर भी वही बसी और वेबसी आपस में टकरा रही है। उसका मुह सूख गया था। कोई घूट-सा भरने की कोशिश में वह बोली—

"मैं ? मेरे पास माडल नही "

"माडल ?" मगन ने उसके पास आते हुए कहा।

"सैकडो मिलते हैं ' आज तो किसी जवान खूबसूरत लडकी को पैसे की झलक दिखाओ तो वह एकदम "

कीर्ति ने कुछ कहा नही मगर मगनने साफ सुन लिया—"पैसे " और फिर खुद ही कहने लगा—

"आदमी पैसा खर्च करे तभी पैसा बन सकता है न · "

इस बात ने कीर्ति को और भी उदास कर दिया। उसकी आत्मा जिंदगी के इस

जब्र के नीचे फड-फडा रही थी। फिर उसकी आखें भीगने लगी। औरत की यही दशा होती है जो मर्द के अदर बाप और शौहर को जगा देती है। साराश यह है कि मगन ने अपना हाथ बढाया ताकि उसे बाजुओ मे ले ले और छाती से लगा कर कहे —

"मेरी जान तुम फिक्र न करो मै जो हू।"

लेकिन कीर्ति ने उसे झटक दिया। मगन कट गया। उसने यो जाहिर किया कुछ हुआ ही नही। तुरुप उसके हाथ मे था। रोल टाप पर से उसने वुड वर्क को उठाया और उसे कीर्ति की तरफ बढाते हुए कहा—

"मुझे इसकी जरूरत नही।"

जब तक कीर्ति ने भी कुछ सोच लिया था। उसने पहले नीचे देखा और फिर सहसा सिर ऊपर उठाते हुए बोली—

"अगली बार न्यूड ही लाऊगी। अभी तुम इसे ही ले लो "

"शर्त है।" मगन ने मुस्कराते हुए कहा।

कीर्ति ने सिर हिला दिया। मगन टकले का ख्याल था कि कीर्ति हस पडेगी मगर वह तो कुछ और भी गभीर हो गयी थी। उसने रोल टाप को उठाया और मेज के अदर से दस रुपए का चुरमुरा-सा नोट निकाला और उसे कीर्ति की तरफ बढा दिया—

"लो "

"दस रुपये ?" कीर्ति ने कहा।

"हा तुम्हे बताया न मेरे लिए सब बेकार हैं। मै और नही दे सकता "

"इनसे तो " और कीर्ति ने जुमला भी पूरा न किया। उसके भीतर बात करने की शक्ति, शब्द, सब थक गये थे। फिर मतलब साफ था। मगन समझ गया।

"इनमे तो बोतल भी न आयेगी दवा का खर्च भी पूरा न होगा" रोटी भी न बनेगी " इसी किस्म के जुमले होगे सब मजबूर और गरीब जिन जुमलो की कै किया करते है। उसने कीर्ति की तरफ देखते हुए कहा—

"मुझे बस बहला दो तो मै अच्छे पैसे दूगा "

और ऐसा कहने मे उसने दो उगलियो का छल्ला बनाया। थोडी आग मारी

जैसे डोम साजिदे नायिका को दाद देते हुए मारते हैं ।

कीर्ति बाहर निकली तो उसके होंठ भिंचे हुए। वह थोड़ा हाफ रही थी । लौटने पर कीर्ति हमेशा उलटी तरफ से जाती थी हालांकि इसमे उसे मील-डेढ मील का चक्कर पड़ता था । वह न चाहती थी कि सिराजा मे उसकी टक्कर हो लेकिन आज वह उस तरफ से गयी जैसे उसमे किसी शका के समाधान की इच्छा उभर आयी थी । माईकेल चला आया था और सिराजा के साथ मिलकर कुछ खा रहा था जबकि कीर्ति मुह ऊपर उठाये नाक फुलाये उसके पास से गुजर गयी । सिराजा ने कुछ कहा जो मगन को सुनाई न दिया । कीर्ति मे वह बगावत की ही भावना थी और या फिर वह उन मुसीबतो के मारे लोगो मे थी जो दुश्मन के साथ भी बना कर रखने की सोचते है—शायद उन्ही से कोई काम आ पड़े या शायद यह औरत की प्रकृति की खामियत थी जो उस मर्द को भी अपने पीछे लगाये रखती है जिससे उसे कुछ लेना-देना नही या सिर्फ इसलिए कि उसे देखकर उसने एक बार सीटी बजायी या अपनी छाती पर हाथ रखकर मर्द आह भरी थी ।

सिराज जरूर कोई 'एफ्रोडिजयाक' खा रहा था । हो सकता है पाए हों जो माईकेल उसके लिए लाया था । शायद वह दोनो मिलकर मगन टकले के पास आते और उसे कुछ दाव-घात बताते, लेकिन मगन ने दुकान ही बढा ली थी । दरवाजो को अदर से बद करते हुए उसने कीर्ति के वुड वर्क को देखा जो बहुत उमदा था । शेषनाग का निचला हिस्सा तो खूबसूरत था ही लेकिन ऊपर उसकी चितकबरी खाल मे उसने सिर्फ गोदनो मे रग भर दिये थे । विष्णु मे वही था जो कोई भी आस्थावान औरत मर्द मे देखना चाहती है । हा लक्ष्मी ढेर-सी पडी थी और उनके वदन की रेखाएं साफ नही थी । शायद कीर्ति लक्ष्मी को या उसके किसी रूप को न जानती थी हालांकि उसे रोचक बनाना कितना आसान था । जब औरत पाव दबाने के लिए झुकती है तो जाहिर है उसके हाथ बाजू, वदन से अलग होते हैं और औरत अपनी खामियत के साथ साफ दिखाई देती है । फिर पहलू मे बैठी हुई ऊपर की औरत नीचे वाली से कितनी कट जाती है और मर्द को नजरो को क्या-क्या ऊंच-नीच समझाती है। अगर यह कहे कि कीर्ति खुद औरत थी इसलिए औरत की बनिस्बत उसे मर्द मे ज्यादा दिलचस्पी थी तो यह गलत होगा क्योंकि औरत अपने हुस्न के सिलसिले मे शुरू से आखिर तक आत्मरति मे डूबी

हुई होती है और जब उसकी अपनी यह आत्मरति बर्दाश्त के बाहर हो जाती है तो किसी भी मर्द की मदद से उसे भटक देती है।

मगन ने कीर्ति के उस वुडवर्क को एक हाथ में लिया और दूसरे में चाकू लेकर उस पर 'सिद्धम नम' के अक्षर खोदे और फिर पिछले कमरे में पहुंच गया जहां कच्ची जमीन थी जिसे खोद कर उसने उस वुड वर्क को नीचे रखा। एक और मूर्ति को निकाला जो कीर्ति ही की बनाई हुई थी और फिर गड्ढे पर मिट्टी डाल कर उस पर कत्थे का पानी छिड़क दिया। पुरानी मूर्ति की मिट्टी झाड़कर उसे देखा तो बड़ी-बड़ी दरारें उसमें चली आयी थीं और वह सदियों पुरानी मालूम हो रही थी। अगले दिन जब वह उसे लेकर, टूरिस्टों के पास गया तो वे बहुत खुश हुए। मगन ने उन्हें बताया कि उसका जिक्र कालिदास के रघुवंश में आता है। रघु जी ने कोंकण देश में त्रिकूट नाम का एक शहर बसाया था जहां से वह मूर्ति मिली है। कुछ मैसूर के चमार राजा वाडियर के पास है और कुछ अपने पास। इस तरह मगन टकले ने उस मूर्ति को साढ़े पांच सौ में बेच दिया जिसके लिए उसने कीर्ति को सिर्फ पांच रुपये दिये थे।

इस घटना के एक हफ्ते के अंदर कीर्ति न्यूड ले आयी। वह वैसी ही परेशान थी। उसकी मां तो बीमार थी ही वह भी बीमार हो गयी थी। उसे करीब-करीब निमोनिया हो गया था। वह खांस रही थी और बार-बार अपना गला पकड़ रही थी जिसपर उसने रुई का लूगड़ एक फटे-पुराने कपड़े के साथ बांध रखा था।

कीर्ति ने और दिनों की तरह मूर्ति को मगन टकले के सामने रख दिया। अब के उसने उसे लकड़ी में नहीं, पत्थर में बनाया था और वह फिर उम्मीद और डर के साथ मगन टकले की तरफ देख रही थी। मगन अगर नापसंद करता तो वह बहुत बड़ा झूठ होता इसलिए उसने न सिर्फ उसे पसंद किया बल्कि जी भर कर दाद दी। शिकायत की तो सिर्फ इतनी कि वह बहुत छोटा था। काश वह उसे पूरे आदमी की ऊंचाई के बराबर बनाती तो न सिर्फ उसे बल्कि खुद मगन को भी बहुत फायदा होता।

उसने यक्षी की मूर्ति को हाथ में लिया और गौर से देखा। कीर्ति फिर भी

सचमुच का न्यूड न बना सकी थी। मूर्ति के बदन पर कपड़ा था जो गीला था। कमाल यह था कि उस कपड़े से अब भी पानी की बूंद टपकती हुई सी मालूम होती। वह कहीं तो बदन के साथ चिपका हुआ था और कहीं अलग। ऊपर से बदन के छिपाने की कोशिश में वह औरत का जिस्म और भी उभार कर जाहिर कर रहा था।

मूर्ति पर से नजर हटा कर मगन टकले ने कीर्ति की तरफ देखा और बरबस उसके मुंह से निकल पड़ा—"वाह।" कीर्ति झेंप गयी और उस जामुनी साड़ी को वह आगे खींचने और पीछे टांकने लगी लेकिन मगन सब जान गया था कि वह शीशे के सामने नंगी होकर खुद को आइने में देखती और उसे बनाती रही है। कितनी बार उसने कपड़ा भिगोकर अपने बदन पर रखा होगा जिस से उसे सर्दी हो गयी होगी और अब वह खांस रही है। यह सिर्फ पैसे की ही बात नहीं। औरत में नुमायश और आत्मसमर्पण का भाव भी तो है। मगन सब कुछ समझ गया था मगर जानबूझ कर अनजान बनते हुए उसने पूछा—

"मां कैसी है?"

कीर्ति जैसे एकदम गुस्से में आ गयी। उसे खांसी का फिट-सा पड़ा और खुद को संभालने में खासी देर लगी। मगन घबरा गया था और शर्मिंदा भी था। उसके बाद सिर हिलाते हुए जो सवाल उसने किया वह भी जरूरी नहीं था—

"तो माडल मिल गया तुम्हें?"

कीर्ति ने पहले तो नजरें गिरा दीं और फिर दुकान से बाहर उस तरफ देखने लगी जहां सड़क आसमान को छूती हुई यकायक नीचे गिरती थी। मगन ने चाहा उसे उस कमजोरी की हालत में पकड़ ले और वह दाद दे जिसकी वह हकदार थी और जो शायद वह चाहती भी थी। मगर उसने सोचा ऐसे में दाम बढ़ जायेगा। उसने अपने दिल में अब के कीर्ति को सौ रुपए देने का फैसला किया। बोतल और बाकी की चीजें शायद सौ की न हों मगर वह सौ ही देगा। अंदर ही अंदर वह डर भी रहा था कहीं कीर्ति ज्यादा न मांग बैठे।

"क्या दाम दूं इसके?" उसने यों ही सरसरे तरीके से पूछा।

कीर्ति ने उचटती नजर से उसकी ओर देखा और बोली, "अब के मैं पचास रुपए लूंगी।"

"पचास ?"

"हा पाई कम नही ··"

मगन ने तमकीन की भावना के माथ रोल टाप उठाया और चालीम रुपए निकालकर कीर्ति के सामने रख दिये और बोला—

"जो तुम कहो, मगर अभी चालीस ही हैं मेरे पास दस फिर ले जाना · "
कीर्ति ने रुपए हाथ मे लिए और कहा—

"अच्छा।"

वह जाने वाली थी कि मगन ने उसे रोक लिया—"सुनो।"

कीर्ति गति के बीच रुककर उस की तरफ—'मुझे थाम लो' के अदाज मे देखने लगी। उसके चेहरे पर उदासिया छट जाने के बजाय कुछ रुक गयी थी जब कि मगन टकले ने पूछा—"इतने पैसो मे तुम्हारा काम चल जायेगा ?"

कीर्ति ने सिर हिला दिया और फिर हाथ फैलाए, जिसका मतलब था 'और क्या करना ?' फिर उसने बताया—मा का आपरेशन आ रहा है सैकडो रुपए चाहिए।

"मैं तो कहती हू," उसने कहा और फिर कुछ रुक कर बोली, "मा जितनी जल्दी मर जाये उतना ही अच्छा है।"—और फिर वह वहा खडी, पाव के अगूठे से जमीन कुरेदने लगी।

आखिर वह खुद ही बोल उठी, "ऐसे एडिया रगडने से मौत अच्छी "

जब मगन ने आख न मिलायी तो कीर्ति अठारह-उन्नीस बरस की लडकी की बजाय पैंतीस-चालीस की भरपूर औरत नजर आने लगी जो जिंदगी का हर वार अपने ऊपर लेती और उसे बेकार करके फेक देती है।

"एक बात कहू।" टकले ने पास आते हुए कहा, "तुम मिथुन बनाओ आपरेशन का सब खर्चा मैं दूगा · ।"

"मिथुन ?" कीर्ति ने कहा और काप उठी।

"हा।" मगन बोला, "उसकी बहुत माग है। टूरिस्ट उसके लिए दीवाने होते है ।"

"लेकिन···"

"मैं समझता हू।" मगन ने सिर हिलाते हुए कहा, "तुम नही जानती तो एक

बार खजुराहो चली जाओ और देख लो। मैं उसके लिए तुम्हें पेशगी देने को तैयार हूं · · "

"तुम!" कीर्ति ने नफरत से उसकी तरफ देखा और फिर कुछ देर बाद बोली, "तुम तो कह रहे थे तुम्हारे पास और पैसे नहीं "

मगन ने फौरन झूठ गढ लिया—

"मेरे पास सच्ची पैसे नहीं" वह बोला—

"मैंने दुकान का किराया देने के लिए कुछ अलग रखे थे।"

फिर उसने पैसे देने की कोशिश की मगर कीर्ति ने अपने गुमान में नहीं लिये और वहां से चली गयी। मगन टकले ने लौट कर यक्षी को देखा और फिर छोटी-सी हथौड़ी लेकर उसकी नाक तोडी। फिर टांग तोड़ी और उसके सिर के सिंगार पर हल्की-हल्की चोटें लगायी जिससे कुछ खुरच गिरी। फिर अंदर जाकर उसने उसे रस्सी से बांधा और नमक के तेजाब में डुबो दिया। धूएं के बादल से उड़े। मगन ने रस्सी को खींचा और यक्षी को निकाल कर पानी में डाल दिया। अब जो उसे निकाला तो यक्षी के सारे साज-सिंगार धूमिल हो गये थे और कहीं-कहीं बीच में सूराख भी चटाख से पड गये थे। अब वह हजार रुपये में बिकने के लिए तैयार थी।

अब के कीर्ति जो मूर्ति लायी थी वह मिथुन ही थी और पूरा आदमी के कद के बराबर। वह एक बोरी में बंधा हुआ ठेले पर आया था। कुछ मजदूरों ने उठा कर उसे मगन टकले की दुकान पर रखा। फिर अपनी मजदूरी लेकर वह लोग चले गये।

कीर्ति और खुद अपने को तनहा पाकर तेज सांसों के बीच मगन टकले ने बोरी की रस्सियां काटी और कुछ उत्सुकता से टाट को मूर्ति पर से हटाया। अब मूर्ति सामने थी। "परफेक्ट"—मगन ने उसे देखा तो उसके गले में राल सूख गयी। उसका ख्याल था कि कीर्ति अपने सामने उस शिल्प को न देखने देगी। मगर वह वहीं खड़ी रही। उसके सामने, किसी भी आवेग से शून्य, शिल्प की औरत पूर्णता को पहुंच रही थी, जब कि मर्द आत्मविस्मृति की हालत में उसे

दोनों कधो से पकड़े हुए था—जिसे मगन टकले ने ध्यान से देखा—वह शायद फुर्सत मे देखना चाहता था ।

"कितने पैसे चाहिए आपरेशन के लिए ?"

"आपरेशन के लिए नही—अपने लिए।"

"अपने लिए ? मा "

"मर गयी कोई हफ्ता हुआ "

मगन ने अपने चेहरे पर दुख और अफसोस के भाव लाने की कोशिश की मगर शायद कीर्ति न चाहती थी । उसके होठ वैसे ही भिचे हुए थे । वह वैसे ही उदास थी जब कि उसने कहा—"मैं इसके हजार रुपये लूगी "

मगन भौचक्का-सा रह गया । उसकी जबान मे तुतलाहट थी—"इसके हजार रुपये भी कोई दे सकता है ?"

"हा।" कीर्ति ने जवाब दिया— "मैं बात करके आयी हू शायद मुझे ज्यादा भी मिल जायें · लेकिन मैंने तुमसे वायदा किया था ।"

"मैं तो मैं तो पाच सौ दे सकता हू ।"

"नही ।" और कीर्ति ने मजदूरों के लिए बाहर देखना शुरू कर दिया । मगन टकले ने उसे रोका—"सौ-दो-सौ और ले लो ।"

"हजार से कम नही ।"

मगन ने हैरान होकर कीर्ति की तरफ देखा जिसके आज तेवर ही दूसरे थे । क्या वह खजुराहो गयी थी ? टूरिस्टों से मिली थी? किसी भी कीमत पर कलाकार को उसकी मार्केट से जुदा रखना चाहिए । मगर खैर उसने रोल टाप उठाया और आठ सौ के नोट गिन कर कीर्ति के सामने रख दिये । कीर्ति ने जल्दी से गिने और उसके मुह पर फेंक दिये ।

"मैंने कहा न—हजार से कम न लूगी ।"

"अच्छा नौ सौ ले लो "

"नही ।"

"साढे नौ सौ नौ सौ पचहत्तर " और फिर कीर्ति की निगाहों मे कोई गुमान देख कर उसने सौ-सौ के दस नोट उसके हाथ मे दे दिये और नशे की हालत मे मिथुन की तरफ लपक गया । कीर्ति खड़ी थी । जैसे वह अपनी कला की दाद

लेने के लिए ठिठक गयी थी। मगन ने मिथुन में औरत की तरफ देखा जो फिर कीर्ति थी। उसकी आंखों मे आंसू क्यों थे ? क्या वह लज्जा का गहरा एहसास था या किसी जब्र का ? क्या वह दुख और सुख, दर्द और राहत का रिश्ता था जो कि पूरी सृष्टि है ? फिर उसने मर्द की तरफ देखा जो ऊपर से नाजुक था मगर नीचे से बेहद गंदला। क्यों ? कीर्ति ने क्यों—मर्द—इंसान की कठोरता पर जोर दिया था···यह मिथुन है मगर वह मिथुन तो नहीं जो पुरुष और प्रकृति में होता है···ठीक है · उल्टे ज्यादा पैसे मिलेंगे ··

मगन टकले ने ऊपर की बत्ती को खींचकर फिर मर्द की तरफ देखा और बोल उठा—

"यह···मैंने इसे कहीं देखा है...?"

कीर्ति ने कोई जवाब नहीं दिया।

"तुम।" मगन ने जैसे पता पाते हुए कहा—

"तुम मिराजा के साथ बाहर गयी थी।"

कीर्ति ने आगे बढ़ कर जोर से एक थप्पड़ मगन टकले के मुंह पर लगा दिया और नोट हाथ में थामे दुकान से निकल गयी।

अपने दुख मुझे दे दो

शादी की रात बिलकुल वह न हुआ जो मदन ने सोचा था ।

जब चकली भाभी ने फुसला कर मदन को बीच वाले कमरे में धकेल दिया। इन्दु सामने शालू में लिपटी हुई अंधेरे का भाग बनी जा रही थी। बाहर चकली भाभी दरियाबाद वाली फूफी और दूसरी औरतों की हंसी रात के खामोश पानियों में मिसरी की तरह धीरे-धीरे घुल रही थी। औरतें सब यही समझती थीं, इतना बड़ा हो जाने पर भी मदन कुछ नहीं जानता, क्योंकि जब उसे बीच रात नींद से जगाया गया तो वह हड़बड़ा रहा था— 'कहां-कहां लिये जा रही हो मुझे ?"

इन औरतों के अपने दिन बीत चुके थे। पहली रात के बारे में उनके शरीर शोहरों ने जो कुछ कहा और माना था उसकी गूंज तक उनके कानों में बाकी न रही थी। वह खुद रस बस चुकी थीं और अब अपनी एक और बहन को बसाने पर तुली हुई थीं। धरती की ये बेटियां मर्द को यों समझती थीं जैसे बादल का टुकड़ा हो जिसकी तरफ बारिश के लिए मुंह उठा कर देखना ही पड़ता है। न बरसे तो मिन्नतें माननी पड़ती हैं, चढ़ावे चढ़ाने पड़ते हैं, जादू-टोने करने पड़ते हैं। हालांकि मदन कालकाजी की इस नयी आबादी में घर के सामने खुली जगह पर पड़ा उसी वक्त के इन्तजार में था। फिर एक बदशगुन की तरह पड़ोसी सिब्ते की भैंस उसकी खाट ही के पास बंधी थी जो बार-बार फुंकारती हुई मदन को सूंघ लेती और वह हाथ उठा-उठा कर उसे दूर रखने की कोशिश करता—ऐसे में भला नींद का सवाल ही कहां था।

समदर की लहरें और औरतों के खून को रास्ता बनाने वाला चांद एक खिड़की के रास्ते अंदर चला आया था और देख रहा था, दरवाजे के उस तरफ खड़ा मदन अगला कदम कहां रखता है। मदन के अपने अंदर एक घन गरज-सी हो रही थी और उसे अपना आप यूं मालूम हो रहा था जैसे बिजली का खंभा है जिसे कान लगाने से उसे अंदर की सनसनाहट सुनाई दे जायेगी। कुछ देर यूं ही खड़े रहने के बाद उसने आगे बढ़कर पलंग को खींच कर चांदनी में कर दिया ताकि दुलहन का चेहरा तो देख सके। फिर वह ठिठक गया। जभी उसने

सोचा—इंदु मेरी बीबी है कोई परायी औरत तो नही, जिसे न छूने का सबक बचपन ही मे पढता आया हूं। शालू मे लिपटी हुई दुलहन को देखने हुए उसने फर्ज कर लिया यहा इदु का मुह होगा और जब हाथ बढाकर उसने पास पडी गठरी को छुआ तो वही इदु का मुह था। मदन ने सोचा था वह आसानी से उसे अपना आप न देखने देगी, लेकिन इदु ने ऐसा कुछ न किया जैसे पहले कई सालो से वह भी इसी क्षण के इतजार मे हो और किसी ख्याली भैंस के सूघते रहने से उसे भी नीद न आ रही हो। शायद नीद और बद आखों का दर्द अधेरे के बावजूद सामने फडफड़ाता हुआ नजर आ रहा था। ठोडी तक पहुचते हुए आमतौर पर चेहरा लबोतरा हो जाता है लेकिन यहा तो सभी गोल था। शायद इसीलिए चादनी की तरफ गाल और होठो के बीच एक सायादार खोह-सी बनी हुई थी जैसी दो सरसब्ज और शादाब टीलो के बीच होती है। माथा कुछ तग था लेकिन उस पर से यकायकी उठने वाले घुघराले बाल—

जभी इदु ने अपना चेहरा छुडा लिया। जैसे वह देखने की इजाजन तो देती हो लेकिन इतनी देर के लिए नही। आखिर शर्म की भी तो कोई हद होती है। मदन ने जरा सख्त हाथो से यो ही सी हू-हा करते हुए दुलहन का चेहरा फिर से ऊपर को उठा लिया और शराबी की-सी आवाज मे बोला—"इदु!"

इदु कुछ डर-सी गयी। जिंदगी मे पहली बार किसी अजनबी ने उसका नाम इस अदाज से पुकारा था और वह अजनबी को सी दैवी अधिकार से रात के अधेरे मे आहिस्ता-आहिस्ता उस अकेली बेयार ओ मददगार औरत का अपना होना जा रहा था। इदु ने पहली बार एक नजर ऊपर देखते हुए फिर आखे बंद कर ली और इतना-सा कहा—"जी!" · उसे खुद अपनी आवाज किसी पाताल से आती सुनायी दी।

देर तक कुछ ऐसा ही होता रहा और फिर हौले-हौले बात चल निकली। अब जो चली सो चली। वह थमने ही मे न आती थी। इंदु के पिता, इदु की मा, इदु के भाई, मदन के भाई-बहन बाप, उनकी रेलवे मेल सर्विस की नौकरी, उनके मिजाज, कपड़ो की पसद, खाने की आदत सभी कुछ का लेखा-जोखा लिया जाने लगा। बीच-बीच मे मदन बातचीत को तोड़ कर कुछ और ही करना चाहता था, लेकिन इदु तरह दे जाती थी। बेहद मजबूरी और लाचारी मे मदन ने अपनी मा का जिक्र

छेड़ दिया जो उसे सात साल की उमर मे छोड कर दिक की बीमारी से चलती बनी थी। "जितनी देर जिंदा रही बिचारी," मदन ने कहा—"बाबू जी के हाथ मे दवाई की शीशिया ही रही, हम अस्पताल की सीढियो पर और छोटा पाशी घर मे चीटियो के बिल पर मोते रहे और आखिर एक दिन—28 मार्च की शाम " और मदन चुप हो गया। कुछ ही क्षणो मे वह रोने से जरा इधर और घिघ्घी से जरा उधर पहुच गया। इदु ने घबरा कर मदन का सिर अपनी छाती मे लगा लिया। उस रोने ने पल भर मे इदु को अपनेपन से इधर और बेगानेपन से उधर पहुचा दिया। मदन इदु के बारे मे कुछ और भी जानना चाहता था लेकिन इदु ने उसके हाथ पकड लिये और कहा—"मै तो पढी-लिखी नही हू जी पर मैने मा-बाप देखे है, भाई और भाभिया देखी है, बीसो और लोग देखे है इसलिए मै कुछ समझती-बूझती भी हू, मै अब तुम्हारी हू। अपने बदले मे तुम से एक ही चीज मागती हू "

रोने वक्त और उसके बाद भी एक नशा-सा था। मदन ने कुछ बेमत्री और कुछ दरियादिली के मिले-जुले शब्दो मे कहा—

"क्या मागती हो ? तुम जो भी कहोगी मै दूगा।"

"पक्की बात," इंदु बोली।

मदन ने कुछ उतावले होकर कहा—

"हा-हा—कहा जो पक्की बात।"

लेकिन इस बीच मे मदन के मन मे एक वसवसा आया। मेरा कारोबार पहले ही मदा है अगर इदु कोई ऐसी चीज माग ले जो मेरी पहुच ही से बाहर हो तो फिर क्या होगा ? लेकिन इदु ने मदन के सख्त और फैले हुए हाथो को अपने मुलायम हाथो मे समेटते और उन पर अपने गाल रखते हुए कहा—

"तुम अपने दुख मुझे दे दो।"

मदन सख्त हैरान हुआ। साथ ही उसे अपने आप पर से एक बोझ भी उतरता हुआ महसूस हुआ। उसने फिर चादनी मे एक बार इदु का चेहरा देखने की कोशिश की लेकिन वह कुछ न जान पाया। उसने सोचा, यह मा या किसी सहेली का रटा हुआ फिकरा होगा जो इदु ने कह दिया। जभी एक जलता हुआ आसू मदन के हाथ की पुश्त पर गिरा। उसने इदु को अपने साथ लिपटाते हुए

सबके एक साथ बैठ कर खाने पर जिद करता तो बाप धनीराम वहीं डाट देना—"खाओ तुम"—वह कहता—"वह भी खा लेंगे।" और फिर रसोई में इधर उधर देखने लगता और जब बहू खाने-पीने से छुट्टी पाती और बर्तनों की तरफ ध्यान देती तो बाबू धनीराम उसे रोकते हुए कहते, "रहने दो बहू बर्तन सुबह हो जायेंगे।" इदु कहती, "नहीं बाबू जी, मैं अभी किये देती हूं भपाके से।" तब बाबू धनीराम एक कांपती आवाज में कहते—"मदन की मां होती बहू तो यह सब तुम्हें करने देती?" और इदु एकदम अपने हाथ रोक लेती।

छोटा पाशी भाभी से शर्माता था। इस ख्याल से दुलहन की गोद भरे से हरी हो, चकली भाभी और दरियाबाद वाली फूफी ने एक रस्म में पाशी ही को इदु की गोद में डाला था। तब से इदु उसे न सिर्फ देवर बल्कि अपना बच्चा समझने लगी थी। जब भी वह प्यार से पाशी को अपने बाजुओं में लेने की कोशिश करती तो वह घबरा उठता और अपना आप छुड़ाकर दो हाथ की दूरी पर खड़ा हो जाता, देखता, और हंसता, पास आता न दूर हटता। एक अजीब इत्तफाक से ऐसे में बाबू जी हमेशा वहीं मौजूद होते और पाशी को डाटते हुए कहते—"अरे जा ना भाभी प्यार करती है" अभी से मर्द हो गया है तू?" और दुलारी तो पीछा ही न छोड़ती। उसके—'मैं तो भाभी के पास ही सोऊंगी' की जिद ने बाबूजी के अंदर कोई 'जनारधन' जगा दिया था। एक रात इसी बात पर दुलारी को जोर से चपत पड़ी और वह घर की आधी कच्ची आधी पक्की नाली में जा गिरी। इदु ने लपकते हुए पकड़ा तो सिर पर से दुपट्टा उड़ गया, बालों के फूल और चिड़िया। मांग का सिंदूर, कानों के करन फूल सब नंगे हो गये। "बाबूजी!" इदु ने सांस खींचते हुए कहा—एक साथ दुलारी को पकड़ने और सिर पर दुपट्टा ओढ़ने में इदु के पसीने छूट गये। उस बिन मां की बच्ची को छाती के साथ लगाये हुए इदु ने उसे एक बिस्तर में सुला दिया जहां सिरहाने तकिए ही तकिए थे। न कहीं पायती थी न काठ के बाजू। चोट तो एक तरफ कहीं कोई चुभने वाली चीज भी न थी। फिर इदु की उंगलियां दुलारी के फोड़े ऐसे सिर पर चलती हुई उसे दुखा भी रही थीं और मजा भी दे रही थीं। दुलारी के गालों पर बड़े-बड़े और प्यारे से गड्ढे पड़ते थे। इदु ने उन गड्ढों का जायजा लेते हुए कहा—

"तेरी सास मरे कैसे गड्ढे पड़ रहे हैं गालों पर!"

मुन्नी ने मुन्नी ही की तरह कहा—

"गढ्डे तो तुम्हारे भी पडते हैं भाभी ···"

"हां मुन्नो," इंदु ने कहा और एक ठडी सास ली।

मदन को किसी बात पर गुस्सा था। वह पास ही खडा सब कुछ सुन रहा था। बोला—"मै तो कहता हू एक तरह से अच्छा ही है· ·"

"क्यो ? अच्छा क्यों है ?" इदु ने पूछा।

"हा न हो बास न बजे बासुरी · सास न हो तो कोई झगडा ही नही रहता।"

इदु ने सहसा खफा होते हुए कहा—"तुम जाओ जी सो रहो जाकर, बडे आये हो...आदमी जीता है तो लडता है ना। मरघट की चुप-चाप से झगड़े भले। जाओ न रसोई मे तुम्हारा क्या काम ?"

मदन खिसियाना होकर रह गया। बाबू धनीराम की डाट से बाकी बच्चे तो पहले ही से अपने-अपने बिस्तरों मे यू जा पड़े थे जेसे डाक घर मे चिट्ठिया सार्ट होती है। लेकिन मदन वही खड़ा रहा उसकी जरूरतों ने उसे ढीठ और बेशर्म बना दिया था। लेकिन उस वक्त जब इदु ने भी उसे डाट दिया तो वह रुआसा होकर अदर चला गया।

देर तक मदन बिस्तर मे पडा कसमसाता रहा। लेकिन बाबूजी के ख्याल से इंदु को आवाज देने की हिम्मत न पड़ती थी। उसकी बेसब्री की हद हो गयी जब मुन्नी को सुलाने के लिए इदु की लोरी सुनायी दी—"तू आ निंदिया रानी, बौरानी, मस्तानी।"

—वही लोरी जो दुलारी मुन्नी को सुला रही थी, मदन की नीद भगा रही थी। अपने आप से तंग आकर उसने जोर से चादर खीच ली। सफेद चादर के सिर पर लेने और सास लेकर बद करने से खामखाह एक मुर्दे का ख्याल पैदा हो गया। मदन को यू लगा जैसे वह मर चुका है और उस की दुलहन इदु उसके पास बैठी जोर-जोर से सिर पीट रही है। दीवार के साथ कलाईया मार-मार कर चूडिया तोड़ रही है और फिर गिरती-पड़ती रोती-चिल्लाती रसोई मे जाती है और चूल्हे की राख सिर पर डाल लेती है, फिर बाहर लपक जाती है और बाहें उठा-उठाकर गली मोहल्ले के लोगों से फरियाद करती है—"लोगो मैं लुट गयी।" अब उसे दुपट्टे की परवाह नही, कमीज की परवाह नही, माग का सिंदूर, बालो के फूल और

चिडिया सब नगे हो चुके हैं। भावो और ख्यालात के तोते उड चुके हैं।

मदन की आखो से बेतहाशा आसू बह रहे थे हालांकि रसोई मे इदु हस रही थी। पल भर मे अपने सोहाग के उजडने और फिर बस जाने से बेखबर। मदन जब यथार्थ की दुनिया मे आया तो आसू पोछते हुए अपने पर हसने लगा। उधर इदु हस तो रही थी लेकिन उसकी हसी दबी-दबी थी। बाबूजी के ख्याल से वह कभी ऊची आवाज़ मे न हसती थी जैसे खिलखिलाहट कोई नगापन है, खामोशी दुपट्टा और दबी-दबी हसी एक घूघट। फिर मदन ने इदु की एक ख्याली मूर्ति बनायी और उससे बीसियो बाते कर डाली, यो उससे प्यार किया जैसे अभी तक न किया था। वह फिर अपनी दुनिया मे लौटा जिसमे साथ का बिस्तर खाली था। उसने हौले से आवाज दी 'इदु' और फिर चुप हो गया। उस उधेड-बुन मे वह बौराई मस्तानी निंदिया उससे भी लिपट गयी। एक ऊघ-सी आयी लेकिन साथ ही यू लगा जैसे शादी की रात वाली पडोसी सब्ते की भैंस मुह के पास फुकारने लगी है। वह एक बेकली की हालत मे उठा, फिर रसोई की तरफ देखते सिर को खुजाते दो-तीन जम्हाईया लेकर लेट गया। सो गया।

मदन जैसे कानो को कोई सदेसा देकर सोया था। जब इदु की चूड़िया बिस्तर की सिलवटे दुरुस्त करने के लिए खनक उठी तो वह भी हडबडाकर उठ बैठा। यो एकदम जागने मे मोहब्बत की भावना और भी तेज हो गयी थी। प्यार से करवटो को तोडे बगैर आदमी सो जाये और यकायक उठे तो मोहब्बत दम तोड देती है। मदन का सारा बदन अदर की आग से फुक रहा था और यही उसके गुस्से का कारण बन गया। जब उसने कुछ बौखलाए हुए अदाज मे कहा—

"सो तुम आ गयी।"

"हा "

"मुन्नी सो, मर गयी ?"

इदु झुकी-झुकी एकदम सीधी खडी हो गयी। "हाय राम !" उसने नाक पर उगली रखते हुए कहा—

"क्या कह रहे हो ? मरे क्यो बेचारी—मा-बाप की एक ही बेटी · "

"हा" मदन ने कहा—"भाभी की एक ही ननद !" और फिर एक हुकुम देने वाला लहजा अख्तियार करते हुए बोला—"ज्यादा मुह मत लगाओ

उस चुड़ैल को।"

"क्यों उसमें क्या पाप है ?"

"यही पाप है," मदन ने चिढ़ते हुए कहा—"पीछा ही नहीं छोड़ती तुम्हारा। जब देखो जोंक की तरह चिमटी हुई है। दफा ही नहीं होती "

"हाय !" इंदु ने मदन की चारपाई पर बैठते हुए कहा—"बहनों और बेटियों को यों तो धुतकारना नहीं चाहिए। बेचारी दो दिन की मेहमान, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों एक दिन चल ही देगी · " इसके बाद इंदु कुछ कहना चाहती थी लेकिन वह चुप हो गयी। उसकी आंखों में अपने मां, बाप, भाई, बहन, चाचा, ताया सभी घूम गये। कभी वह भी उनकी दुलारी थी जो पलक झपकते ही न्यारी हो गयी और फिर दिन-रात उसके निकाले जाने की बात होने लगी, जैसे घर में कोई बड़ी-सी नाली है। जिसमें कोई नागिन रहती है, और जब तक वह पकड़कर फुकवायी नहीं जाती घर के लोग आराम की नींद सो नहीं सकते। दूर-दूर से कीलने वाले, नथन करने वाले, दांत तोड़ने वाले मदारी बुलवाए गये। बड़े-बड़े धनवंतरी और मोती सागर—आखिर एक दिन उत्तर-पच्छिम की तरफ से लाल आंधी आयी जो साफ हुई तो एक लारी खड़ी थी जिसमें गोटे-किनारी में लिपटी हुई एक दुलहन बैठी थी। पीछे घर में एक सुर पर बजती हुई शहनाई बीन की आवाज मालूम हो रही थी। फिर एक धचके के साथ लारी चल दी।

मदन ने कुछ गुस्से की हालत में कहा—

"तुम औरतें बड़ी चालाक होती हो। अभी कल ही इस घर में आयी हो और यहां के सब लोग तुम्हें हमसे ज्यादा प्यारे लगने लगे ?"

"हां।" इंदु ने विश्वास के साथ कहा।

"यह सब झूठ है। यह हो ही नहीं सकता।"

"तुम्हारा मतलब है मैं···"

"दिखावा है यह सब···हां !"

"अच्छा जी !" इंदु ने आंखों में आंसू लाते हुए कहा—"यह सब दिखावा है मेरा ?" और इंदु उठकर अपने बिस्तर पर चली गयी और सिरहाने में मुंह छिपा कर सिसकियां भरने लगी। मदन उसे मनाने ही वाला था कि इंदु खुद ही उठ मदन के पास आ गयी और और सख्ती से उसका हाथ पकड़ते हुए बोली—

"तुम जो हर वक्त जली-कटी कहते रहते हो, हुआ क्या है तुम्हें ?"

शौहर की तरह रौब-दाब जमाने के लिए मदन के हाथ बहाना आ गया—"जाओ जाओ सो जाओ जा के," मदन ने कहा—"मुझे तुमसे कुछ नहीं लेना..."

"तुम्हें कुछ नहीं लेना मुझे तो लेना है," इंदु बोली—"जिंदगी भर लेना है।" और वह छीना-झपटी करने लगी। मदन उसे दुतकारता था और वह उसे लिपट-लिपट जाती थी। वह उस मछली की तरह थी जो बहाव में बह जाने के बजाय झरने के तेज धारे को काटती हुई ऊपर ही ऊपर पहुंचना चाहती है। चुटकियां लेती, हाथ पकड़ती, रोती-हंसती वह कह रही थी—

"फिर मुझे फाफा कुटनी कहोगे ?"

"वह तो सभी औरतें होती हैं।"

"ठहरो तुम्हारी तो" यूं मालूम हुआ जैसे इंदु कोई गाली देने वाली हो और उसने मुंह में कुछ गुनगुनाया भी। मदन ने मुड़ते हुए कहा—"क्या कहा ?" और इंदु ने अबके सुनाई देने वाली आवाज में दुहरा दिया। मदन खिलखिला कर हंस पड़ा। अगले ही क्षण इंदु मदन के बाजुओं में थी और वह कह रही थी—

"तुम मर्द लोग क्या जानो—जिससे प्यार होता है उसके सभी छोटे-बड़े प्यारे होते हैं। क्या बाप, क्या भाई और क्या बहन—" और फिर यकायक दूर देखते हुए बोली—

"मैं तो दुलारी मुन्नी का ब्याह करूंगी।"

"हद हो गयी," मदन ने कहा—"अभी एक हाथ की हुई नहीं और ब्याह की भी सोचने लगी"

"तुम्हें एक हाथ की दिखती है," इंदु बोली और फिर अपने दोनों हाथ मदन की आंखों पर रखती हुई कहने लगी—"जरा आंखें बंद करो और फिर खोलो—" मदन ने सचमुच ही आंखें बंद कर ली और फिर जब कुछ देर तक न खोली तो इंदु बोली—"अब खोलो भी, इतनी देर में तो मैं बूढ़ी हो जाऊंगी"—तभी मदन ने आंखें खोलीं। क्षण भर के लिए उसे यों लगा जैसे सामने इंदु नहीं कोई और बैठी है। वह खो सा गया।

"मैंने तो अभी से चार सूट और कुछ बर्तन अलग कर डाले हैं उसके लिए," इंदु ने कहा और जब मदन ने कोई जवाब न दिया तो उसे झंझोड़ते हुए बोली—"तुम क्यों परेशान होते हो ? याद नहीं अपना वचन ?—तुम अपने दुख मुझे दे चुके हो⋯"

"एँ !" मदन ने चौंकते हुए कहा और जैसे बेफिक्र-सा हो गया लेकिन अबके उसने जब इंदु को अपने साथ लिपटाया तो वह एक जिस्म ही नहीं रह गया था⋯ साथ-साथ एक आत्मा भी शामिल हो गयी थी।

मदन के लिए इंदु आत्मा ही आत्मा थी। इंदु का जिस्म भी था लेकिन वह हमेशा किसी न किसी वजह से मदन की नजरों से ओझल ही रहा। एक परदा था। ख्वाब के तारों से बुना हुआ, आहों के धुए से रंगीन, कहकहों के सुनहले तारों से चकाचौंध जो हर वक्त इंदु को ढाँपे रहता था। मदन की निगाहें और उसके हाथों के दुशासन सदियों से उस द्रौपदी का चीरहरण करते आये थे जोकि आम तौर से बीबी कहलाती है लेकिन हमेशा उसे आसमानों के थानों के थान, गजों के गज कपड़ा नंगापन ढांपने के लिए मिलता आया था। दुशासन थक-हार के यहां-वहां गिरे पड़े थे लेकिन द्रौपदी वहीं खड़ी थी। इज्जत और पवित्रता की सफेद साड़ी पहने हुए वह देवी लग रही थी और—

⋯मदन के लौटते हुए हाथ शर्मिंदगी के पसीने से तर होते जिन्हें सुखाने के लिए वह उन्हें ऊपर हवा में उठा देता और फिर हाथ के पंजों को पूरे तौर पर फैलाता हुआ एक ऐंठन की हालत में अपनी आंखों की फैलती-फटती पुतलियों के सामने रख देता। और फिर उंगलियों के बीच से झांकता—इंदु का संगमरमर जैसा जिस्म, खुशरंग और मुलायम सामने पड़ा होता। इस्तेमाल (भोग) के लिए पास, वासना के लिए दूर⋯ कभी इंदु की नाकाबंदी हो जाती तो इस किस्म के फिकरे होते—

"हाय जी घर में छोटे बड़े सभी हैं⋯वह क्या कहेंगे ?"

मदन कहता—"छोटे समझते नहीं⋯ बड़े समझ जाते हैं।"

इसी बीच बाबू धनीराम की बदली सहारनपुर हो गयी। वहां वह रेलवे मेल

सर्विस मे सेलेक्शन ग्रेड के हेड क्लर्क हो गये। इतना बड़ा क्वार्टर मिला कि उसमे आठ कुनबे रह सकते थे। लेकिन बाबू धनीराम अकेले ही टांगे फैलाए पड़े रहते। जिदगी भर वह कभी बाल-बच्चो से अलग नही हुए थे। सब्र पसन्द किस्म के आदमी, आखिरी जिदगी मे इस अकेलेपन ने उनके दिल मे यहा से भाग निकलने का भाव पैदा कर दिया था, लेकिन मजबूरी थी। बच्चे सब दिल्ली मे मदन और इदु के पास थे और वही स्कूल मे पढ़ते थे। साल के खत्म होने से पहले उन्हे वहा से उठाना उनकी पढ़ाई के लिए अच्छा न था। बाबूजी को दिल के दौरे पड़ने लगे।

आखिर गर्मी की छुट्टिया हुई और उनके बार-बार लिखने पर मदन ने इदु को कुदन, पाशी और दुलारी के साथ सहारनपुर भेज दिया। धनीराम की दुनिया चहक उठी। कहा उन्हे दफ्तर के काम के बाद फुर्सत ही फुर्सत थी और कहा अब काम ही काम था। बच्चे, बच्चो ही की तरह जहा कपड़े उतारते वही पड़े रहने देते और बाबूजी उन्हे समेटते फिरते। अपने मदन से दूर अलसाई हुई रति इदु तो अपने पहनावे तक से गाफिल हो गयी थी। वह रसोई मे यो फिरती थी जैसे बाजी हाऊस मे गाय बाहर की तरफ मुह उठा-उठा कर अपने मालिक को ढूढा करती है। काम-धाम करने के बाद वह कभी अदर ट्रको पर लेट जाती, कभी बाहर कनेर के बूटे के पास और कभी आम के पेड़ तले जो आगन मे सैकड़ो-हजारो दिलो को थामे खड़ा था।

सावन भादो मे ढलने लगा। आगन मे से बाहर का दरीचा खुलता तो कुआ-रिया, नयी ब्याही हुई लड़किया पेंग बढ़ाते हुए गाती—झूला किन ने डारो रे अमराईया—और फिर गीत के बोल के मुताबिक दो झूलती और दो झुलाती और कही चार मिल जाती तो भूल-भुलैया हो जाती। अधेड़ उम्र की और बूढ़ी औरते एक तरफ खड़ी देखा करती। इदु को मालूम होता जैसे वह भी उनमे शामिल हो गयी है। अभी वह मुह फेर लेती और ठडी सासे भरते हुए सो जाती। बाबूजी पास से गुजरते तो उसे जगाने और उठाने की जरा भी कोशिश न करते बल्कि मौका पाकर उसकी सलवार को जो बहू धोती से बदल आती और जिसे वह हमेशा अपनी सास वाले पुराने चदन के सदूक पर फेंक देती, उठाकर खूटी पर लटका देते। ऐसे मे उन्हे सबसे नजरे बचानी पड़ती लेकिन अभी सलवार को समेटकर मुड़ते तो निगाह नीचे कोने मे बहू की चोली पर जा पड़ती, तब उनकी हिम्मत जवाब दे जाती और

"हू···हू ·" इंदु रूठने लगती। आखिर क्यों न रूठती। वह लोग नही रूठते जिन्हे मनाने वाला कोई न हो। लेकिन यहा तो मनाने वाले सब थे, रूठने वाला सिर्फ एक। जब इंदु बाबूजी के हाथ से गिलास न लेती तो वह उसे खटिया के पास सिरहाने के नीचे रख देते—और—"ले यह पडा है—तेरी मर्जी है पी—नही तो न पी—" कहते हुए चल देते।

अपने बिस्तर पर पहुच कर धनीराम दुलारी मुन्नी के साथ खेलने लगते। दुलारी को बाबूजी के नगे पिंडे के साथ पिंडा घिसना और पेट पर मुह रखकर फुटफडा फुलाने की आदत थी। आज जब बाबूजी और मुन्नी यह खेल खेल रहे थे, हस-हसा रहे थे तो मुन्नी ने भाभी की तरफ देखते हुए कहा—"दूध खराब हो जायेगा बाबूजी, भाभी तो पीती नही।"

"पीएगी, जरूर पीएगी बेटा," बाबूजी ने दूसरे हाथ से पासी को लिपटाते हुए कहा—

"औरतें घर की किसी चीज को खराब होते नही देख सकती " अभी यह फिकरा बाबूजी के मुह मे होता कि एक तरफ से 'हुश है खसम खानी' की आवाज आने लगती। पता चलता बहू बिल्ली को भगा रही है—और फिर कोई गट-गट-सी सुनाई देती और सब जान लेते बहू-भाभी ने दूध पी लिया। कुछ देर के बाद कुंदन बाबूजी के पास आता और कहता—

"बू जी...भाभी रो रही है।"

"हाय!" बाबूजी कहते और फिर उठ कर अधेरे में दूर उसी तरफ देखने लगते जिधर बहू की चारपाई पडी होती। कुछ देर यो ही बैठे रहने के बाद वह फिर लेट जाते और कुछ समझते हुए कुंदन से कहते—"जा तू सो जा, वह भी सो जायेगी अपने आप।"

और फिर से लेटते हुए बाबू धनीराम खिली हुई परमात्मा की फुलवाडी को देखने लगते और अपने मन के भगवान से पूछते—"चादी के इन खुलते बद होते हुए फूलो मे मेरा फूल कहा है?" और फिर पूरा आसमान उन्हे दर्द का एक दरिया दिखाई देने लगता और कानो मे एक लगातार हाव हो की आवाज सुनाई देती जिसे सुनते हुए वह कहते—

"जब से दुनिया बनी है इसान कितना रोया है।"

—और वह रोने-रोने लो जाने।

इंदु के जाने के बीस-पचीस रोज ही में मदन ने वावेला शुरू कर दिया। उसने लिखा—मैं बाजार की रोटियां खाते-खाते तंग आ गया हूं। मुझे कब्ज हो गयी है। गुर्दे का दर्द शुरू हो गया है। फिर जैसे दफ्तर के लोग छुट्टी का सार्टीफिकेट भेज देते हैं मदन ने बाबू जी के एक दोस्त से तस्दीक की हुई चिट्ठी लिखवा भेजी। उस पर भी जब कुछ न हुआ तो एक डबल तार—जवाबी—!

जवाबी तार के पैसे मारे गये मगर बला से। इंदु और बच्चे लौट आये थे। मदन ने इंदु से दो दिन सीधे मुंह बात ही न की। यह दुख भी इंदु का ही था। एक दिन मदन को अकेले पाकर वह पकड़ बैठी और बोली—"इतना मुंह फुलाए बैठे हो मैंने क्या किया है।"

मदन ने अपने को छुड़ाते हुए कहा—"छोड़—दूर हो जा मेरी आंखों से कमीनी···"

"यही कहने के लिए इतनी दूर से बुलवाया है?"

"हां!"

"हटाओ अब।"

"खबरदार—यह सब तुम्हारा किया-धरा है। तुम जो आना चाहती तो क्या बाबू जी रोक लेते?"

इंदु ने बेबसी से कहा—"हाय जी तुम तो बच्चों की-सी बातें करते हो। मैं भला उनसे कैसे कह सकती थी? सच पूछो तो तुम ने मुझे बुलवाकर बाबू जी पर बड़ा जुल्म किया है।"

"क्या मतलब?"

"मतलब कुछ नहीं—उनका जी बहुत लगा हुआ था बाल-बच्चों में···"

"और मेरा जी?"

"तुम्हारा जी? तुम तो कहीं भी लगा सकते हो।" इंदु ने शरारत से कहा और कुछ इस तरह से मदन की तरफ देखा कि उसकी (दफा करने) इंदु से दूरी बनाए रखने की सारी क्षमताएं खत्म हो गयीं। यों भी उसे किसी अच्छे से बहाने

की तलाश थी। उसने इंदु को पकड़कर अपने सीने से लगा लिया और बोला—

"बाबू जी तुम से बहुत खुश थे ?"

"हां," इंदु बोली—"एक दिन मैं जागी तो सिरहाने खड़े मुझे देख रहे हैं।"

"यह नहीं हो सकता।"

"अपनी कसम।"

"अपनी नहीं, मेरी कसम खाओ।"

"तुम्हारी कसम तो मैं न खाती · कोई कुछ भी दे।"

"हां" मदन ने सोचते हुए कहा—"किताबों में इसे सेक्स कहते हैं।"

"सेक्स ?" इंदु ने पूछा—"वह क्या होता है ?"

"वही जो मर्द और औरत के बीच होता है।"

"हाय राम !" इंदु ने एकदम पीछे हटते हुए कहा—"गंदे कहीं के, शर्म नहीं आयी बाबू जी के बारे में ऐसा सोचते हुए ?"

"बाबू जी को शर्म न आयी तुझे देखते हुए ?"

"क्यों ?" इंदु ने बाबू जी की तरफदारी करते हुए कहा—"वह अपनी बहू को देखकर खुश हो रहे होंगे।"

"क्यों नहीं ? जब बहू तुम ऐसी हो।"

"तुम्हारा मन गंदा है," इंदु ने नफरत से कहा—"इसीलिए तो तुम्हारा कारोबार भी गंदे बिरोजे का है। तुम्हारी किताबें सब गंदगी से भरी पड़ी है। तुम्हें और तुम्हारी किताबों को इसके सिवा कुछ दिखाई नहीं देता। ऐसे तो जब मैं बड़ी हो गयी थी तो मेरे पिता जी ने मुझ से अधिक प्यार करना शुरू कर दिया था। तो क्या वह भी वह था निगोड़ा—जिसका तुम अभी नाम ले रहे थे।" और फिर इंदु बोली—"बाबू जी को यहां बुला लो। उनका वहां जी भी नहीं लगता। वह दुखी होंगे तो क्या तुम दुखी नहीं होगे ?"

मदन अपने बाप से बहुत प्यार करता था। घर में मां की मौत ने मदन के बड़े होने के कारण सबसे ज्यादा असर उसी पर किया था। उसे अच्छी तरह से याद था। मां के बीमार रहने की वजह से जब भी उसकी मौत का ख्याल मदन के दिल में आता तो वह आखें मूंद कर प्रार्थना शुरू कर देता—"ओम नमो भगवते वासु देवा, ओम नमो · " अब वह नहीं चाहता था कि बाप की छत्र-छाया भी सिर

से उड़ जाये। खासतौर पर ऐसे में जब कि वह अपने कारोबार को भी जमा नहीं पाया था। उसने अविश्वास के लहजे में इंदु से सिर्फ इतना कहा—"अभी रहने दो बाबू जी को। शादी के बाद हम दोनों पहली बार आजादी के साथ मिल सके हैं।"

तीसरे-चौथे दिन बाबू जी का आंसुओं में डूबा हुआ खत आया। मेरे प्यारे मदन के संबोधन में मेरे प्यारे के शब्द खारे पानियों में धुल गये थे। लिखा था—वह के यहां होने पर मेरे तो पुराने दिन लौट आये थे—तुम्हारी मां के दिन, जब हमारी नयी-नयी शादी हुई थी तो वह भी ऐसी ही अल्हड़ थी। ऐसे ही उतारे हुए कपड़े इधर-उधर फेंक देती और पिता जी समेटते फिरते। वही मदन का संदूक, वही बीसियों थकान में बाजार जा रहा हूं, आ रहा हूं, कुछ नहीं तो दही बड़े या रबड़ी ला रहा हूं। अब घर में कोई नहीं। वह जगह जहां चंदन का संदूक पड़ा था खाली है · और फिर एक आध सतर और धुल गयी थी। आखिर में लिखा था—दफ्तर से लौटते समय यहां के बड़े-बड़े अंधे कमरों में दाखिल होते हुए मेरे मन में एक हौल-सा उठता है और फिर—वहू का ख्याल रखना। उसे किसी ऐसी-वैसी दाई के हवाले मत करना।"

इंदु ने दोनों हाथों से चिट्ठी पकड़ ली। सांस खींची, आंखें फैलाती, शर्म से पानी-पानी होते हुए बोली—"मैं मर गयी, बाबू जी को कैसे पता चल गया।"

मदन ने चिट्ठी छुड़ाते हुए कहा—"बाबू जी क्या बच्चे हैं, दुनिया देखी है, हमें पैदा किया है···"

"हां!" इंदु बोली—"अभी दिन ही कै हुए हैं?"

और फिर उसने एक तेज-सी नजर पेट पर डाली जिसने अभी बढ़ना भी नहीं शुरू किया था और फिर बाबू जी या कोई और देख रहा हो, उसने साड़ी का पल्लू उस पर खींच लिया और कुछ सोचने लगी। तभी एक चमक-सी उसके चेहरे पर आयी और वह बोली—"तुम्हारे ससुराल से शीरीनी आयेगी।"

"मेरी ससुराल? · · ओ हां।" मदन ने रास्ता पाते हुए कहा—"कितनी शर्म की बात है। अभी छह-आठ महीने शादी को हुए हैं और चला आया है"—और उसने इंदु के पेट की तरफ इशारा किया।

"चला आया है या तुम लाये हो?"

"तुम यह सब कसूर तुम्हारा है। कुछ औरतें होती ही ऐसी हैं ।"

"तुम्हें पसद नही ?"

"एकदम नही।"

"क्यो ?"

"चार दिन तो मजे ले लेते जिंदगी के।"

"क्या यह जिदगी का मजा नही ?" इदु ने दुख भरे लहजे मे कहा—"मर्द औरत शादी किस लिए करते है ? भगवान ने बिन मागे दे दिया ना ? पूछो उनसे जिनके नही होता। फिर वह क्या कुछ करती है ? पीरों, फकीरों के पास जाती है। समाधियो, मजारों पर चोटिया बाधती, शम और हया को तजकर, दरियाओं के किनारे नगी होकर सरकडे काटती शमशानों मे मसान जगाती "

"अच्छा-अच्छा।" मदन बोला—"तुम ने बखान ही शुरू कर दिया ' औलाद के लिए थोडी उम्र पडी थी ?"

"होगा तो," इदु ने मलामत के अदाज मे उगली उठाते हुए कहा—"तब तुम उसे हाथ भी मत लगाना। वह तुम्हारा नही मेरा होगा। तुम्हे तो उसकी जरूरत नही, पर उसके दादा को बहुत है। यह मै जानती हू ।"

और फिर परेशान, कुछ दुखी होकर इदु ने अपना मुह दोनो हाथो छिपा मे लिया। वह सोचती थी पेट मे इस नन्ही-सी जान को पालने के सिलसिले मे उस जान का होता-सोता थोडी बहुत हमदर्दी तो करेगा ही लेकिन मदन चुपचाप बैठा रहा। एक लफ्ज भी उसने मुह से न निकाला। इदु ने चेहरे पर से हाथ हटा कर मदन की तरफ देखा और होने वाली पहिलौटिन के खास अदाज मे बोली—"वह तो जो कुछ मै कह रही हू सब पीछे होगा पहले तो मै बचूगी नही मुझे बचपन ही से वहम है इस बात का "

मदन जैसे डर गया। यह 'खूबसूरत चीज' जो गर्भवती होने के बाद और भी खूबसूरत हो गयी है—मर जायगी ? उसने पीठ की तरफ से इदु को थाम लिया फिर खीच कर अपने बाजुओं मे ले आया और बोला—"तुझे कुछ न होगा इदु मै तो मौत के मुह से छीन के ले आऊगा तुझे" अब सावित्री नही सत्यवान की बारी है—"

मदन से लिपट कर इदु भूल ही गयी कि उसका अपना भी कोई दुख है

उसके बाद बाबू जी ने कुछ न लिखा। बेशक महारनपुर से एक सार्टर आया। जिसने सिर्फ इतना बताया कि बाबू जी को फिर से दौरे पड़ने लगे है। एक दौरे मे तो वह करीब-करीब चल ही बसे थे। मदन डर गया। इंदु रोने लगी। मार्टर के चले जाने के बाद हमेशा की तरह मदन ने आखें मूद ली और मन ही मन मे पढ़ने लगा—"ओम नमो भगवते" दूसरे ही रोज मदन ने बाप को चिट्ठी लिखी—"बाबूजी चले आओ बच्चे बहुत याद करते हैं और आपकी बहू भी—" लेकिन आखिर नौकरी थी। अपने बस की बात थोडे थी। धनीराम के खत के मुताबिक वह छुट्टी का बंदोबस्त कर रहे थे। उनके बारे में दिन-ब-दिन मदन का जुर्म का एहसास बढ़ने लगा। "अगर मैं इंदु को वही रहने देता तो मेरा क्या बिगड़ता।"

विजय दशमी से एक रात पहले मदन बेचैनी की हालत मे बीच वाले कमरे के बाहर बरामदे में टहल रहा था कि अंदर से बच्चे के रोने की आवाज आयी और वह चौंककर दरवाजे की तरफ लपका। बेगम दाया बाहर आयी और बोली—

"मुबारक हो बाबूजी लड़का हुआ है।"

"लडका ?" मदन ने कहा और फिर फिक्र के लहजे मे बोला—"बीवी कैसी है?"

बेगम बोली—"खैर महर है। अभी तक उसे लडकी ही बतायी है। जच्चा ज्यादा खुश हो जाये तो उसकी आंवल नहीं गिरती ना"

"ओ!" मदन ने बेवकूफो की तरह आखें झपकाते हुए कहा और फिर कमरे मे जाने के लिए आगे बढा। बेगम ने उसे वही रोक दिया और कहने लगी—"तुम्हारा अदर क्या काम ?" और फिर यकायक दरवाजा भेडकर अदर लपक गयी।

मदन की टागें अभी तक काप रही थी। इस वक्त खौफ से नही तसल्ली से या शायद इसलिए कि जब कोई इस दुनिया मे आता है तो आसपास के लोगों की यही हालत होती है। मदन ने सुन रखा था जब लड़का पैदा होता है तो घर के दर-ओ-दीवार कापने लगते हैं। मानो डर रहे हों कि बड़ा होकर हमें बेचेगा या रखेगा। मदन ने महसूस किया जैसे सचमुच ही दीवारें काप रही थीं। सौरी जापगी के लिए चकली भाभी तो न आयी थी क्योंकि उसका अपना बच्चा बहुत छोटा था। हा दरियाबाद वाली भाभी जरूर पहुंची थी जिसने पैदाइश के वक्त राम-राम, राम-राम की रट लगा दी थी और अब वही रट मद्दिम हो रही थी—

जिंदगी भर मदन को अपना आप इतना फजूल और बेकार न लगा था। इतने मे फिर दरवाजा खुला और फूफी निकली। बरामदे की बिजली की मद्धिम-सी रोशनी में उसका चेहरा भूत के चेहरे की तरह एकदम दूधिया सफेद नजर आ रहा था। मदन ने उसका रास्ता रोकते हुए कहा—

"इंदु ठीक है ना फूफी ?"

"ठीक है, ठीक है, ठीक है।" फूफी ने तीन-चार बार कहा और फिर अपना कांपता हुआ हाथ मदन के सिर पर रखकर उसे नीचा किया, चूमा और बाहर लपक गयी।

फूफी बरामदे के दरवाजे में से बाहर जाती हुई नज़र आ रही थी। वह बैठक में पहुंची जहां बाकी बच्चे सो रहे थे। फूफी ने एक-एक बच्चे के सिर पर प्यार से हाथ फेरा और फिर छत की तरफ आंखें उठाकर कुछ बोली और फिर निढाल होकर मुन्नी के पास लेट गयी। औंधी, उसके फड़कते हुए शानों से पता चल रहा था जैसे रो रही है मदन हैरान हुआ फूफी तो कई जचगियों से गुजर चुकी है फिर क्यों उसकी रूह तक कांप उठी है—?

फिर उधर के कमरे से हरमल की बू बाहर लपकी। धूएं का एक झोंका-सा आया जिसने मदन को घेर लिया। उसका सिर चकरा गया। जभी बेगम दाया कपड़े में कुछ लपेटे हुए बाहर निकली। कपड़े पर खून-ही-खून था जिसमें से कुछ कतरे निकलकर फर्श पर गिर गये। मदन के होश उड़ गये। उसे मालूम नहीं था कि वह कहां है। आंखें खुली थीं पर कुछ दिखायी न दे रहा था। बीच में इंदु की एक मरघली-सी आवाज आयी—"हा—य—" और फिर बच्चे की रोने की आवाज······

तीन-चार दिन में बहुत कुछ हुआ। मदन ने घर के एक तरफ गढ़ा खोदकर आंवल को दबाया। कुत्तों को अंदर आने से रोका। लेकिन उसे कुछ याद न था। उसे यों लगा जैसे हरमल की बू दिमाग में बस जाने के बाद आज ही उसे होश आया है। कमरे में वह अकेला ही था और इंदु—नंद और जसोदा—और दूसरी तरफ नंदलाल···इंदु ने बच्चे की तरफ देखा और टोह लेने के अंदाज में बोली—"बिलकुल तुम्हीं पर गया है···"

"होगा।" मदन ने एक उचटती नजर बच्चे पर डालते हुए कहा—"मैं तो कहता

हूं शुक्र है भगवान का। तुम बच गयी।"

"हां," इंदु बोली—,"मैं तो समझती थी…"

"शुभ-शुभ बोलो" मदन ने एकदम इंदु की बात काटते हुए कहा—"यहा तो जो कुछ हुआ है, मैं तो तुम्हारे पास न फटकूंगा" और मदन ने जबान दांतो तले दबा ली।

"तोबा करो," इंदु बोली।

मदन ने उसी दम कान अपने हाथों से पकड़ लिये और इंदु पतली आवाज में हंसने लगी।

बच्चा पैदा होने के बाद कई रोज तक इंदु की नाभी ठिकाने पर न आयी। वह घूम-घूम कर उस बच्चे को तलाश कर रही थी जो उससे परे बाहर की दुनिया में जाकर अपनी असली मां को भूल गया था।

अब सब कुछ ठीक था और इंदु शांति में इस दुनिया को देख रही थी। मालूम होता था उसने मदन ही के नहीं दुनिया भर के गुनाहगारों को माफ कर दिया है। और अब देवी बनकर दया और करूणा के प्रसाद बांट रही है। मदन ने इंदु के मुंह की तरफ देखा और सोचने लगा—इस सारे खून-खराबे के बाद कुछ दुबली होकर इंदु और भी अच्छी लगने लगी है। जभी यकायक इंदु ने दोनों हाथ अपनी छातियों पर रख लिए—

"क्या हुआ?" मदन ने पूछा।

"कुछ नहीं," इंदु थोड़ा उठने की कोशिश करके बोली—"उसे भूख लगी है।" और उसने बच्चे की तरफ इशारा किया।

"इसे—भूख?—" मदन ने पहले बच्चे की तरफ देखा और फिर इंदु की तरफ देखते हुए कहा—"तुम्हें कैसे पता चला?"

"देखते नहीं," इंदु नीचे की तरफ निगाह करते हुए बोली—"सब गीला हो गया है।"

मदन ने गौर से इंदु के ढीले-ढाले बगले की तरफ देखा। झर-झर दूध बह रहा था और एक खास किस्म की बू आ रही थी। फिर इंदु ने बच्चे की तरफ हाथ बढाते हुए कहा—

"इसे मुझे दे दो।"

मदन ने हाथ पंगोड़े की तरफ बढाया और उसी दम खींच लिया। फिर कुछ

हिम्मत से काम लेते हुए उसने बच्चे को यों उठाया जैसे वह मरा चूहा हो। आखिर उसने बच्चे को इंदु की गोद में दे दिया। इंदु मदन की तरफ देखते हुए बोली—"तुम जाओ बाहर।"

"क्यों? बाहर क्यों जाऊं?" मदन ने पूछा।

"जाओ ना..." इंदु ने कुछ मचलते कुछ शर्माते हुए कहा—"तुम्हारे सामने मैं दूध नहीं पिला सकूंगी।"

"अरे?" मदन हैरत से बोला—"मेरे सामने नहीं पिला सकोगी?" और फिर नासमझी के अंदाज में सिर को झटका दे बाहर की तरफ चल निकला। दरवाजे के आस पास पहुंच कर मुड़ते हुए उसने इंदु पर एक निगाह डाली—इतनी खूबसूरत इंदु आज तक न लगी थी।

बाबू धनीराम छुट्टी पर घर लौटे तो वह पहले से आधे दिखायी पड़ते थे। जब इंदु ने पोता उनकी गोद में दिया तो वह खिल उठे। उनके पेट के अंदर कोई फोड़ा निकल आया था जो चौबीस घंटे उन्हें सूली पर लटकाये रखता। अगर मुन्ना न होता तो बाबू जी की उससे दस गुना बुरी हालत होती।

कई इलाज किये गये। बाबूजी के आखिरी इलाज में डाक्टर अधन्नी के बराबर गोली पंद्रह बीस की गिनती में रोज खाने को दे। पहले ही दिन उन्हें इतना पसीना आया कि दिन में तीन-तीन, चार-चार कपड़े बदलने पड़े। हर बार मदन कपड़े उतार कर बाल्टी में निचोड़ता। सिर्फ पसीने ही से बाल्टी एक-चौथाई हो गयी थी। रात उन्हें मतली-सी होने लगी और उन्होंने पुकारा—

"बहू जरा दातन तो देना जायका बड़ा खराब हो रहा है।" बहू भागी हुई गयी और दातन ले आयी। बाबूजी उठ कर दातन चबा ही रहे थे कि एक उबकाई सी आयी साथ ही खून का परनाला सा आया। बेटे ने वापस सिरहाने की तरफ लिटाया तो उनकी पुतलियां फिर चुकी थीं और कोई ही दम में वह ऊपर आसमान की फुलवारी में पहुंच चुके थे जहां उन्होंने अपना फूल पहचान लिया था।

मुन्ने को पैदा हुए कुल बीस-पच्चीस रोज हुए थे। इंदु ने मुंह नोच-नोच कर, सिर और छाती पीट-पीट कर खुद को नीला कर लिया। मदन के सामने वही दृश्य था जो उस रोज उसने ख्वाब में अपने मरने पर देखा था। फर्क सिर्फ इतना

था कि इंदु ने चूडियां तोडने के बजाय उतार कर रख दी थी। सिर पर राख नहीं डाली थी। लेकिन जमीन पर से मिट्टी लग जाने और बालो के बिखर जाने से चेहरा भयानक हो गया था। 'लोगों मै लुट गयी' की जगह पर "लोगो हम लुट गये'—

घर-बार का कितना बोझ मदन पर आ पडा था इसका मदन को पूरी तरह से अदाजा न था। सुबह होने तक उसका दिल लपक कर मुह मे आ गया। वह शायद बच न पाता अगर वह घर के बाहर नाली के किनारे सील चढी मिट्टी पर औंधा लेट कर अपने दिल को ठिकाने पर न लाता। धरती मा ने छाती से अपने बच्चे को लगा लिया था। छोटे बच्चे कुदन, दुलारी मुन्नी, और पाशी यों चिल्ला रहे थे जैसे घौंसले पर शिकरे (बाज) के हमले पर चिडिया के बोट चोंचें उठा-उठाकर चीं-चीं करते है। उन्हे अगर कोई परो के नीचे समेटती थी तो इदु— नाली के किनारे पडे-पडे मदन ने सोचा अब तो यह दुनिया मेरे लिए खत्म हो गयी। क्या, मै जी सकूगा ? जिंदगी मे कभी हस भी सकूगा ? वह उठा और उठ कर घर के अदर चला आया।

सीढियों के नीचे गुसलखाना था जिसमे घुस कर अदर से किवाड़ बद करते हुए मदन ने एक बार फिर इस सवाल को दोहराया। मै कभी हस भी सकूगा—? —और वह खिलखिला कर हस रहा था, हालाकि उसके बाप की लाश अभी पास ही बैठक मे पड़ी थी।

बाप को आग के हवाले करने से पहले मदन अर्थी पर पडे हुए जिस्म के सामने दंडवत के अंदाज मे लेट गया। यह उसका अपने जन्मदाता को आखिरी प्रणाम था तिस पर भी वह रो न रहा था। उसकी यह हालत देखकर मातम मे शरीक होने वाले रिश्तेदार, मोहल्ले वाले सन्न से रह गये।

फिर हिंदू रिवाज के मुताबिक सब से बडा होने की हैसियत से मदन को चिता जलानी पडी। जलती हुई खोपडी मे कपाल-क्रिया की लाठी मारनी पडी। औरतें बाहर ही श्मशान के कूएं पर नहा कर घर लौट चुकी थी। जब मदन घर पर पहुंचा तो वह काप रहा था। धरती मा ने थोडी देर के लिए जो ताकत अपने बेटे को दी थी रात के घिर आने पर फिर से विक्षिप्तता मे ढल गयी।...उसे कोई सहारा चाहिए था। किसी ऐसी भावना का सहारा जो मौत मे भी बडी हो। उस

समय धरती मा की बेटी जनक दुलारी इंदु ने किसी घड़े में से पैदा होकर उस राम को अपनी बाहों में ले लिया। उस रात अगर इंदु अपना आपा यों मदन पर न वार देती तो इतना बड़ा दुख मदन को न सूझता।

दस ही महीने के अंदर-अंदर इंदु का दूसरा बच्चा चला आया। बीवी की इस नर्क की आग में ढकेल कर मदन खुद अपना दुख भूल गया था। कभी-कभी उसे *ख्याल आता अगर मैं शादी के बाद बाबू जी के पास गयी हुई इंदु को न बुला* लेता तो शायद वह इतनी जल्दी न चल देते। लेकिन फिर वह बाप की मौत से पैदा होने वाले नुकसानों को पूरा करने में लग जाता। कारोबार जो पहले लापरवाही की वजह से बंद हो गया था—मजबूरन चल निकला।

उन दिनों बड़े बच्चे को मदन के पास छोड़ कर छोटे को छाती से लगाये इंदु मैके चली गयी थी। पीछे मुन्ना तरह-तरह की जिद करता जो कभी मानी जाती और कभी नहीं भी। मैके से इंदु का खत आया—"मुझे यहां अपने बेटे के रोने की आवाज आ रही है, उसे कोई मारता तो नहीं•••? मदन को बड़ी हैरत हुई, एक जाहिल अनपढ़ औरत• ऐसी बातें कैसे लिख सकती है? फिर उसने अपने आप से पूछा—"क्या यह भी कोई रटा हुआ फिकरा है।"

साल गुजर गये। पैसे कभी इतने न आये थे कि उनसे कोई ऐश हो सके। लेकिन गुजारे के मुताबिक आमदनी जरूर हो जाती थी। दिक्कत उस वक्त हुई जब कोई बड़ा खर्च सामने आ जाता। कुंदन का दाखिला देना है, दुलारी मुन्नी का शगुन भिजवाना है। उस वक्त मदन मुंह लटका कर बैठ जाता और फिर इंदु एक तरफ से आती मुस्कराती हुई और कहती—"क्यों दुखी हो रहे हो?" मदन उसकी तरफ उम्मीद भरी नजरों से देखते हुए कहता—"दुखी न होऊं? कुंदन का बी ए का दाखला देना है मुन्नी "इंदु फिर हंसती, कहती "चलो मेरे साथ"—और मदन भेड़ के बच्चे की तरह इंदु के पीछे चल देता। इंदु चंदन वाले संदूक के पास पहुंचती जिसे किसी को मदन समेत हाथ लगाने की इजाजत न थी। कभी-कभी इस बात पर खफा होकर मदन कहता—"मरोगी तो उसे भी छाती पर डाल कर ले जाना," और इंदु कहती—"हां ले जाऊंगी।" फिर इंदु

वहा से जरूरत की रकम निकाल कर सामने रख देती ।

"यह कहा से आ गये ?"

"कही से भी आये · तुम्हे आम खाने से मतलब है कि ।"

"फिर भी ?"

"तुम जाओ अपना काम चलाओ"

और जब मदन ज्यादा जिद करता तो इदु कहती—"मैने एक सेठ दोस्त बनाया है न···" और फिर हसने लगती। झूठ जानते हुए भी मदन को यह मजाक अच्छा न लगता। फिर इदु कहती—"मै चोर लुटेरा हूं" तुम नही जानते, दानी लुटेरा—जो एक हाथ से लूटता है और दूसरे हाथ से गरीब-गुरबा को दे देता है···" उसी तरह मुन्नी की शादी हुई जिस पर ऐसे ही लूट के जेवर बिके। कर्जा चढा और फिर उतर भी गया···

ऐसे ही कुदन भी ब्याहा गया। इन शादियो मे इदु ही हथभरी करती थी और मा की जगह खडी हो जाती। आसमान से बाबूजी और मा देखा करते और फूल बरसाते जो किसी को नजर न आते। फिर ऐसा हुआ ऊपर मा जी और बाबू जी मे झगडा चल गया। मा ने बाबू जी से कहा—"तुम बहू की पक्की खा आये हो, उसका मुख भी देखा है पर मैं नसीबो जली ने कुछ भी नही देखा"—और यह झगड़ा विष्णु और शिव तक पहुंचा। उन्होंने मा के हक मे फैसला दिया—और यो मा मात लोक (मत्युलोक) मे आकर बहू की कोख मे पडी—और इदु के यहा एक बेटी पैदा हुई।···

फिर इदु ऐसी देवी भी न थी। जब कोई वसूल की बात तो होती ननद देवर तो क्या खुद मदन से भिड जाती—मदन सत्यनिष्ठा की इस पुतली को खफा होकर हरीश चद की बेटी कहा करता था। चूकि इदु की बातो मे उलझाव होने के बावजूद सचाई और धर्म कायम रहते थे। इसलिए मदन और कुनबे के बाकी सब लोगो की आखें इदु के सामने नीची ही रहती थी। झगड़ा कितना भी बढ जाये, मदन अपने पति होने के गुमान मे कितना भी इदु की बात को रद्द कर दे, लेकिन आखिर सभी सिर झुकाए हुए इदु ही की शरण मे आते थे और उसी से क्षमा मागते थे।

नयी भाभी आयी। कहने को वह भी बीवी थी लेकिन इदु एक औरत थी जिसे बीवी कहते हैं। उसकी उलट छोटी भाभी रानी एक बीवी थी जिसे औरत कहते

हैं। रानी के कारण भाईयों में झगड़ा हुआ और जे पी चाचा के माध्यम से जायदाद तकसीम हुई जिस में मां-बाप की जायदाद तो एक तरफ, इन्दु की अपनी बनायी हुई चीजें भी तकसीम की मार में आ गयीं और इन्दु कलेजा मसोसकर रह गयी।

जहां सब-कुछ मिल जाने के बाद और अलग होकर भी कुन्दन और रानी ठीक से नहीं बस सके थे वहां इन्दु का अपना घर कुछ दिनों में ही जगमग-जगमग करने लगा।

बच्ची की पैदाइश के बाद इन्दु का स्वास्थ्य वह न रहा। बच्ची हर वक्त इन्दु की छातियों से चिपटी रहती थी। जहां सभी गोश्त के उस लोथड़े पर थू-थू करते थे वहां एक इन्दु थी जो उसे कलेजे से लगाये फिरती लेकिन कभी खुद भी परेशान हो उठती और बच्ची को सामने झिलगे में फेंकते हुए वह उठती—"तू मुझे जीने भी देगी—मां ?"

और बच्ची चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगती।

मदन इन्दु से कटने लगा। शादी से लेकर इस वक्त तक उसे वह औरत न मिली थी जिसकी वह तलाश कर रहा था। गंदा बिरोजा बिकने लगा और मदन ने बहुत-सा रुपया इन्दु की जानकारी के बिना बाहर ही बाहर खर्च करना शुरू कर दिया। बाबू जी के चले जाने के बाद कोई पूछने वाला भी तो न था। पूरी आजादी थी।

पड़ोसी सिब्ते की भैंस फिर मदन के मुंह के पास फुकारने लगी, बल्कि बार-बार फुकारने लगी। शादी की रात वाली भैंस तो बिक चुकी थी लेकिन उसका मालिक जिंदा था। मदन उसके साथ ऐसी जगहों पर जाने लगा जहां रोशनी और साये अजीब बेकायदा-सी शक्लें बनाते है। नुक्कड़ पर कभी अंधेरे की तिकोन बनती है कि ऊपर झट से रोशनी की एक चौकोर आकर उसे काट देती है। कोई तस्वीर पूरी नहीं बनती। मालूम होता बगल से एक पाजामा निकला और आसमान की तरफ उड़ गया। किसी कोट ने देखने वाले का मुंह पूरी तरह से ढांप लिया और कोई सांस के लिए तड़पने लगा जभी रोशनी की चौकोर एक चौखटा-सा बन गयी और उसमें एक सूरत आ कर खड़ी हो गयी। देखने वाले ने हाथ बढ़ाया तो वह आरपार चला गया और वहां कुछ भी न था। पीछे कोई कुत्ता रोने लगा।

ऊपर तबले ने उसकी आवाज डुबो दी…

मदन को उसकी कल्पना की आकृति मिल गयी लेकिन हर जगह ऐसा मालूम हो रहा था जैसे आर्टिस्ट ने एक गलत रेखा लग गयी है या हंसी की आवाज जरूरत से ज्यादा ऊंची थी और मदन बेदाग शिल्पगत संतुलित हंसी की तलाश मे खो गया।

सिब्ते ने उस वक्त अपनी बीवी से बात की जब उसकी बेगम ने मदन को आदर्श गौहर की हैसियत से सिब्ते के सामने पेश किया। पेश ही नही किया बल्कि मुह पर मारा। उसको उठाकर सिब्ते ने बेगम के मुह पर दे मारा। मालूम होता था कि किसी खूनी तरबूज का गूदा है जिसके रग-ओ-रेशे बेगम की नाक, उसकी आखो और कानो पर लगे हुए है। करोड-करोड गाली बकती हुई बेगम ने यादो की टोकरी मे से गूदा और बीज उठाये और इंदु के साफ-सुथरे आगन मे बिखेर दिये।

एक इदु के बजाय दो इंदु हो गयी। एक तो इंदु खुद थी और दूसरी एक कापती हुई रेखा जो इंदु के पूरे जिस्म को घेरे हुए थी और जो नजर नही आ रही थी ?

मदन कही जाता भी तो घर से होकर · नहा, धो, अच्छे कपडे पहन, मघई की एक जोडी जिसमे खुशबूदार कवाम लगा हुआ, मुह मे रखकर · लेकिन उस दिन जो मदन घर आया तो इदु की शकल ही दूसरी थी। उसने चेहरे पर पाउडर थोप रखा था। गालो पर रूज लगा रखी थी। लिपस्टिक न होने पर होंठ माथे की बिंदी से रंग लिये थे और बाल कुछ इस तरीके से बनाये थे कि मदन की नजरे उन मे उलझ कर रह गयी।

"क्या बात है आज ?" मदन ने हैरान होकर पूछा।

"कुछ नही।" इंदु ने मदन से नजरे बचाते हुए कहा—"आज फुर्सत मिली है।"

शादी के पंद्रह बरस गुजर जाने के बाद इदु को आज फुर्सत मिली थी और वह भी उस वक्त जबकि चेहरे पर छाईया चली आयी थी। नाक पर एक स्याह-सी काठी बन गयी थी और ब्लाउज के नीचे नगे पेट के पास कमर पर चरबी की दो-तीन तहे दिखायी देने लगी थी। आज इदु ने ऐसा बंदोबस्त किया था कि ऐबो मे से एक भी चीज नजर न आती थी। *यो बनी-ठनी, कसी-कसाई* वह बेहद हसीन लग रही थी—'यह नही हो सकता।'—मदन ने सोचा और उसे एक धचका-सा

लगा। उसने फिर एक बार मुड़कर इंदु की तरफ देखा—जैसे घोड़ों के व्यापारी किसी नामी घोड़ी की तरफ देखते हैं। वहां घोड़ी भी थी और लाल लगाम भी जहां जो गहने रख लिये थे ससुराल की आंखों को न दिख सके इंदु सचमुच खूबसूरत थी। आज भी पंद्रह साल के बाद फूलों, फ्लोरा, मिसेज़ राबर्ट और उनकी बहनें उसके सामने पानी भरती थीं फिर मदन को रहम आने लगा और डर!

आसमान पर कोई खास बादल भी न थे लेकिन पानी पड़ना शुरू हो गया। घर की गंगा बाढ़ पर थी और उसका पानी किनारों से निकल-निकल कर पूरी तराई और उसके पास बसने वाले गांवों और कस्बों को अपनी लपेट में ले रहा था। ऐसा मालूम होता था इसी रफ्तार से पानी बहता रहा तो उसमें कैलाश पर्वत भी डूब जायेगा। इधर बच्ची रोने लगी। ऐसा रोना जो वह आज तक न रोई थी।

मदन ने उसकी आवाज सुनकर आंखें बंद कर लीं, खोलीं तो बच्ची सामने खड़ी थी—*जवान औरत बनकर। नहीं नहीं वह इंदु थी। अपनी मां की बेटी,* अपनी बेटी की मां जो अपनी आंखों के दुबारे से मुस्करायी और होंठों के कोने से देखने लगी!

इसी कमरे में जहां हल्दी की धूनी ने मदन को चकरा दिया था आज रस की खुशबू ने बौखला दिया। हल्की बारिश तेज बारिश से ज्यादा खतरनाक होती है। इसलिए बाहर का पानी ऊपर किसी कड़ी में से टपकता इंदु और मदन के बीच टपकने लगा लेकिन मदन तो शराबी हो रहा था। इस नशे में उसकी आंखें सिमटने लगीं और सांसें तेज होकर इंसान की सांसें न रहीं।

"इंदु" मदन ने कहा और उसकी आवाज शादी की रात वाली आवाज से दो सुर ऊपर थी और इंदु ने परे देखते हुए कहा—" जी " और उसकी आवाज दो सुर नीचे थी फिर आज चांदनी के बजाय अमावस थी

इससे पहले कि मदन इंदु की तरफ हाथ बढ़ाता इंदु खुद ही मदन से लिपट गयी। फिर मदन ने हाथ से इंदु की ठोड़ी ऊपर उठायी और देखने लगा, उसने क्या खोया, क्या पाया है ? इंदु ने एक नजर मदन के स्याह होते हुए चेहरे की तरफ फेंकी और फिर आंखें बंद कर लीं…

"यह क्या ?" मदन ने चौंकते हुए कहा—"तुम्हारी आंखें सूजी हुई हैं।"

"यों ही।" इंदु ने कहा और बच्ची की तरफ इशारा करते हुए बोली—"रात-भर जगाया है इस चुड़ैल मैया ने···"

बच्ची अब तक खामोश हो चुकी थी। मानो दम साधे देख रही थी अब क्या होने वाला है ? आसमान से पानी पड़ना बंद हो गया था। मदन ने फिर गौर से इंदु की आंखों की तरफ देखते हुए कहा—"हां · मगर ये आंसू ?"

"खुशी के हैं।" इंदु ने जवाब दिया—"आज की रात मेरी है" और फिर एक अजीब-सी हंसी हंसती हुई वह मदन से चिमट गयी। एक आनंद के एहसास से मदन ने कहा—"आज बरसों के बाद मेरे मन की मुराद पूरी हुई है इंदु ! मैंने हमेशा चाहा था—"

"लेकिन तुमने कहा नहीं।" इंदु बोली—"याद है शादी की रात मैंने तुमसे कुछ मांगा था ?"

"हां"—मदन बोला—"अपने दुख मुझे दे दो।"

"तुमने तो कुछ नहीं मांगा मुझ से।"

"मैंने !" मदन ने हैरान होते हुए कहा—"मैं क्या मांगता ? मैं तो जो कुछ मांग सकता था वह सब तुमने दे दिया। मेरे अजीजों (कुटुंब) से प्यार—उनकी पढ़ायी-लिखायी, ब्याह-शादी—ये प्यारे-प्यारे बच्चे—यह सब कुछ तो तुमने दे दिया।"

"मैं भी यही समझती थी।" इंदु बोली—"लेकिन अब जाकर पता चला, ऐसा नहीं।"

"क्या मतलब ?"

"कुछ नहीं।" फिर इंदु ने रुक कर कहा—"मैंने भी एक चीज रख ली।"

"क्या चीज रख ली ?"

इंदु कुछ देर चुप रही और फिर अपना मुंह परे करते हुए बोली—"अपनी लाज···अपनी खुशी · उस वक्त तुम भी कह देते···अपने सुख मुझे दे दो···तो मैं ··" और इंदु का गला रुंध गया !

और कुछ देर बाद वह बोली—"अब तो मेरे पास कुछ नहीं रहा।"

मदन के हाथों की पकड़ ढीली पड़ गयी। वह जमीन में गड़ गया—यह अनपढ़ औरत—कोई रटा हुआ फिकरा—?

नही तो···यह तो अभी सामने ही जिंदगी की भट्टी से निकला है। अभी तो उस पर बराबर हथौड़े पड़ रहे हैं और आतशी बुरादा चारों तरफ उड़ रहा है ··

कुछ देर के बाद मदन के होश ठिकाने आये और वह बोला —"मैं समझ गया इंदु।"

फिर रोते हुए मदन और इंदु एक-दूसरे से लिपट गये। इंदु ने मदन का हाथ पकड़ा और उसे ऐसी दुनिया मे ले गयी जहा इंसान मर कर ही पहुंच सकता है।

लाजवंती

'हय लाईयाँ कुम्लान नो· ·लाजवंती दे बूटे'

(यह छुईमुई के पौदे हैं री, हाथ भी लगाओ तो कुम्हला जाते हैं।)

बटवारा हुआ और अनगिनित घायल लोगों ने उठ कर अपने बदन पर से खून पोंछ डाला और फिर सब मिलकर उनकी तरफ ध्यान देने लग गये जिनके बदन सही-सलामत थे ··लेकिन दिल घायल !

गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले 'फिर बसाओ' कमेटियां बन गयी थीं और शुरू-शुरू में बड़ी कोशिश के साथ 'कारोबार में बसाओ', 'जमीन पर बसाओ' और 'घरों में बसाओ' प्रोग्राम शुरू कर दिये गये थे। लेकिन एक प्रोग्राम ऐसा था जिसकी तरफ किसी ने ध्यान नहीं दिया था। वह प्रोग्राम भगाई हुई औरतों के सिलसिले में था जिसका स्लोगन था 'दिल में बसाओ' और इस प्रोग्राम का नारायण बावा के मंदिर और उसके आसपास बसने वाले पुरानी परंपरा वाले लोगों की तरफ से जोर-शोर से विरोध चल रहा था।

इस प्रोग्राम को हरकत में लाने के लिए मंदिर के पास मोहल्ला 'मुल्ला शकूर' में एक कमेटी कायम हो गयी और ग्यारह वोटों के बहुमत से सुंदरलाल बाबू को उसका सेक्रेटरी चुन लिया गया। वकील साहब, सदर, चौकी कलां का मोहर्रिर और मोहल्ले के दूसरे मातबर लोगों का ख्याल था कि सुंदरलाल से ज्यादा जान देकर इस काम को कोई और न कर सकेगा। शायद इसलिए कि सुंदरलाल की अपनी बीवी बहकाकर भगा ली गयी थी और उसका नाम था लाजो – लाजवंती।

इस तरह प्रभात-फेरी निकालते हुए जब सुंदरलाल बाबू और उनका साथी रिसालू और नेकी राम वगैरह मिलकर गाते—'हथ लाईयां कुम्लान नी लाजवंती दे बूटे'—तो सुंदरलाल की आवाज एकदम बंद हो जाती और वह खामोशी के साथ चलते-चलते लाजवंती के बारे में सोचता—'जाने कहां होगी, किस हालत में होगी, हमारे बारे में क्या सोच रही होगी, वह कभी आयेगी भी या नहीं ?'

और पथरीली फर्श पर चलते-चलते उसके कदम लड़खड़ाने लगे।'

और अब तो यहां तक नौबत आ गयी थी कि उसने लाजवन्ती के बारे में सोचना ही छोड़ दिया था। उसका गम अब दुनिया का गम हो चुका था। उसने अपने दुख से बचने के लिए लोक सेवा में अपने को डुबो दिया था। उसी बावजूद दूसरे साथियों की आवाज में आवाज मिलाते हुए उसे यह ख्याल जरूर आता—'इन्सानी दिल कितना नाजुक होता है। जरा-सी बात पर उसे ठेस लग जाती है। वह लाजवन्ती के पौधे की तरह है जिसकी तरफ हाथ भी बढ़ाओ तो वह कुम्हला जाता है।' लेकिन उसने अपनी लाजवन्ती के साथ बदसलूकी करने में कोई कसर न उठा रखी थी। वह उसे जगह-बे-जगह उठने-बैठने, खाने की तरफ लापरवाही बरतने और ऐसी ही मामूली-मामूली बातों पर पीट दिया करता था।

और लाजो एक पतली शहतूत की डाली की तरह नाजुक-सी देहाती लड़की थी। ज्यादा धूप देखने की वजह से उसका रंग सांवला हो चुका था। तबीयत में एक अजीब तरह की बेचैनी थी। उसकी लाचारी ओस की उस बूंद की तरह थी जो पारा घास के बड़े पत्ते पर कभी इधर, कभी उधर लुढ़कती रहती है। उसका दुबलापन उसके स्वास्थ्य खराब होने की दलील न थी। एक स्वस्थ होने की निशानी थी। जिसे देख कर भारी-भरकम सुंदरलाल घबराया लेकिन जब उसने देखा कि लाजो हर किस्म का बोझ, हर किस्म का दुख यहां तक कि मार-पीट तक सह सकती है तो वह अपनी बदसलूकी को धीरे-धीरे बढ़ाता गया और फिर उसने हदों का ख्याल ही न किया जहां पहुंच जाने पर किसी भी इन्सान का सब्र टूट सकता है। उन हदों को धुंधला देने में खुद लाजवंती भी मदद करने वाली साबित हुई थी। चूंकि वह देर तक उदास न बैठ सकती थी इसलिए बड़ी-बड़ी लड़ाई के बाद भी सुंदरलाल के सिर्फ एक बार मुस्करा देने पर वह अपनी हंसी न रोक सकती और लपककर उसके पास चली आती और गले में बांहें डालते हुए कह उठती—"फिर मारा तो मैं तुमसे न बोलूंगी..." साफ पता चलता था वह एकदम सारी मार-पीट भूल चुकी है। गांव की दूसरी लड़कियों की तरह वह भी जानती थी कि मर्द ऐसा ही सलूक किया करते हैं बल्कि औरतों में कोई भी बगावत करती तो लड़कियां खुद ही नाक पर उंगली रखकर कहतीं—"ले वह भी कोई मर्द है भला...औरत जिसके काबू में नहीं आती..." और वह मार-पीट

उनके गीतों में चली गयी थी। खुद लाजो गाया करती थी—'मैं शहर के लड़के से शादी न करूंगी, वह बूट पहनता है और मेरी कमर पतली है'। लेकिन पहली ही फुर्सत में लाजो ने शहर ही के एक लड़के से लौ लगा ली और उसका नाम था सुंदरलाल जो एक बारात के साथ लाजवंती के गांव चला आया था और जिसने दूल्हा के कान में सिर्फ इतना-सा कहा था—"तेरी साली तो बड़ी नमकीन है यार, बीवी भी चटपटी होगी—" लाजवंती ने सुंदरलाल की उस बात को सुन लिया था। मगर वह यह भूल ही गयी कि सुंदरलाल कितने बड़े-बड़े और भद्दे बूट पहने हुए है और उसकी अपनी कमर कितनी पतली है!

और प्रभात-फेरी के समय ऐसी ही बातें सुंदरलाल को याद आती और वह यही सोचता—'एक बार सिर्फ एक बार लाजो मिल जाय तो मैं उसे सचमुच ही दिल में बसा लूं और लोगों को बता दूं—इन बेचारी औरतों के भाग जाने में इनका कोई कसूर नहीं। दंगा के पागलपन का शिकार हो जाने में इनकी कोई गलती नहीं। वह समाज जो इन मासूम और बेकसूर औरतों को स्वीकार नहीं करता, उन्हें अपना नहीं लेता—एक सड़ा-गला समाज है और उसे खत्म कर देना चाहिए।' वह उन औरतों को घरों में आबाद करने के उपदेश दिया करता और उन्हें ऐसा दर्जा देने की प्रेरणा देता जो घर में किसी भी औरत, किसी भी मां, बेटी, बहन या बीवी को दिया जाता है। फिर वह कहता—"उन्हें इशारों और संकेतों से भी ऐसी बातों की याद नहीं दिलानी चाहिए जो उनके साथ हुईं—क्योंकि उनके दिल जख्मी हैं, वह नाजुक हैं—छुईमुई की तरह—हाथ भी लगाओ तो कुम्हला जाएगी।"

'दिल में बसाओ' प्रोग्राम को व्यावहारिक रूप देने के लिए मोहल्ला मल्ला शकूर की इस कमेटी ने कई प्रभातफेरियां निकालीं। सुबह चार-पांच बजे का वक्त उनके लिए सबसे ज्यादा ठीक होता था। न लोगों का शोर, न ट्रैफिक की उलझन। रात भर चौकीदारी करने वाले कुत्ते तक बुझे हुए तंदूरों में सिर देकर पड़े होते थे। अपने-अपने बिस्तरों में दुबके हुए लोग प्रभात-फेरी वालों की आवाज सुनकर सिर्फ इतना ही कहते—"ओ वही मंडली है"—और फिर कभी सब्र और कभी चिढ़ कर वह बाबू सुंदरलाल का प्रोपेगेंडा सुना करते। वह औरतें जो बड़े सुरक्षित रूप में इस पार पहुंच गयी थीं, गोभी के फूलों की तरह फैली

पड़ी रहती और उनके पति उनके पहलू में ठूंठों की तरह अकड़े पड़े-पड़े प्रभात-फेरी के शोर पर टीका करते हुए मुंह में कुछ गुनगुनाते चले जाते। या कहीं कोई बच्चा थोड़ी देर के लिए आंखें खोलता और 'दिल में बसाओ' के फरियादी और दुख भरे प्रोपेगंडे को सिर्फ एक गाना समझकर सो जाता!

लेकिन सुबह के समय कान में पड़ा हुआ शब्द बेकार नहीं जाता। वह सारा दिन तकरार के साथ दिमाग में चक्कर लगाता रहता है और बाज वक्त तो इंसान उसके माने को भी नहीं समझता पर गुनगुनाता चला जाता है। उसी आवाज के घर कर जाने के बदौलत ही था कि उन्हीं दिनों जबकि मिस मृदुला साराभाई हिन्द और पाकिस्तान के बीच भगायी हुई औरतें तबादले में लायीं तो मोहल्ला मुल्ला शकूर के कुछ आदमी उन्हें फिर से बसाने के लिए तैयार हो गये। उनके वारिस शहर से बाहर चौकी कलां पर उन्हें मिलने के लिए गये। भगायी हुई औरतें और उनके मिलने वाले कुछ देर एक-दूसरे को देखते रहे और फिर सिर झुकाये अपने-अपने बरबाद घरों को फिर से आबाद करने के काम पर चल दिये। रिसालू और नेकीराम और सुन्दरलाल बाबू कभी 'महेन्द्रसिंह जिंदाबाद', कभी 'सोहनलाल जिंदाबाद' के नारे लगाते और वह नारे लगाते रहे यहां तक कि उनके गले सूख गये!

लेकिन भगायी हुई औरतों में ऐसी भी थीं जिनके शौहरों, जिनके मां बाप, बहन और भाइयों ने उन्हें पहचानने से इन्कार कर दिया था। आखिर वह मर क्यों न गयीं? अपनी पवित्रता और इज्जत को बचाने के लिए उन्होंने जहर क्यों न खा लिया? कुएं में छलांग क्यों न लगा दी? वह बुजदिल थीं जो इस तरह जिन्दगी से चिपटी हुई थीं। सैकड़ों-हजारों औरतों ने अपनी इज्जत लुट जाने से पहले अपनी जान दे दी। लेकिन उन्हें क्या पता कि वह जिंदा रह कर किस बहादुरी से काम ले रही हैं। कैसे पथराई हुई आंखों से मौत को घूर रही हैं। ऐसी दुनिया में जहां उनके शौहर तक उन्हें नहीं पहचानते। फिर उनमें से कोई जी-ही-जी में अपना नाम दोहराती — सोहागवती, सोहाग वाली — और अपने भाई को उस भीड़ में देखकर आखिरी बार इतना कहती—"तू भी मुझे नहीं पहचानता बिहारी? मैंने तुझे गोदी में खिलाया था रे — " और बिहारी चिल्ला देना चाहता। फिर वह मां-बाप की तरफ देखता और मां-बाप अपने जिगर पर हाथ रखकर नारायण

बाबा की तरफ देखते और निहायत बेबसी की हालत में नारायण बाबा आसमान की तरफ देखता जो दरअसल कोई हकीकत नही रखता और जो सिर्फ हमारी नजर का धोखा है, जो सिर्फ एक हद है जिसके पार हमारी निगाहे काम नही करती।

लेकिन फौजी ट्रक मे साराभाई तबादले मे जो औरतें लायी उनमे लाजो न थी। सुदरलाल ने उम्मीद और भय से आखिरी लड़की को ट्रक से नीचे उतरते देखा और फिर उमने वडी खामोशी और बडे गुमान से अपनी कमेटी के कामो को दुगना कर दिया। अब वह सिर्फ सुबह के समय ही प्रभात-फेरी के लिए न निकलते थे बल्कि शाम को भी जुलूस निकालने लगे और कभी-कभी एक-आध छोटा-मोटा जलसा भी करने लगे। जिसमे कमेटी का बूढा सदर कालका प्रसाद सूफी खेकारों से मिली-जुली एक तकरीर कर दिया करता और रिसालू एक पीकदान लिये ड्यूटी पर हमेशा मौजूद रहता। लाउड-स्पीकर से अजीब तरह की आवाजें आती फिर कही नेकीराम मोर्हरिर कुछ कहने के लिए उठते लेकिन वह जितनी भी बातें कहते और जितने भी शास्त्रो और पुराणो का हवाला देते उतना हो अपने मकमद के खिलाफ बाते करते और यों मैदान हाथ से जाते देखकर सुदरलाल बाबू उठता लेकिन वह दो वाक्यो के अलावा कुछ भी न कह पाता। उसका गला रुक जाता। उसकी आखो से आसू बहने लगते और रोआसे होने के कारण वह तकरीर न कर पाता। आखिर बैठ जाता लेकिन जमा हुए लोगो पर एक अजीब तरह की खामोशी छा जाती और सुदरलाल बाबू की उन दो बातो का असर जोकि उसके दिल की गहराईयों से चली आती वकील कालका प्रसाद सूफी के सारे उपदेशात्मक तेज जबानी पर भारी होता लेकिन लोग वही रो देते, अपनी भावनाओं को सन्तोष दे लेते और फिर खाली-खाली दिमाग से घर लौट जाते!

एक रोज कमेटी वाले साझ के समय भी प्रचार करने चले आये और होते-होते पुराने ख्याल वालो के गढ मे पहुंच गये। मदिर के बाहर पीपल के एक पेड के चारो ओर सिमेंट के थडे पर कई श्रद्धालु बैठे थे और रामायण की कथा हो रही थी। नारायण बाबा रामायण का वह किस्सा सुन रहे थे जहा एक धोबी ने अपनी धोबिन को घर से निकाल दिया था और उससे कह दिया—"मैं राजा रामचंद्र नही जो इतने साल रावण के साथ रह आने पर भी सीता को बसा लेगा और रामचद्र ने महासतवती

सीता को घर से निकाल दिया। ऐसी हालत में जब वह गर्भवती थी"—"क्या इससे बढ़ कर भी राम-राज का कोई सबूत मिल सकता है···?" नारायण बाबा ने कहा—"यह है राम-राज जिसमें एक धोबी की बात को भी इतनी ही कद्र की निगाह से देखा जाता है "

कमेटी या जुलूस मंदिर के पास रुक चुका था और लोग रामायण की कथा और श्लोक का वर्णन सुनने के लिए ठहर चुके थे। सुंदर आखिरी वाक्य सुनते हुए वह उठा—

"हमें ऐसा राम-राज नहीं चाहिए बाबा।"

"चुप रहो जी, तुम कौन होते हो?" "खामोश"—भीड़ से आवाजें आयीं और सुंदरलाल ने बढ़कर कहा—"मुझे बोलने से कोई नहीं रोक सकता "

फिर मिली-जुली आवाजें आयीं—"खामोश"—"हम नहीं बोलने देंगे।"—और एक कोने में से यह भी आवाज आयी—"मार देंगे!"

नारायण बाबा ने बड़ी मीठी आवाज में कहा—"तुम शास्त्रों की मान-मर्यादा नहीं समझ सकते सुंदरलाल।"

सुंदरलाल ने कहा—"मैं एक बात तो समझता हूं बाबा—राम-राज में धोबी की आवाज तो सुनी जाती है लेकिन सुंदरलाल की नहीं।"

उन्हीं लोगों ने जो अभी मारने पर तुले थे अपने नीचे से पीपल की गूलरें हटा दीं और फिर से बैठते हुए बोल उठे—"सुनो, सुनो, सुनो।"

रिसालू और नेकीराम बाबू ने सुंदरलाल को ठोका दिया और सुंदरलाल बोले—"श्री राम नेता थे हमारे, पर यह क्या बात है बाबाजी कि उन्होंने धोबी की बात को सत्य समझ लिया मगर इतनी बड़ी महारानी के सत्य पर विश्वास न कर पाये?"

नारायण बाबा ने अपनी दाढ़ी की खिचड़ी पकाते हुए कहा—"इसलिए कि सीता उनकी अपनी पत्नी थी। सुंदरलाल तुम इस बात की महानता को नहीं जानते · "

"हां बाबा।" सुंदरलाल बाबू ने कहा—"इस संसार में बहुत-सी बातें हैं जो मेरी समझ में नहीं आतीं·· पर मैं सच्चा राम-राज उसे समझता हूं जिसमें इंसान अपने आप पर भी जुल्म नहीं कर सकता · अपने आप से बेइंसाफी करना उतना

ही बड़ा पाप है जितना किसी दूसरे के साथ बेइसाफी करना ··· आज भी भगवान राम ने सीता को घर से निकाल दिया है इसलिए कि वह रावण के पास रह आयी है ·· इस में क्या कसूर था सीता का ? क्या वह भी हमारी माओं, बहुत-सी बहनों की तरह एक छल और कपट की शिकार न थी ? इसमें सीता के सत्य और असत्य की बात है या राक्षस रावण के वहशीपन की जिसके दस सिर इसान के थे और सब से बड़ा सिर गधे का ?"

"आज हमारी निर्दोष सीता घर से निकाल दी गयी है · सीता · लाजवंती "

और सुदरलाल बाबू ने रोना शुरू कर दिया। रिसालू और नेकीराम ने तमाम वह सुर्ख झडे उठा लिये जिन पर आज ही स्कूल के छोकरों ने बड़ी सफाई से नारे काट कर चिपका दिये थे और फिर वह सब 'सुदरलाल बाबू जिंदाबाद' के नारे लगाते हुए चल दिये। जुलूस मे से एक ने कहा—'महामती सीता जिंदाबाद' ·· एक तरफ से आवाज आयी 'श्री रामचद्र··· ·'

और फिर बहुत-सी आवाजें आयी—"खामोश ·· खामोश ·· खामोश।" और नारायण बाबा की महीनो की मेहनत अकारथ चली गयी। बहुत से लोग जुलस मे शामिल हो गये। जिसके आगे-आगे वकील कालका प्रसाद और हुकुम सिंह मोर्हारर चौकी कलां जा रहे थे, अपनी बूढी छडियों को जमीन पर मारते और एक विजयी-सी आवाज पैदा करते हुए और उनके बीच कही सुदरलाल जा रहा था। उसकी आखों से अभी तक आसू बह रहे थे। आज उसके दिल को बुरी ठेस लगी थी और लोग बड़े जोश के साथ एक-दूसरे के साथ मिल कर गा रहे थे—'हथ लाईया कुम्लान नी ··· लाजवंती दे बूटे ···'

अभी गीत की आवाज लोगों के कानो मे गूज रही थी। अभी सुबह भी नही हो पायी थी और मोहल्ला मुल्ला शकूर के मकान 414 की विधवा अभी तक अपने बिस्तर मे दुख-भरी अगडायी ले रही थी कि सुदरलाल का गिरायी (गाव मे साथ रहने वाला) लालचंद जिसे अपना असर और जोर इस्तेमाल करके सुदरलाल और खलीफा कालका प्रसाद ने राशन डिपो ले दिया था, दौडा-दौडा आया और अपने गाढे की चादर से हाथ फैलाये हुए बोला—

"बधाई हो सुदरलाल।"

सुदरलाल ने मीठा गुड चिलम में रखते हुए कहा—"किस बात की बधाई

लालचंद ?"

"मैंने लाजो भाभी को देखा है।"

सुंदरलाल के हाथ मे चिलम गिर गयी और मीठा तंबाकू फर्श पर गिर गया—"कहा देखा है ?" उसने लालचंद को कंधों से पकड़ते हुए पूछा। और जल्द जवाब न पाने पर झंझोड दिया।

"वागा की सरहद पर।"

सुंदरलाल ने लालचंद को छोड़ दिया और इतना-सा बोला—"कोई और होगी।"

लालचंद ने यकीन दिलाते हुए कहा—

"नही भैया वह लाजो थी लाजो।"

"तुम उसे पहचानते भी हो ?" सुंदरलाल ने फिर से मीठे तंबाकू को फर्श पर से उठाते और हथेली पर मसलते हुए पूछा और ऐसा करते हुए उसने रिसालू की चिलम हुक्के पर से उठा ली और बोला—

"भला क्या पहचान है उसकी ?"

"एक तेंदुला ठोढी पर है और दूसरा गाल पर।"

"हा हा हा।" और सुंदरलाल ने खुद ही कह दिया—"तीसरा माथे पर।" वह नही चाहता था अब कोई संदेह रह जाये और एकदम उसे लाजवंती के जाने-पहचाने जिस्म के सारे तेंदुले याद आ गये जो उसने बचपने मे अपने जिस्म पर बनवा लिये थे जो उन हल्के-हल्के सब्ज दानों की तरह थे जो छुईमुई के पौधे के बदन पर होते है और जिनकी तरफ इशारा करते ही वह कुम्हलाने लगता है। बिलकुल उसी तरह इन तेंदुलो की तरफ उंगली करते ही लाजवंती शरमा जाती थी—और गुम हो जाती थी, अपने आप मे सिमट जाती थी। मानो उसके सब राज़ किसी को मालूम हो गये हो और किसी नामालूम खजाने के लुट जाने से गरीब हो गयी हो। सुंदरलाल का सारा जिस्म एक अनजाने खौफ से, एक अनजानी मोहब्बत और उसकी पवित्र अग्नि मे फुकने लगा। उसने फिर से लालचंद को पकड़ लिया और पूछा—

"लाजो वागा कैसे पहुंची ?"

लालचंद ने कहा—"हिंद और पाकिस्तान मे औरतों का अदला-बदला हो

रहा था ना।"

"फिर क्या हुआ ?" सुंदरलाल ने उकड़ू बैठते हुए कहा—"क्या हुआ फिर ?"

रिसालू भी अपनी चारपाई पर उठ बैठा और तबाकू पीने वालों की खास खांसी खासते हुए बोला—"सचमुच आ गयी है लाजवंती भाभी ?"

लालचंद ने अपनी बातें जारी रखते हुए कहा—"वागा पर सोलह औरतें पाकिस्तान ने दे दीं और उसके बदले में सोलह औरतें ले लीं—लेकिन एक झगड़ा खड़ा हो गया। हमारे वालेंटियर आपत्ति कर रहे थे कि तुमने जो औरतें दी हैं उनमें अधेड़, बूढ़ी और बेकार औरतें ज्यादा हैं। इस तनाव पर लोग जमा हो गये। उस वक्त उधर के वालेंटियरों ने लाजो भाभी को दिखाते हुए कहा—"तुम इसे बूढ़ी कहते हो ? देखो देखो "जितनी औरतें तुमने दी हैं उनमें से एक भी बराबरी करती है इसकी ?" और वहां लाजो भाभी सबकी नजरों के सामने अपने सॅंदुले छिपा रही थी।

फिर झगड़ा बढ़ गया। दोनों ने अपना-अपना 'माल' ले लेने की ठान ली। मैंने शोर मचाया—"लाजो · लाजो भाभी !" मगर हमारी फौज के सिपाहियों ने हमें ही मार-मार कर भगा दिया।

और लालचंद अपनी कुहनी दिखाने लगा जहां उसे लाठी पड़ी थी। रिसालू और नेकीराम चुपचाप बैठे रहे और सुंदरलाल कहीं दूर देखने लगा। शायद सोचने लगा। लाजो आयी भी पर न आयी "और सुंदरलाल की शक्ल ही से जान पड़ता था जैसे वह बीकानेर के रेगिस्तान को फांदकर आया है और अब कहीं पेड़ की छांव में जबान निकाले हांफ रहा है। मुंह से इतना भी नहीं निकलता—"पानी दे दो।" उसे यों महसूस हुआ बंटवारे से पहले और बंटवारे के बाद की हिंसा अभी तक काम कर रही है। सिर्फ उसकी शक्ल बदल गयी है। अब लोगों में पहला-सा दरेग़ भी नहीं रहा। किसी से पूछो सांभरवाला में लहनासिंह रहा करता था और उसकी भाभी बन्तो—तो वह झट से कहता—"मर गये।" और उसके बाद मौत और उसके अर्थ से बिलकुल बेखबर और बिलकुल खाली आगे चला जाता। उससे एक कदम आगे बढ़कर बड़े ठंडे दिल से ताजिर इंसानी माल, ईमानी गोश्त और पोस्त की तिजारत और उसका अदल-बदल करने लगे। मवेशी

खरीदने वाले किसी भैंस या गाय का जबड़ा हटा कर दातो से उसकी उम्र का अदाजा करते थे।

अब वह जवान औरत के रूप, उसके निखार उसके सबसे प्यारे भेदो, उसके तेंदलुओं की खुले आम सडको पर नुमायश करने लगे। हिंसा अब तिजारत करने वालो की नस-नस मे बस चुकी है। पहले मडी में माल बिकता था और भावताव करने वाले हाथ मिलाकर उस पर एक रुमाल डाल लेते और यो गुप्ती कर लेते जैसे रुमाल के नीचे उगलियो के इशारो से सौदा हो जाता था। अब गुप्ती का रुमाल भी हट चुका था और सामने सौदे हो रहे थे और लोग तिजारत के आदाब भी भूल गये थे। यह सारा लेन-देन, यह सारा कारोबार पुराने जमाने की कहानी मालूम हो रहा था जिसमे औरतो की आजाद खरीदो-फरोख्त का किस्सा बयान किया जाता है। उजबेक अनगिनत नगी औरतो के सामने खडा उनके जिस्मो को टोह-टोह के देख रहा है और जब वह किसी औरत के जिस्म को उगली लगाता है तो उस पर एक गुलाबी-सा गड्ढा पड जाता है और उसके चारों ओर एक जर्द-सा घेरा और फिर जर्दिया और सुर्खिया एक-दूसरे की जगह लेने के लिए दौडती है। उजबेक आगे गुजर जाता है और कबूल न करने लायक औरत एक हार की आत्म-स्वीकृति और शर्मिंदगी की हालत मे एक हाथ से एजारबद थामे और दूसरे से अपने चेहरे को आम लोगो की नजरो से छिपाये सिसकियां लेती है।

सुदरलाल अमृतसर (सरहद) जाने की तैयारी कर ही रहा था कि उसे लाजो के आने की खबर मिली। एकदम ऐसी खबर मिल जाने से सुदरलाल घबरा गया। उसका एक कदम फौरन दरवाजे की तरफ बढा लेकिन वह पीछे लौट आया। उसका जी चाहता था कि वह रूठ जाये और कमेटी के तमाम प्लेकार्डो और झडो को बिछा कर बैठ जाये और फिर रोये लेकिन वहा भावो को इस तरह जाहिर करना मुमकिन न था। उसने मर्दानावार इस भीतरी खींचतान (सघर्ष) का मुकाबला किया और अपने कदमो को नापते हुए चौकी कला की तरफ चल दिया क्योंकि वहीं जगह थी जहा भगाई हुई औरतो की डिलेवरी दी जाती थी।

अब लाजो सामने खडी थी और एक खौफ की भावना मे काप रही थी। वही

मुंदरलाल को जानती थी उसके सिवा कोई न जानता था। वह पहले ही उसके साथ ऐसा सलूक करता था और अब जबकि वह अब एक गैर-मर्द के साथ जिंदगी के दिन बिताकर आयी थी न जाने क्या करेगा? सुंदरलाल ने लाजो की तरफ देखा। वह खालिस इस्लामी तरज का लाल दुपट्टा ओढ़े थी और बाएं बक्कल मारे हुए थी। आदत के कारण सिर्फ आदत के कारण। दूसरी औरतों में घुल-मिल जाने और आखिर अपने 'सैय्याद' के जाल से भाग जाने की आसानी थी और वह सुंदरलाल के बारे में इतना सोच रही थी कि उसे कपड़े बदलने या दुपट्टा ठीक से ओढ़ने का भी ख्याल न रहा। वह हिंदू और मुसलमान की तहजीब के बुनियादी फर्क" दाए बक्कल और बाए बक्कल में फर्क करने से मजबूर रही थी। अब वह सुंदरलाल के सामने खड़ी थी और कांप रही थी एक उम्मीद और एक डर की भावना के साथ—

सुंदरलाल को धचका-सा लगा। उसने देखा कि लाजवती का रंग कुछ निखर गया था और पहले की बनिस्बत कुछ तंदुरुस्त-सी नजर आती थी—नहीं—वह मोटी हो गयी थी—सुंदरलाल ने जो कुछ लाजो के बारे में सोच रखा था वह सब गलत था। वह समझता था गम में घुल जाने के बाद लाजवंती बिलकुल मरियल हो चुकी होगी और आवाज उसके मुंह से निकाले न निकलती होगी। इस ख्याल से वह पाकिस्तान में बड़ी खुश रही है, उसे बड़ा सदमा हुआ लेकिन वह चुप रहा क्योंकि उसने चुप रहने की कसम खा रखी थी—अगर चे वह न जान पाया कि इतनी खुश थी तो चली क्यों आयी? उसने सोचा शायद हिंद सरकार के दबाव की वजह से अपनी मर्जी के खिलाफ यहां आना पड़ा—लेकिन एक चीज वह न समझ सका कि लाजवंती का संवलाया हुआ चेहरा जर्दी लिये हुए था और गम महज गम से उसके बदन के गोश्त ने हड्डियों को छोड़ दिया था। वह ज्यादा गम से मोटी हो गयी थी और स्वस्थ नजर आती थी लेकिन यह ऐसा स्वास्थ्य था जिसमें दो कदम चलने पर आदमी का सांस फूल जाता है।

भगायी हुई औरतों के चेहरे पर निगाह डालने का असर कुछ अजीब-सा हुआ। लेकिन उसने सब ख्यालात का एक मर्दाना आदर्श से मुकाबला किया और फिर बहुत-से लोग मौजूद थे। किसी ने कहा—"हम नहीं लेते मुसलमरान (मुसलमान) की जूठी औरत··"

चुपकी-दबकी पडी रही और अपने बदन की तरफ देखती रही जोकि बटवारे के बाद अब देवी का बदन हो चुका था। लाजवती का न था। वह खुश थी बहुत खुश लेकिन एक ऐसी खुशी में डूबी जिसमें एक शक था और वसवसे ! वह लेटी-लेटी अचानक बैठ जाती जैसे बेहद खुशी के क्षणों में कोई आहट पाकर यकायक उसी तरफ देखने लगे।

जब बहुत दिन बीत गये तो खुशी की जगह पूरे शक ने ले ली। इसलिए नहीं कि सुदरलाल बाबू ने फिर वही बदसलूकी शुरू करदी थी बल्कि इसलिए कि वह लाजो से बहुत ही अच्छा सलूक करने लगा था जिसकी लाजो को आशा न थी ! वह सुदरलाल की वही पुरानी लाजो हो जाना चाहती थी जो गाजर से लड पड़ती और मूली से मान जाती। लेकिन अब लड़ाई का सवाल ही न था। सुदरलाल ने उसे यह महसूस करा दिया जैसे वह—लाजवती काच की कोई चीज है जो छूते ही टूट जायेगी और लाजो आइने में अपने सरापा की तरफ देखती और आखिर इस नतीजे पर पहुचती कि वह और तो सब कुछ हो सकती है पर लाजो नही हो सकती। वह बस गयी पर उजड गयी ' सुदरलाल के पास न उसके आसू देखने के लिए आखे थी और न आहे सुनने के लिए कान···प्रभात फेरिया निकलती रही और मोहल्ला मुल्ला शकूर का सुधारक रिसालू और नेकीराम के साथ मिलकर उसी आवाज मे गाता रहा—

'हथ लाईयां कुम्लान नी ·· लाजवती दे बूटे'

बब्बल

दरबारीलाल शाम से ही घर मे बैठा सीता के साथ बेकार हो रहा था।

किसी के साथ बेकार होना उस हालत को कहते हैं जब आदमी देखने मे इवि-निंग न्यूज या गालिब की गजलें पढ रहा हो लेकिन ख्यालो मे किसी सीता के साथ डूबा हुआ हो।

सीता ने तो कहा था कि वह ठीक छह् बजे आरोरा सिनेमा की तरफ से आने वाली सडक की मोड पर खडी होगी। उसकी साडी का रंग कासनी होगा—लेकिन ··

दरबारी किम्स सर्किल मे रहता था जिसका नाम अब महेश्वरी उद्यान हो गया है। वह लाउडस्पीकरो की एक फर्म मे काम करता था। आमदनी तो कोई खास नही थी लेकिन पैसो की कमी भी नही थी। बाप मेहता गिरधारीलाल ने एक ही दिन की 'फार्वर्ड ट्रेडिंग' मे तीन-चार लाख रुपये बना लिये थे और फिर यकायकी हाथ खींच लिये जो अब तक खिचे हुए थे। आज भी 'काटन एक्स्चेंज' में उनके साथी मेहता साहब के मक्खन मे से बाल की तरह से निकल जाने पर गालियां देते तो वह जवाब मे हंस देते—ऐसी हसी जो आदमी तीन-चार लाख अदर डाल कर ही हस सकता है।

फिर बड़े भाई बिहारीलाल की शादी मारवाडियों के घर मे हुई थी, जिन्होंने बीस सेर सोने के कडे लडकी के हाथो मे डाले और यो उसे दरबारी की भाभी बनाया। बरस एक बाद दरबारी की अपनी बहन मनवती नार एक लखपती 'इस्मायली' साजेह मोहम्मद के साथ भाग गयी और निकाह कर लिया। गली-मोहल्ले और पूरे शहर मे एक हगामा हुआ। बरसो मेहता साहब ने अपनी लड़की और दामाद दोनो को 'प्रेम कुटीर'—अपने घर मे घुसने न दिया। आखिर मन-मनौनी हो गयी। लडके के रिश्तेदार कहते थे लडकी को इस्लाम मे 'मुशर्रफ' (पवित्र, बुजुर्ग) किया गया है और उसका नाम कनीज फातिमा है और मेहता साहब कहते थे लडके को शुद्ध करने के बाद उसका नाम सरदारी मोहन रखा गया है लेकिन सरदारी मोहन या साजेह मोहम्मद अपना नाम हमेशा

एस एम नवाव ही लिखा करता। चूकि लडके की इस बुरी हरकत पर गुस्सा निकालने का कोई और जरिया न था इसलिए दरबारीलाल के दोस्त जब भी सतवती नार के पति या शौहर से मिलते तो यो ही कहते—"क्यो बे साले—ह?"

आज सालेह या सरदारी और सतवती दोनो घर पर थे और उनके दो बच्चे भी। उस समय बिहारी और भाभी गुनवती ने मिलकर दरबारी की शादी का मसला छेड दिया। औरतें आदर्श मर्द और मर्द आदर्श औरत की बाते करते-करते *आपस मे उलझने लगे।* *दरबारी बरामदे मे बैठा अपने बारे मे सारी बातें सुन* रहा था। यकायकी वह लपका और अपने मुह के लाउडस्पीकर को खिडकी मे मे अदर करते हुए बोला—"मैं दरबारीलाल मेहता वल्द गिरधारीलाल मेहता साकिन बबई हरगिज-हरगिज शादी नही करूगा।" सब उस आवाज पर चौक गये। औरतो और बच्चो की तो जान ही निकल गयी।

दरबारीलाल वापस अपनी जगह पर आकर इवनिंग न्यूज के वर्क उलटने लगा और फिर आरोरा सिनेमा की तरफ से घर को मुडती हुई सडक पर देखने लगा जहा उसे कासनी रग की साडी की तलाश थी।

अदर सब हंस रहे थे। मा भी उनमे आकर शामिल हो गयी थी। दरबारी घर भर का लाडला था। जिस तरीके मे वह बालो पर हेयर टानिक लगाता—मेहनत से उनको बिठाता, कैंची लेकर आईने के सामने घटा-घटा, दो-दो घटे मूछो की नोक मे लगा देता सब बाकपन की दलीलें ही तो थी। बात असल मे यह है कि शादी से पहले उम्र के उस हिस्से मे लडके-लडकियो की-सी हरकते करने लगते हैं और लडकिया लडको की-सी। फिर शादी होती है। आपस मे मिलते है तब कही जाकर अपना-अपना काम सभालते हैं दरबारी की इन हरकतो को देख कर घर की औरते कहती थी यह सब शादी की निशानिया हैं और मर्द कहते थे—बरबादी की।

बरामदे मे मिस्त्री निरवान ने जाली लगाने काम आज ही शुरू किया था। वह दिनभर एक बेशक्ल, बेकायदा और खुर्दुरी-सी लकडी को छीलता हुआ उस पर रदा करता रहा था और इसीलिए सारे घर मे लकडी के छिलके और छपेटिया बिखरी हुई थी और पैरो मे लग रही थी। जभी सामने डान बास्को स्कूल मे घटी

बजी और सफेद-सफेद कमीज और नीली नेकरें पहने हुए लडके एक-दूसरे पर गिरते-पडते हास्टल के कमरो मे निकले। शायद वह शाम की प्रार्थना के लिए गिरजे की तरफ जा रहे थे। स्कूल की ग्राउंड मे लबा-सा फरगल (लबादा) पहने अभी तक फादर बच्चो को फुटबाल खिला रहा था। उसने भी सीटी बजा दी। खेल खत्म कर दिया मगर सीता न आयी।

और सिनेमा की तरफ से इधर आने वाली सडक पर कुछ गायें अलसायी-सी बैठी थी और जुगाली कर रही थी। फिर उस तरफ से एक कार अदर की तरफ मुडी और दाये तरफ की बिल्डिंग के पीछे खडी हो गयी। अभी एक मोटी-सी औरत आते हुए दिखायी दी। उसके पीछे मद्रासी होटल 'उडपी' का मालिक रामास्वामी एक-दूसरे से काफी फासले पर थे फिर भी यहा दरबारी के यहा से यही मालूम हो रहा था जैसे वह एक-दूसरे को ठेलते-ढकेलते कोई अजीब-सा खेल खेलते आ रहे है।

सीता की बजाय उल्टी तरफ से मिस्री चली आयी। हमेशा की तरह आज भी उसकी गोद मे बच्चा था—बब्बल!

बब्बल एक तदुरुस्त बच्चा था। गोल-मटोल, नर्म-नर्म जैसे स्पज का बना हुआ। उसने यू तो कई दात निकाल लिये थे लेकिन नीचे के दो दात अपेक्षाकृत बडे से थे। कमीना हसता तो वाल्ट डिजनी का खरगोश मालूम होता। आज तक कोई ऐसा दिखायी न दिया जो बब्बल को हसते देख के बेबस होकर हंस न दिया हो।

"बब्बल" दरबारी ने पुकारा और हाथ बच्चे की तरफ फैला दिये। मुस्कराते हुए बब्बल ने दरबारी की तरफ देखा और अंदर की किसी बेबस-सी हरकत से चकाचकी दरबारी की तरफ हुमकना शुरू कर दिया। अब वह अपनी मा मिस्री से सभाला न जा रहा था।

"ठहरो" दरबारी ने कहा और कुरमुरा लेने के लिए अदर लपक गया। वह यह भी भूल गया कि सीता आयेगी और चली जायेगी। बब्बल के चेहरे पर एक भोली-सी निराशा की लहर दौड गयी और पल भर मे वह यू महसूस करने लगा जैसे कह रहा हो—यह सारी दुनिया धोखा है। फिर जैसे वह निराश हो रहा था। ऐसे ही दरबारी को आते देखकर खुश भी हो गया।

बब्बल की मा मिस्री एक भिखारन थी। जरूरतो की वजह से इतनी छोटी-सी उम्र मे उसने बब्बल को भीख मागने की कला सिखा दी थी। बाजार मे

जाती हुई वह किसी भी बाबू किस्म के आदमी के सामने खडी हो जाती और बब्बल एक रिहर्सल किये हुए ऐक्टर की तरह उस आदमी की धोती या कमीज को खीचने लगता और उस चीज की तरफ इशारा करने लगता जो उसे चाहिए होती। आदमी देखता, नजरें बचाता फिर देखता और बरबस वह चीज खरीदकर बब्बल के हाथ मे थमा देता। मिस्री बाबू के चले जाने के बाद बब्बल के हाथ से वह चीज ले लेती और दुकानदार को वापस करके पैसे खरे कर लेती—बब्बल रोता-चिल्लाता रह जाता।

लेकिन दरबारी के साथ बब्बल और उसकी मा मिस्री का रिश्ता ऐसा न था। कुरमुरा लेकर उसे बेचने का सवाल ही कहा पैदा होता था। कुरमुरे के साथ मिस्री को दुअन्नी या चौवन्नी मिल जाती थी जिसमे बब्बल को कोई दिलचस्पी न थी। उसे तो अपना कुरमुरा चाहिए था जिसे मा नही छीनती थी और न किसी दुकानदार को देनी थी। कुरमुरा वह सीधे मुह मे डाल लेता और दातो मे पपोलते हुए हुमक-हुमक कर उछल-उछल कर अपनी खुशी जाहिर करता। आज जब दरबारी ने बब्बल को गोद मे उठाया तो एक ही बार मे कुरमुरे से मुट्ठी भरते हुए मा की तरफ लौटने लपकने लगा। दरबारी ने बब्बल को बहुत रोका, प्यार-दुलार की कोशिश की लेकिन वह भला कहा मानने वाला था। "ऊ-ऊ" करता हुआ वह तो मा की तरफ गिरा ही जा रहा था।

दरबारी ने कहा—"कमीने · साले "

अदर से सालेह या सरदारी की आवाज आयी—

"क्या हुक्म है हुजूर?"

"आपको अर्ज नही किया फैज गजूर (कृपा निधान)।"—दरबारी ने अदर की तरफ मुह करते हुए जवाब दिया और फिर बब्बल के प्यारे दुलारे गालो पर चपत लगाते हुए उसे मा को लौटाते हुए बोला—"इतना खुदगर्ज? सलाम न दुआ शुक्रिया न धन्यवाद काम निकल गया तो तू कौन मैं कौन?"

मिस्री—फुटपाथ की जिदगी ने शर्म को जिसके लिए तकल्लुफ बना दिया था—बेचारी मे बोली—"यह सब ऐसे ही होते हैं बाबूजी ··" और फिर बब्बल को छाती मे छिपाती वही सटी वह अपनी दुअन्नी-चौवन्नी का

इंतजार करने लगी !

बब्बल हमेशा की तरह 'आलेफ' नहीं तो 'बे' नगा जरूर था क्योंकि बदन पर कमर के नजदीक वह एक काला-सा तागा पहने हुए था जिसमें एक तावीज लटक रहा था। इस लिबास में खुद मा के पास पहुंचते ही उसने अपना मुह मिस्री की बड़ी-बड़ी छातियों में छुपा लिया जहां से वह एक बहुत बडे विजेता की तरह मुड़कर देखने लगा जैसे वह किसी बहुत बड़े किले में पहुच गया है। फिर नजरों के तीरओ तरकश ताने वह किले के कगूरों पर बैठा सामने किसी लड़ाकू फौज की जाच-पड़ताल करने लगा—ऐसी फौज का जिसके हमला करने के पहले ही छक्के छूट गये। फिर यकायकी किसी परी वाले ख्याली घोड़े पर बैठा वह किसी शह-सवार की तरह लपकने लगा। आगे ही आगे, ऊपर ही ऊपर और मंजिलें उसके पक्ष मे हो-हो कर उसके पैरों में पड़ी होती है।

मिस्री एक काले बल्कि पक्के रग की जवान औरत थी और बब्बल गोरा चिट्टा। यह कैसे हुआ?—दरबारी ने कभी न पूछा! वह समझता था यह गरीब औरतें कितनी बे-सहारा होती हैं। सड़क के किनारे पड़ी हुई मिस्री को कोई बाबू आठ आने रुपये के बदले बब्बल दे गया होगा।

"आपके पास तो फिर भी चला जाता है बाबूजी वरना यह हलकट ··· किसी मर्द के पास नहीं जाता।"

"क्यों, क्यों?" दरबारी ने हैरान होकर पूछा।

"मालूम नहीं" मिस्री कहने लगी। और फिर प्यार से बब्बल की तरफ देखती हुई बोली—

"हा औरतों के पास चला जाता है।"

दरबारी जी खोल के हसा—"बदमाश है ना ··· अभी से औरतों की चाट लगी है। बड़ा होकर क्या करेगा ···?"

मिस्री खूब शर्माई और खूब ही इतराई। उसे यू लगा जैसे वह अपनी गोद में अनगिनत गोपियों वाले कन्हैया को खिला रही है और मिस्री की कल्पना मे जो गोपिया थी वह खुद उनमें से एक थी जैसे बब्बल मिस्री का मन था और मिस्री की की अपनी वृत्तिया उसके चारों तरफ नाच रही थी ··· बब्बल अभी तक एक गोपी के साथ या फिर अनेक के साथ!

दरबारी ने मिस्री बाई के साथ थोडी-सी आजादी ली थी। उससे घबरा कर पूछ बैठा।

"*इसका बाप क्या काम करता है मिस्री ?*"

"इसका बाप ?" मिस्री को जैसे सोचने मे वक्त लगा—"नही है।"

इस जवाब मे बहुत-सी बातें थी। यह भी थी कि वह मर चुका है और यह भी कि मरने से भी बदतर हो गया है। मिस्री कही दूर देखने लगी और फिर दरबारी की निगाहो के अफसोस को दूर करती हुई बोली—"एक बार वह फिर आया था· मुझे यो ही लगा जैसे वही है। लेकिन मैं क्या कह सकती थी बाबूजी ? मैंने तो उसे जी भर कर देखा भी न था · जब तक मैंने इस बच्चे का कोई नाम नही रखा था। कभी गोरू कभी नारिया कह के पुकारती थी। जभी उसने उसके हाथ पर पाच का एक नोट रखा और बडे प्यार से पुकारा बब्बल! ·जब से मैंने इसका नाम बब्बल रख दिया है "

और मिस्री फिर सोचने लगी—"इसका बाप न होता तो पाच रुपये देता ?"

दरबारी सोचने लगा—"हो सकता है वह आदमी नही पाच रुपये का नोट ही इस बच्चे का बाप हो "

दरबारी ने आज की अठन्नी मिस्री के हाथ पर रखने के बजाय बब्बल के हाथ पर रख दी। बब्बल ने सिक्के को हाथ में लिया। जोर-जोर से बाजू को हुमकाया और फिर उसे फेंक दिया।

अठन्नी सडक पर के मैन होल मे गिरने ही वाली थी कि जैसे मिस्री की तकदीर को खुश्क टूटपुजियापन से एक सूखे आम के छिलके ने रोक लिया। मिस्री ने झुक कर अठन्नी उठाई और बब्बल को सीने से लिपटाते हुए बोली—

"लुच्चा है न " और फिर उसे चूमते हुए वह दरबारी लाल से बोली—सच पूछो बाबूजी तो मेरा मर्द यही है।"

"तेरा मर्द—?"

"हा" मिस्री ने बब्बल को सभाला जो अपनी मा के सिर पर से पल्लू खीच रहा था और कहने लगी—

"यह कमाता है मैं खाती हू।"

मिस्री बहुत बातूनी थी। वह और भी बहुत कुछ कहती। बब्बल और भी कुरमुरा मांगता लेकिन दरबारी को अपनी नजरों की क्षितिज पर कासनी रंग लहराता नजर आया। उसने जल्दी से मिस्री के आबनूसी हुस्न और बब्बल के चिट्टे भोलेपन को झटक दिया और—"मैं चला सालेह भाई" "अच्छा भाभी" कह कर वह जल्दी से बाहर निकल गया। अभी वह सड़क पर पहुंचा भी न था कि पतलून के पायचे में उसे लकड़ी के छिलके अटे हुए दिखाई दिये जिन्हें दरबारी ने झुककर बाहर निकाला और सीता के पास जा पहुचा । ।"

शिवाजी पार्क के समदर के किनारे बलब और भेलपूरी वालो से कुछ दूर हट कर दरबारी और सीता एक दीवार का सहारा लेकर बैठ गये।

सीता अठारह-बीस बरस की एक लड़की थी जिसकी मा तो थी पर बाप मर चुका था। घर की हालत कुछ इतनी खराब भी न थी क्योंकि मकान अपना था जिसके रहने वालो से कभी किराया वसूल होता था कभी नही। सीता की मा लछमन देई यो तो अपनी बेटी की शादी करना चाहती थी लेकिन शादी से ज्यादा उसे इस बात का ख्याल था कि कोई ऐसा आये जो हर महीने अपने 'दबाव' से किराया उगाहे ताकि सीता के कहने के मुताबिक दरवाजे पर हर महीने जो भेड़िया दिखाई देता है भाग जाये "और जीना सुखी हो जाये। लछमन देई से सीता ने दरबारी की बात भी की। पहले तो मा शक और वसवसे की बात करने लगी लेकिन जब उसे पता चला दरबारी का पूरा नाम दरबारीलाल मेहता है तो उसने झट से इजाजत दे दी क्योंकि बबई में जो लोग किराया उगाहते हैं उन्हे मेहता बोलते हैं।

सीता का कद मझोला था लेकिन बदन का गठन इतना संतुलित था जो मर्दों के दिल में भावनाएं जगा दिया करता है और कोई बेबस-सी सीटी उनके होंठो पर चली आती है। चेहरे की काट-छाट बनावट अच्छी थी लेकिन उसके पास आने ही से पता चलता था। पलकें कुछ नम-सी रहती क्योंकि सीता की आखें थोड़ी अदर धंसी हुई थी और उनके बचाव के लिए पलको को झुकना पड़ता था। लेकिन यह उन धसी हुई आखों ही की वजह से था कि सीता मर्द के दिल में बहुत

दूर तक देख सकती थी। वह किसी की कुछ न थी या न बन पाई, यह अलग बात थी, लेकिन जानती वह सब थी। हां सीता के पास बहुत सवाल थे जिनके कारण दरबारी उससे पूछा करता —"तुम्हारे घर में कोई किसी बकाइन को भी प्यार कर सका था?" और सीता कहती — "मैं खुद जो हूं बकाइन... मेरा नाम सीता मजूमदार है..." दरबारी कहता—"सीता मजेदार!" और सीता हंसने लगती। यह खुश थी कि उसका कद सिर्फ इतना है जिससे वह अपने हसीन गालों, गमगीन और लचकीले बालों वाले सिर को दरबारी की छाती पर रख सकती है और अपने जिस्म की हद तक को किसी के हवाले करके अपना सारा दुख भूल सकती है और कांटे से फर्क से वह पति और पिता को तय कर सकती है—

दीवार की ओट में बैठा हुआ दरबारी सीता से प्यार कर रहा था। सीता न चाहती थी कि उसका प्यार अपनी हद से गुजर जाये। कमर के गिर्द और हाथ पड़ते ही सीता सोरन्नी होने लगी। उसने दरबारी को बातों में लगाना चाहा। ब्लाउज में से उसने एक छोटी-सी चांदी की डिबिया निकाली और दरबारी के मुंह के पास करती हुई बोली —"देखो मैं तुम्हारे लिए क्या लाई हूं?"

"क्या लाई हो?" दरबारी ने पूछा और अनजाने में सीता की कमर से हाथ निकालकर डिबिया की तरफ बढ़ा दिया।

सीता ने डिबिया को परे हटा लिया और बोली—"ऐसे नहीं... मैं खुद दिखाऊंगी" और फिर उसे दरबारी की नाक के पास करती हुई बोली —"सूंघो"

आफत के मारे दरबारी ने डिबिया सूंघ ली और उसे छींकें आने लगीं।

मोहब्बत का सारा खेल रुक गया। दरबारी छींक पर छींक मार रहा था और जेब से रूमाल निकालकर बार-बार अपनी नाक को पोंछ रहा था और सीता पास बैठी हंसती जा रही थी।

"यह—" दरबारी ने कहा और फिर छींकते हुए बोला—"क्या मजाक है?"

सीता कहने लगी—"तुम इसे मजाक कहते हो?—बीस रुपए तोले की नसवार है।"

"नसवार?"

"हां" सीता बोली—"तुम छींकते हो तो मुझे बड़े अच्छे लगते हो।"

दरबारी ने मीना की तरफ यों देखा जैसे कोई पागल की तरफ देखता है। मीना ने प्यार-भरी निगाह उस पर डाली और बोली—"याद है पहली बार तुम मुझे कहा मिले थे ?"

"याद नही" दरबारी ने सिर हिलाते हुए कहा—"सिर्फ इतना ही पता है कहीं तुमसे पहली बार मिला था।"

"वहा" मीना ने सामने महात्मा गाधी स्विमिंग पूल की तरफ इशारा करते हुए कहा—

"तुम नहा रहे थे और छीक रहे थे। मेरे साथ तीन-चार लडकिया और भी थी। उस दिन दफ्तर मे आधे दिन की छुट्टी हो गयी थी और हम यों ही घूमती-घुमाती उधर जा निकली—"

"उधर क्यों ?"

"यों ही" मीना ने कहा—"छुट्टी होते ही हम सब लड़कियों को क्या होने लगता है। हम घर बैठ ही नही सकती। ऐसे ही बाहर निकल जाती है जैसे कुछ होने वाला है। फिर होना-हवाना तो कुछ नही जभी पता चलता है—कोका कोला पी रही है।"

मीना हंसी तो साथ दरबारी भी हस दिया। वह अपनी बात जारी रखते हुए कहने लगी—

"हम सब तुम्हारी तरफ देख कर हंस रही थी क्योंकि तुम छीकते हुए बोर्ड से फौआरे तक और फौआरे किनारे तक आ जा रहे थे और ऐसा करने पर सिर से पैर तक दुहरे-तिहरे हुए जाते थे—बच्चे की तरह मेरा जी चाहा तुम्हे पकड़ लू। पल्लू से तुम्हारा मुह तुम्हारी नाक पोछू और पीछे से एक चपत लगा कर कहू—"अब जाओ मजे उडाओ··"

दरबारी जैसे एक ही बात सोच रहा था—"दूसरी लड़किया कौन थी ?"

"एक तो कुमुद थी" मीना बोली—"दूसरी जूली··· वहां खाड़ी के पार के माउट मेरी के पास रहती है। तीसरी—" और फिर यकायकी रुकते हुए कहने लगी—"तुम क्यों पूछ रहे हो ?"

"ऐसे ही" दरबारी ने जवाब दिया—"तुम्हारी सहेलिया तुम्हारी जूती की भी रेस नही करती।"

"तुमने देखी है ?"

"देखी तो नही ।"

सीता का चेहरा जो थोड़ा खिल उठा था मद पड गया। तभी एक छीक ने दरबारी के चेहरे पर पर तोले लेकिन रुक गयी। वह सामने देखते हुए बोला—"आज दिन डूबता ही नही।"

समदर मे ज्वार शुरू हो चुका था। लहरें किनारो की तरफ बढ रही थी और अपने साथ भेलपूरी के अनगिनत पत्तल, गडेरी, मूगफली, के छिलके, नारियल के खोल ला रही थी। फिर बीच मे कही कोयले भी दिखाई देते थे जो दूर अदर धूए वाली किश्तियों और बड़े-बडे जहाजो ने अपना गम हल्का करने के लिए समदर मे फेंक दिये थे। तेल का इलजाम भी खुश्की पर टाल दिया था और उनका खाली किया हुआ डीजेल वरेते पर पहुच कर उसके एक बडे से हिस्से को चिकना और स्याह बना रहा था।

" सीता ने मुडकर देखा। दरबारी कुछ अजीब-सी नजरो से उसकी तरफ देख रहा था। स्याहियो के परे उसके चिकने चेहरे पर छट रहे थे—

दिन डूब रहा था। उसने अपने लाबे वाले दुनिया के दोनो किनारो से समेटे और उन्हे बगल मे दबाकर एक गहरे केसरी रग की गठरी-सी बना दूर पच्छिम के गहरे पानियों मे उतरने लगा। थोडी ही देर मे उसका तेज जमीन की गोलाईयो मे गुम हो गया। अब किनारे और उसके मकानो और उनमे रहने वालो पर वही रोशनी थी जो आसमान के आवारा बादलो पर से होते हुए नीचे जमीन पर पडती है और जो हौले-हौले, धीरे-धीरे बडे प्यार मे अघेरे को अपनी जगह देती है जैसे कह रही हो—लो अब तुम्हारा राज है। जाओ मौज उडाओ

वही छीक जिसने दरबारी को सीता से कोसो दूर फेंक दिया था एक ही वार मे उसके करीब भी ले आयी सीता कापने लगी। दरबारी हाफने लगा!

अघेरे के स्थिर होते ही पूल और क्लब और सडक पर के कुम कुमे तो एक तरफ फेरी वालों के भावों और ठेलों पर टिमटिमाने वाले दीये भी कापने लगे!

जभी जैसे दीवार मे से आवाज आयी "दरबारी क्या करते हो ?"

"इसका मतलब है" दरबारी ने अपना हाथ हटाते हुए कहा—"तुम मुझ से प्यार नही करती।"

"प्यार का मतलब यह थोड़े होता है।"

"मैं सब जानता हूँ ··" और दरबारी उठकर खड़ा हो गया और कपड़े ठीक करने जाने लगा। सीता ने उसे रोकने की कोशिश की और विनती करने के स्वर मे बोली—"क्या कर रहे हो चाद ?" ···और रेत पर पड़ी हुई सीता दरबारी के पैरों से लिपट गयी—जो गुस्से में हाफ रहा था।

दरबारी ने अपने पैर एक झटके के साथ छुड़ा लिये और बोला—"बिच (Bitch) बड़ी पाक-साफ बनती है। समझती है· "

"मैं कुछ नहीं समझती" सीता ने वहीं घुटनो के बल घसिटकर फिर से दरबारी को पकड़ते हुए कहा—

"मैं तुम्हारी हूँ चदा ···नस-नस पोर-पोर तुम्हारी हू ···पर मैं एक विधवा मा की बेटी हू—मुझ से शादी कर लो फिर ···"

"कोई शादी-वादी नही, तुम मे जो कह दिया क्या वह काफी नही ? क्या मतर फेरे जरूरी है ? कानून की पकड़ उसकी ओट जरूरी है ?" और दरबारीलाल रुक गया जैसे अब भी उसे उम्मीद थी ·

"हा जरूरी हैं" सीता रोते हुए बोली—

"यह दुनिया मैंने तुमने नही बनायी है।"

दरबारी की आखिरी उम्मीद भी टूट गयी ! बोला—"मैं उस प्यार को नही मानता जिस मे बीच मे कोई पर्दा, कोई शर्त हो। आत्माओं का मिलना जरूरी है तो जिस्मो का मिलना भी। उसमें स्वय भगवान होते है। ऐसा शास्त्रों मे लिखा है !"

"लिखा होगा" सीता बोली—"सब तुम्हारी तरह इस बात को मानते होते · "

"मैं किसी की परवाह नही करता" दरबारी ने गुस्से से पैर जमीन मे मारते हुए कहा जो रेत मे धंस गये और फिर उन्हें खीचने रेत से निकालते हुए चल दिया !

सीता पीछे लपकी—"सुनो" · अभी दरबारी ने दीवार की हद नही फादी थी। अब भी वह उसके सहारे बैठ सकते थे और अधेरे को गले लगा सकते थे।

एक-दो लड़के उस खुले मैदान मे अनोखापन देख कर रुक गये। फिर चना वाला आया। जिसकी फेरी मे आग समदर से आने वाली हवा से हर

थोडी देर पर बढ़ती जाती थी--

अब के सीता ने न सिर्फ दरबारी के पैर पकड़े बल्कि अपना सिर और बगालो जुल्फे उन पर रख दी और नम आंखे भी, होंठ भी। दरबारी पैरों तक जल रहा था और अंदर की आग से कांप रहा था। पैर चूमती, उन पर आंसू गिराते हुए सीता ने थोड़ा उठ कर दरबारी की तरफ देखा और कहने लगी--"तुम समझते हो मैं किसी बर्फ और किसी पत्थर की बनी हूं? मेरा तुम में घुलमिल जाने को जी नहीं चाहता? तुम मुझ में लगते हो तो क्या मेरा अंग-अंग टूटने-दुखने नहीं लगता? पर तुम क्या जानो एक लड़की के दुख"

और फिर किसी अनजाने डर से कांपती हुई बोली--"मैं नहीं कहती यह दुख तुमने दिये हैं। यह भगवान ने दिये हैं। भगवान ही ने औरत के साथ बेइंसाफी की है"

"मैं सब जानता हूं' दरबारी ने अपने आपको छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा--"*मर्द सब सह सकता है, तौहीन (अपमान) नहीं सह सकता*..."

"किसकी तौहीन?"

दरबारी ने जवाब देने के बजाय सीता को ठोकर मारी और वह पीछे की तरफ जा गिरी। खुद वह लंबे-लंबे डग भरता हुआ रोशनियों की तरफ निकल गया--

सीता एक ऐसे डर से कांपी जा रही थी जो अपनी इस थोड़ी-सी जिंदगी में उसने कभी न देखा था। जिसका तजरबा उसने अपने पिता की मौत पर भी न किया था। मां की छाती में मुंह छिपाकर वह सब भूल गयी थी जैसे जलते हुए फोड़े के चारों ओर हल्की-हल्की उंगलियां फेरने से एक तरह की लकीर, एक किस्म का आराम आता है ऐसे ही मां के सिर पर हाथ फेरने से उसके सारे दुख दूर हो गये थे वहीं रेत पर पड़ी-पड़ी सीता दबी-दबी सिसकियां लेती रही। बीच में कभी-कभी वह सिर उठा कर देख लेती। कोई देख तो नहीं रहा। मदद के लिए तो नहीं आ रहा जैसे मुसीबत में पड़ी हुई औरत के लिए कोई बांका जरूर चला आता है सामने दीये की लौ में कोई चीज चमकी। सीता ने उठाई तो वह चांदी की डिबिया थी जो नीचे जा गिरी थी और अब--उसमें रेत चली आयी थी

सच तो यह था कि दरबारी सीता से प्यार करता था लेकिन उतना नही जितना सीता करती थी ! सीता तो जैसे इस दुनिया मे अपना नाम सार्थक करने आयी थी और अब अशोक वाटिका में पडी देख रही थी कि कोई ऊपर से संदेश मे अगूठी फेंके · लेकिन रामजी के जमाने से आज तक बीच मे क्या कुछ हो गया था। अब तो अंग्रेजी 'फन' चला आया था जिसका दरबारी पूरा रस लेना चाहता था।

घर मे जाली लग गयी थी। तीन दिन खूब ही परेशान करने के बाद सिख तिरखान छुट्टी कर गया था। साफ-सुथरे बरामदे मे बैठे हुए दरबारी खाली-खाली निगाहो से सड़क के उस मोड को देख रहा था जहा कभी काशनी और कभी सरौटी, कभी धानी और कभी जोगिया रग लहराया करते थे। पास दरबारी का भाजा महमूद या बनवारी मरकडे और टीन से बने हुए एक बेडोल खिलौने से खेल रहा था जिसमे उसके हाथ के कट जाने का डर था। शायद इसीलिए अदर से सतवती या कनीज भागी हुई आयी और आते ही बच्चे से उसका खिलौना छीन लिया। बच्चा रोने-मचलने लगा।

"है है" दरबारी ने विरोध किया—"क्या कर रही हो आपा ?"

"तुम चुप रहो जी" वह बोली—"तुमसे हजार बार कहा है, मुझे आपा मत कहा करो दीदी कहते क्या साप सूघता है ?"

"अच्छा जी" दरबारी बोला—"और असल बात की बात ही नही। देखो तो कैसे रो रहा है···ऐसे तो लार्ड किचनर भी पूरा बेडा डूब जाने पर नही रोया होगा·· दो उसे खिलौना "

"कैसे दू कही आख फोड ले—"

"सब बच्चे उल्टे-सीधे खिलौनो से खेलते आये है। कितनो की आख फूटी है।"

"जितना यह शैतान है कोई और भी है ?"

"सब माओ को अपना बच्चा इतना ही शैतान मालूम होता है।"

और महमूद या बनवारी बडी बेजारी (करुणा) से रो रहा था। घर भर को उसने सिर पर उठा लिया था। दरबारी ने ताक पर से जापानी बिल्ली उठा कर दी जो चाबी देते ही भागना और कलाबाजिया लगाना शुरू कर देती थी। जिसे

देख-देख कर बच्चे तो क्या बड़े भी खुश होने लगते थे लेकिन बच्चों को तो वही खिलौना चाहिए जो किसी ने छीना है दरबारी ने बुरे-बुरे मुह बनाये, कैसे-कैसे चू-चू, चा-चा किया। मुह मे उगली डाल कर हनुमान बना। फिर जानीवाकर, आगा लेकिन वह रो रहा था। उसे अपना वही खिलौना चाहिए था। दरबारी का जी चाहा उसे थप्पड़ मार दे। अगर बच्चे के और रोने का डर न होता तो वह जरूर मार देता। दरबारी ने बनावटी झल्ला कर कहा—"अब बद भी कर साले···"

अदर से आवाज आयी—"रोने दे यार।'

बच्चा रो रहा था। आखिर दीदी भाग आयी उल्टे पैरों—"हे राम!"

"हाय अल्लाह क्यों नही कहती?"

"भगवान के लिए तुम चुप रहो।"

"खुदा के लिए कहो तो "

फिर मनवती या कनीज जैसे खिलौना छीन करले गयी वैसे ही लौटा भी गयी—"ले मेरे बाप" उसने खिलौने को बच्चे के हाथ मे ठूसते हुए कहा और फिर जैसे उसकी दुखी हालत देख भी न सकती हो उसे उठाया, छाती से लगाया हिलोरे दिये कमीज से उसका मुह पोछा, नाक साफ की, चूमा-चाटा और उसके कहे मुताबिक "बडी ठडी पडी" फिर बहुत गालिया अपने आपको दी

"हाय मर जाये ऐसी मा न रहे इस दुनिया मे लाल को कितना रुलाया है?"

और फिर अपने पति या शोहर की तरफ देखते ही बरस पडी—"देखो तो क्या मजे से बैठे है?"

वह उठ खडे हुए खासे बेमजा दिखायी दे रहे थे!

दरबारी बोला—"अब चाहे हाथ नही गर्दन भी काट ले।"

"काट ले" दीदी बोली—"मरुगी मै···तुम लोगो को इतना-सा भी वह न होगा।"

"होगा या नही" दरबारी बोला—"कहते है नादान भी वही करता है जो दाना (बुद्धिमान) करता है लेकिन हजार झख मारने के बाद पहले ही छीनने

की बवकूफी न की होती।"

"हां मैं वेवकूफ हूं" दीदी कहती हुई बच्चे को अंदर ले गयी—"मां होना और अकल भी रखना अलग बातें हैं।"

और दीदी के कांधे पर सिर रखे बदमाश महमूद या बनवारी हंसता हुआ दिखायी दिया जैसे अपनी ताकत और क्षमता को अच्छी तरह से जानता हो !

जभी आरोरा सिनेमा की तरफ से आने वाली मोड़ पर नारंगी-सा रंग दो-तीन बार लहराया। दरबारी ने जल्दी से कपड़े ठीक किये सिर पर टोपी रखी और बाहर निकल गया—!

मोड़ पर सीता खड़ी थी। उसने एक बार दरबारी की तरफ ताका और फिर परे देखने लगी। उसकी आंखें कुछ और भी अंदर धंस गयी थीं। पलकें कुछ और भी नम हो गयी थीं।

"कहिए हुजूर··· क्या हुक्म है?" दरबारी ने पूछा!

सीता ने कोई जवाब न दिया। दरबारी को यों लगा जैसे सीता कुछ कांप-सी रही हो। दरबारी कुछ देर उसकी तरफ देखता रहा और बोला—

"अगर चुप ही रहना है तो फिर···" और वह लौटने लगा।

"सुनो" सीता यकायकी मुड़ती हुई बोली—"मुझे क्षमा कर दो। उस दिन मुझ से बड़ी भूल हो गयी।"

दरबारी ने रुक कर उसकी तरफ देखा—

"अब तो नहीं होगी?"

सीता ने इंकार करते हुए सिर हिला दिया।

"जहां कहूंगा मेरे साथ चलोगी?"

सीता ने स्वीकृति में सिर हिला दिया और मुंह परे करती हुई साड़ी के पल्लू से अपनी आंखें पोंछ लीं। दरबारी के बदन में खून का दौरा जैसे यकायकी तेज होने लगा। उसने अपने खुर्दुरे-से हाथ फैलाए और सीता का नर्म-सा हाथ पकड़ते हुए बोला—"तू तो ऐसे ही डर रही है सीते···तुझे देखकर मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं बड़ा नीच हूं।" सीता जैसे यही सुनना चाहती थी। बोली—

"नहीं · ऐसा क्यों?"

दरबारी और सीता वहीं पहुंच गये। शिवाजी पार्क में दीवार के नीचे ··दिन

डूब चुका था। आज आसमान पर कोई बादल भी न था जो जमीन की गोलाइयों से आसमान पर प्रतिबिंबित होने वाली रोशनी को इधर जमीन पर फेंक दे। इसलिए अंधेरे ने जल्दी ही दुनिया को लपक लिया। सामने महात्मा गांधी स्वीमिंग पूल के आसपास बने हुए जगने खाके बने और फिर मिट गये!

दरबारी के बढ़ते हुए प्यार के सामने सीता शर्मिदा-सी बैठी रही। दरबारी एकदम भन्ना उठा और बोला—"कुछ हमो बोनों भी ना " सीता को हंसना पड़ा।

दरबारी ने सीता की खोखली हंसी की नक्ल उतारी और सीता सचमुच ही हंस दी दरबारी हौसला पाकर बोला—"तुम्हें क्या सचमुच मुझ पर विश्वास नहीं?"

"यह बात नहीं" सीता बोली—"तुम मुझसे शादी कर भी लोगे, तो भी मुझे नफरत की निगाह से देखोगे समझोगे—मैं ऐसी ही थी।"

"नहीं सीते, मैं नहीं समझूंगा कभी नहीं समझूंगा।"

जभी कुछ लोग हाथ में लोहे की सलाखें लिये चले आये। दरबारी चौंका। उसकी तसल्ली हुई जब उन्होंने सलाखें रेते में मारनी शुरू कर दी। वह ब्योडे के उस दफीने को देख रहे थे जो दो-एक दिन पहले उन्होंने बरेते में दबाया होगा और अब समंदर में ज्वार आने से पहले उसे बरामद करना, इस्तेमाल में लाना चाहते थे। दरबारी और सीता उठकर जरा परे दीवार के दूसरे किनारे पर जा बैठे। मुड़कर देखा तो दीवार के ऊपर बबई के बर्तन माजने वाले 'रामा' लोग बैठे थे और आपस में ठट्ठा कर रहे थे। दरबारी ने देखते हुए भी न देखना चाहा। सीता घबरा रही थी, लजा रही थी, पसीना-पसीना हो रही थी। वह पूरी तौर पर दरबारी के हाथों में थी। आज उसका अपना कोई इरादा न था। वह तो किसी रूठे को मनाना चाहती थी और उसके लिए कोई भी कीमत देने को तैयार थी।

जभी कुछ मनचले—'ऐ मेरे दिल कहीं ' गाते हुए पास से गुजरे। फिर एक पुलिस मैन आया और दरबारी भन्नाकर उठ गया। उसने सूनी आंखों से आसपास के दृश्य को देखा और अंग्रेजी में एक मोटी-सी गाली दी और बोला—

"चलो सीते जूहू चलेंगे!"

"जुहू ?"

"हां। उठो। कँडेल रोड से टैक्सी लेते हैं।" सीता चुपचाप उठकर दरबारी के साथ चल दी! सीता और दरबारी जुहू के 'बीच' पर इधर-उधर फिर न सकते थे क्योंकि उसमें खतरा था। रोज कोई न कोई वारदात होती रहती थी। अभी कुछ ही दिन हुए एक क़त्ल हुआ था। कुछ गुंडों ने एक मियां-बीवी को जीवन-सागर के दो किनारों पर जा खड़ा किया था।

लेकिन उस दिन जुहू के सब होटल सब कॉटेज ग्राहकों से भरे पड़े थे।

कोई घंटे डेढ़-घंटे बाद दरबारी और सीता फोर्ट की तरफ जा रहे थे। रास्ते में सीता कोई बात करती थी, दरबारी कोई और ही जवाब देता था। देता भी था तो उखड़ा-उखड़ा असबद्ध। जबान में एक अजब तरह की तुतलाहट थी जैसे कोई नशे वाली चीज मुंह में रख ली हो जिससे जबान फूल गयी हो!

टैक्सी हाजी अली से होते हुए ताड़देव में दाखिल हुई। वहां से ओपेरा हाऊस होते हुए हार्नबाई रोड़ पर जा पहुंची जिसका नाम अब महात्मा गांधी रोड हो गया है। एक होटल पर पहुंचते हुए दरबारी ने मैनेजर से पूछा—"कोई कमरा है ?"

मैनेजर ने गौर से दरबारी की तरफ देखा जिसके चेहरे से मालूम होता था कि जैसे कोई वारदात करके आया है या करने जा रहा है। पीछे सीता खड़ी जमीन की तरफ देखते हुए थर-थर कांप रही थी। दोनों गुनाह के आदी न थे। कच्चे—बेरहम प्रकृति के हाथों गिरफ्तार वह दीवाने-से हो रहे थे। अभी मैनेजर ने पूछा—"आप कहां से आये हैं ?"

"जी ?" दरबारी ने यकायकी सोचते हुए कहा—"औरंगाबाद से।"

"ख़ूब!" मैनेजर ने पीछे सीता की तरफ और फिर दरबारी के स्याह चेहरे की तरफ देखते हुए कहा—"आपका सामान कहां है ?"

"जी। सामान तो नहीं है।"

"माफ कीजिये" मैनेजर ने दरबारी की तरफ यों देखते हुए कहा जैसे वह कोई गंदी और लिजलिजी चीज हो और बोला—"अपने पास कोई रूम नहीं।"

"क्या मतलब? अभी तो टेलीफोन पर·· ?"

बेयरा नं. 27 जो एक ट्रे पर वेफर, मूंग की दाल, सोडे की बोतलें और पानी

लेकर जा रहा था बोल पड़ा—"यह होटल इज्जत वालों के लिए है साहब।"

दरबारी कुछ कह न सका हालांकि वह जानता था, और पूरे विश्वास के साथ जानता था इस बेयरे का टिप एक रुपये से ज्यादा न था और रिस्पा (माननीय) मैनेजर साहब की इज्जत पांच रुपये से और आज यह सब के सब एकदम नेकी और इज्जत और शराफत के पुतले बन बैठे थे। वह इज्जत और शराफत के पुतले थे या नहीं लेकिन एक बात तय थी कि जिंदगी में कुछ भी कर गुजरने के लिए अभ्यस्त होने की जरूरत है। निगाहों में एक पेशेवर जैसी हिम्मत और बेबाकी (निडरपना) और बेहयायी लानी पड़ती है जिसके सामने विरोधी की शिष्टता, उसकी शराफत और साधुता भूठी पड़ जाती है दरबारी अपने अंदर कहीं कमजोर, कहीं बुजदिल था—वह एक बिना तराशा हुआ हीरा था—

लौटते हुए वह गालियां बक रहा था—अंग्रेजी में। जिन्हें वह होटल के इंतजाम करने वालों को सुनाना भी चाहता था और उनसे छिपाना भी—

"चलो सीता" दरबारी ने कहा—"फिर कभी···"

और दोनों टैक्सी पर बैठकर घर की तरफ चल दिये।

जिंदगी बदमजा हो गयी थी! पराजय का इतना एहसास दरबारी को कभी न हुआ था। उसकी निगाहों में कई लोग हीरो हो गये और बहुत से हीरो पैरों में आ गिरे!

आज उसका कहीं जाने का इरादा नहीं था। कोई प्रोग्राम नहीं था। हालांकि एक उचटेपन को महसूस करके वह दफ्तर से जल्दी चला आया था। थका-थका, टूटा-टूटा, अलसाया-सा! उस शाम की शिकस्त और बेहुर्मती के बाद एक तस्कीन का-सा एहसास था जो तस्कीन भी नहीं थी। यह आग या तो पैदा ही न होती। इसीलिए बड़े लोग ख्याल को बहुत महत्व देते हैं। या तो यह हजरत पैदा ही न हों और अगर हों तो आप इंसान की औलाद की तरह उन्हें भटक नहीं सकते, उनका गला नहीं घोंट सकते क्योंकि हर दो सूरतों में सजा मौत है। यह दिमाग किसी कोने में चुपके-दबके पड़े रहेंगे और उस वक्त आ लेंगे जब आप पूरे तौर पर निहत्थे होंगे, बिल्कुल बे-हाथ और पैर के—गुसुल दी जाने वाली मैयत की तरह—

दरबारी उस वक्त बरामदे में बैठा डान बास्को की दीवार के साथ उगे हुए पेडों को देख रहा था जिनकी छाव मे मोहल्ले के अमीरों की मोटरें सुस्ता रही थी। कुछ तो यह उन अमीर मजदूरों की थी जो घर से दफ्तर और दफ्तर से सीधे घर चले आते थे और बीबी के साथ झगडे ही में उनकी पूरी तसल्ली हो जाती थी और कुछ ऐसे लोगों की जिन्होने उन्हे चलते-फिरते बदकार औरतों का घर बना रखा था। उनके ड्राईवरो को शाम से ही गाड़ी चमकाने और मुह भी रखने की तनख्वाह चुपके से दे दी जाती थी। यह बेयरा नं० 28 थे।

दरबारी ने खीच-तानकर उस दिन होटल मे पैदा होने वाली निराशा का कार मे बदने वाली उम्मीद से सबध पैदा कर लिया। लेकिन क्या फायदा? उम्मीद को चमकाने-दमकाने से कार थोडे मिला करती है? बाप गिरधारीलाल मेहता तो पैसे को हवा भी न लगवाते थे। अगले जन्म मे भी साप बनकर दफीने पर बैठ जाने का इरादा था।

मालेह भाई या सरदारीलाल अपने बीवी-बच्चो के साथ अपने घर चले गये थे। पीछे ठूठ-सी बाजुओ वाली बे-बच्चा भाभी रह गयी थी जिसकी भैया से बच्चा न हो सकने पर तकरार ही रहती थी। वह कहती थी—तुम में नुक्स है और वह कहते—तुम मे। वह कहती तुम डाक्टर को दिखाओ वह कहते तुम अपनी जाच करवाओ और अनजन्मे बच्चे निराशा से उन्हे देखते रहते और अपना सिर पीट लेते—!

दरबारी पूरी तौर पर बोर हो चुका था। वह जानता था और थोड़ी देर घर मे रहेगा तो मा शादी की बातें करने चली आयेगी और वह शादी नही करना चाहता था। हा कुछ दिन तो जिंदगी देख ले। आखिर तो एक न एक दिन हर किसी की शादी होती ही है—

किस के साथ शादी? सीता लपककर उसके दिमाग मे आती थी। सीता वैसे ठीक थी लेकिन शादी के सिलसिले मे नही। वह बहुत संकोच और दबने वाली लड़की थी। सूरत से भी बुरी न थी। लेकिन बीवी—बीवी कोई और ही चीज होती है। उसे कुछ तो चुल-बुला होना चाहिए—इधर-उधर झाकना चाहिए ताकि मर्द कान से पकड़कर कहे—"इधर और फिर विधवा की बेटी?—मर्द से यों चिमटती है जैसे वह उसका शौहर नही बाप है!"

—मैं कहा किराये उगाहता फिरूगा ?

हा थोडी देर के प्यार के लिए सीता से अच्छी कोई नही। क्या जिस्म पाया है ?

जभी मिस्री दिखायी दी और बब्बल दिखायी दिया !

मिस्री दूर ही से 'बाबूजी' की तरफ उगली करती हुई आ रही थी और बब्बल वही से गू-गू, गा-गा करता हुआ हुमक रहा था ! फिर यकायक बब्बल मे जिदगी उछली जैसे गेंद जमीन पर से उछलता है और मिस्री को सभालना मुश्किल हो गया !

आज बब्बल खुदा के नही इसान के लिबास मे था। एक मैली-सी बनियान पहन रखी थी। हा नीचे अल्लाह ही अल्लाह था !

पास आते ही बब्बल ने दोनो हाथ फैला दिये—"कमीना जैसे मैं इसके लिए कुरमुरा लिये ही तो खडा हू।" जैसे अदर जाना और बाहर आकर उसके सामने टैक्स उसके सब्र की आखिरी हद है !

दरबारी कुरमुरा लेकर बाहर आया। उसे ख्याल आया—मिस्री एक औरत है और बब्बल उसका बच्चा। और यह सब कितना पवित्र है। गरीब लोगों में बाप होना तो है मगर महज तकल्लुफ की चीज !

जभी दरबारी का दिमाग तेजी से चलने लगा। वह एक दायरे मे घूमता और घूम-फिरकर वही आ जाता था। फिर जैसे उसके सामने से पर्दा उठने लगा। आखें फैलने और सिमटने लगी। दरबारीलाल ने आज वही से कुरमुरा बब्बल को दे दिया था ! जाने क्या बात थी जो आज दरबारी बब्बल को गोद मे नही ले रहा था। जैसे वह शरमा रहा था। लेकिन वह रबड की गेंद—बब्बल—जैसे वह दीवार के साथ लगकर फिर लौट आता। यह नही कि आज उसे कुरमुरा नही चाहिए था। उसे कुरमुरा भी चाहिए था और आसमान की बादशाहत भी। बब्बल हैरान हो रहा था—आज यह बाबू मुझे लेता क्यो नही ?

"आज तुमने कितने पैसे बनाए हैं मिस्री ···?" दरबारी ने कुछ झेंपते हुए पूछा !

"यही कोई चौदह आने।"

"क्यो सिर्फ चौदह आने क्यो ?"

"आज मेरा मर्द नागपाडे चला गया था" मिस्री ने बेबाकी से कहा ।

"तेरा मर्द ?" दरबारी ने हैरान होते हुए कहा—

"तुमने कोई मर्द कर लिया है—?"

मिस्री हंसी और बब्बल को दोनों बाजुओं में थाम कर दरबारी लाल के बराबर ऊंचा करते हुए बोली—

"यह है मेरा मर्द—मेरा कमाऊ मर्द—इसे आज इसकी मौसी पारले की चूना भट्टी ले गयी थी । यह बनियान दी जो यह हलकट पहनता ही नहीं । मो कथे झटकता है जैसे सारी धरती का बोझ लाद दिया—"

दरबारी समझा और हसने लगा । अभी तक वह बब्बल को अपने हाथों में नहीं ले रहा था और बब्बल कुरमुरा वगैरह सब भूल कर शोर मचा रहा था ।

मिस्री बोली—"नंगा रहने की आदत पड़ गयी तो बडा होकर क्या करेगा ?"

"यह ऐसा ही अच्छा लगता है मिस्री ।"

बब्बल जैसे हुमक-हुमक कर कह रहा था · · "झूठ—अच्छा लगता हूं तो फिर मुझे लेते क्यों नहीं ?" और अब तो वह बहुत ही शोर मचाने लगा था—"हों··· हों· ·हो···"

"बब्बल होता है तो तुम कितना कमा लेती हो ?" दरबारी ने पूछा ।

"यह" मिस्री बब्बल को नीचे करते हुए बोली । उसके बाजू थक गये थे—"यह होता है तो हमें तीन भी मिल जाते है—चार भी—"

दरबारी ने अपनी जेब से दस रुपए का नोट निकाला और मिस्री की तरफ बढाया—

"यह क्या बाबूजी?" वह बोली और उसका चेहरा लाल होने लगा !

"तुम लो ना" दरबारी बोला और फिर इधर-उधर देखकर कहने लगा—"जल्दी से ले लो, नहीं कोई देख लेगा···"

मिस्री ने इधर-उधर देखा । अब तक उसका चेहरा लाल सुर्ख हो चुका था । उसने जल्दी से दस का नोट लिया और इधर-उधर देख कर अपने नेफे में अडस लिया और उस फिकरे का इन्तजार करने लगी जो अब वह साल में मुश्किल से तीन-चार बार सुनती थी । लेकिन मिस्री का रंग स्याह हो गया जब उसने दरबारी की बात सुनी—

"तुम जानती हो मिस्री" दरबारी बोला—"मैं इससे कितना प्यार करता हूं—बब्बल से—अगर तुम इसे एक दिन के लिए मुझे दे दो—"

मिस्री कुछ न समझी

दरबारी ने कहा—"मैं इसे कलेजे से लगाकर रखूंगा मिस्री—एक मां की तरह, तुम्हारी तरह यह मुझे इतना अच्छा लगता है कि—बहुत ही अच्छा लगता है।" और फिर दरबारी ने हाथ बढाकर बब्बल को ले लिया।

बब्बल एकदम खुशी से उछल गया। दरबारी की गोद में आते ही वह कुर-मुरों के लिए गर्दन को यों इधर-उधर घुमाने लगा जैसे मोर चलते वक्त अपनी गर्दन को हिलाता घुमाता है! फिर उसके गोल-मोल गदराए हुए बाजू किसी साइकिल की तरह से चलने लगे। दरबारी ने कुरमुरे के कुछ दाने बब्बल के मुंह में डाले जिन्हें लेते ही वह आमतौर पर मां की तरफ लपका करता था लेकिन आज वह दरबारी ही के बाजुओं में शैतानी हरकतें करता रहा। कभी कहता छोड़ दो। नीचे उतारो। कभी पकड लो, छाती से लगा लो—बीच में उसने मां की तरफ देखा। हंसा भी। लेकिन मुंह दरबारी की तरफ कर लिया। मां को चिढाने लगा जैसे दरबारी को चिढाया करता था!

मिस्री अभी तक भौचक्की खडी थी और अविश्वास के भाव से बाप बेटे की-सी दोनों हस्तियों को देख रही थी।

"कहीं आपके कपडे खराब कर दिये तो।"

"तो क्या हुआ" दरबारी ने कहा—"बच्चों की हर चीज अमृत होती है।"

मिस्री की आंखें नम हो गयीं। पहले उसने सोचा था जिंदगी में बहुत ही नायाब चीज थोडी देर के लिए उसे मर्द मिल गया। अब उसने सोचा मेरे बच्चे का बाप मिल गया और पहली चीज से दूसरी बहुत बडी थी।

"मैं उसे खिलाऊंगा, पिलाऊंगा मिस्री" दरबारी ने वायदा किया—"तुम रात दस बजे के करीब इसे ले जाना।"

"अच्छा" मिस्री ने सिर हिला दिया।

मिस्री चली। फिर रुक गयी। मुडकर बच्चे की तरफ देखा जो दरबारी के बाजुओं में खेल रहा था और अपने चारों ओर दरबारी की बंद मुट्ठी खोलने की कोशिश कर रहा था और उसके न खुलने पर झल्ला रहा था। मिस्री ने आवाज

भी दी। बब्बल ने देखा भी। मगर आज उसे किसी बात की परवाह न थी। बाप की परवाह न थी तो मा की भी नही !

मिस्री फिर चली लेकिन जैसे उसका दिल वही रह गया। रुक कर फिर देखने लगी और जब उसे इस बात की तसल्ली हो गयी कि बब्बल रह लेगा तो वह जल्दी-जल्दी चली गयी ! कुछ दूर जाकर उसने नेफे मे से दस रुपए का नोट निकाला और उसकी तरफ यो देखा जैसे कोई अपने शौहर की तरफ देखती है !

दरबारी बब्बल को लिये अदर आया। बब्बल को कमरे की बहुत-सी चीजों मे दिलचस्पी पैदा हो गयी। हर चीज उसके लिए नयी थी। हर चीज को वह मुह में डाल कर नया तजरबा करना चाहता था। ऐसा तजरबा जिसकी कोई हद नही। ऐसा स्वाद जिसकी कोई सीमा नही। अभी मा अदर चली आयी और दरबारी के हाथ मे बच्चे को देख कर हैरान हो उठी। नाक पर उगली रखती हुई बोली—"हाय राम यह क्या ?"

"बब्बल मां—मिस्री का बेटा" दरबारी बोला—"मुझे बड़ा प्यारा लगता है।"

"उसकी मा कहा है ?"

"गयी। मैंने थोड़ी देर खेलने को लिया है उधार एक बार पैदा कर दिया फिर मा का क्या काम ?" दरबारी ने मा की तरफ देखते हुए कहा—

"जा रे जा" मा बोली—"छह-आठ महीने तक ही मा की जरूरत होती है फिर जैसे अपने आप तेरे ऐसे लोठे बन जाते हैं।"

"अच्छा मा" दरबारी ने कहा—"मैं इसे पोद्दार कालेज के सामने वाले मैदान मे ले जाऊगा जहां पास ही मुझे जगमोहन की किताबे भी लौटानी है। तू जरा इसे पकड़।"

मा ने झरझुरी ली—"हा—गदा" और हाथ हिलाते हुए बोली—"मैं तो इसे हाथ नही लगाती।"

भाभी जो कुछ देर पहले आकर खड़ी हुई बोली—"इतना ही शौक है तो अपना ही क्यों नही ले आते ? शादी कर लेते ?"

"नहीं" दरबारी ने भाभी पर चोट करते हुए कहा—"मुझे दूसरों ही के अच्छे लगते हैं।"

भाभी ने ठंडी सांस ली—"अब भगवान न दे तो कोई क्या करे ?"

दरबारी ने बब्बल को नीचे फर्श पर बिठा दिया जहां उसका ध्यान जर्मन सिलवर के एक चमचे ने अपनी तरफ खींच लिया था। दरबारी खुद अंदर चला गया और बब्बल चमचे को मुंह में डालता चूसता रहा। शायद वह कुछ और भी दांत निकाल रहा था।

यकायकी बब्बल को अपना आप अकेला महसूस हुआ। उसने अपने हाथ पहले मां फिर भाभी की तरह फैला दिये। मां तो छी-छी करती हुई अंदर चली गयी। भाभी एक क्षण के लिए ठिठकी। फिर जैसे अंदर के किसी उबाल ने उसे मजबूर कर दिया और लपककर उसने बब्बल को उठा लिया। और उसे सीने से लगा कर हिलने लगी जैसे किसी अपार सुख और शांति के झूले में पड़ी हो। बब्बल उसे गंदा नहीं लग रहा था। मन ही मन में उसने बब्बल को नहला-धुलाकर एक भिखारन के बेटे से किसी रानी का बेटा बना लिया था और अंदर ही अंदर उसने सैकड़ों रेशमी और सूती फ्राक बना डाले थे और सोच रही थी इतना खूबसूरत है, मैं इसके लिए लड़कियों वाले कपड़े बनवाऊंगी—

अंदर पहुंचकर दरबारी ने सूटकेस निकाला। उसमें कुछ कपड़े रखे और फिर उसके ऊपर कुछ किताबें। फिर 'धप' से सूटकेस बंद किया और बैठक की तरफ उमड़ा!

बैठक में पहुंचा तो बब्बल हमेशा की तरह छातियों में सिर दिये हुए था। दरबारी के पहुंचते ही उसने मुंह निकाला और एक विजेता की तरह दरबारी की तरफ देखने लगा। फिर अगले ही पल जाने किस भाव, किस गिनती से उसने अपने पूरे पर दरबारी की तरफ फैला दिये। दरबारी ने बढ़कर एक हाथ में बब्बल को उठाया। दूसरे में सूटकेस थामा और "अच्छा भाभी " कह कर निकल गया!

दादर पहुंच कर रेडीमेड कपड़ों की दुकान से दरबारी ने बब्बल के लिए एक कमीज खरीदी और साथ एक नेकर भी। कमीज तो जैसे-तैसे बब्बल ने पहन ली लेकिन नेकर पहनते वक्त उसने बाकायदा शोर मचाना, चीखना-चिल्लाना शुरू

कर दिया था। जितनी देर भी वह खड़ा रहा बराबर अपनी टांगों से साइकिल चलाता रहा। अभी हुमका फिर गिरा। दरबारी एक हाथ से पकड़ता तो वह दूसरे हाथ की तरफ लुढ़क जाता और फिर मुंह उठाकर दरबारी की तरफ हैरानी से देखता जैसे कह रहा हो—

अजीव आदमी हो—एक बच्चा भी पकड़ना नहीं आता !

फिर यकायक बिजली के एक कुमकुमे ने उसका ध्यान अपनी तरफ खींच लिया! वह ऊपर की तरफ हुमका। बिजली के डर से दरबारी ने हाथ ऊपर किया ही था कि बब्बल ने पास चलते हुए टेबुल फैन की जाली में अपनी उंगली जा डाली। दुकानदार ने लपककर हाथ हटा लिया नहीं तो जनाब की उंगली उड़ गयी थी। झटके से हाथ परे करने पर उसने रोना शुरू कर दिया और जब दरबारी ने उसे गोद में उठाया तो वह शिकायत के लहजे में पहले दरबारी और फिर दुकानदार की तरफ देख रहा था और उसकी तरफ हाथ उठा रहा था जैसे कह रहा हो—इसने मुझे मारा !

टैक्सी में बैठते ही बब्बल कुछ झल्ला-सा गया। असल में उसे नेकर की वजह से तकलीफ हो रही थी। वह 'जिंदगी-भर' यों कसा न गया था। दरबारी ने उसे सीट पर बिठाने की कोशिश की लेकिन वह तकले की तरह अकड़ गया। जैसे कह रहा हो—तुम गाडी पर बैठो मैं तुम पर बैठूंगा। नहीं मुझे लेकर चलो—बाजार में जहां लोग आ जा रहे थे। फिर उसने जोर से ऊपर-नीचे होकर आखिर नेकर निकाल ही दी और उस पर कूदते हुए उसे यूं चुरमुर कर दिया कि कोई स्त्री उसके बल न सीधे कर सकती थी और अब—नेकर निकाल देने के बाद वह खुश था। एक अजीब किस्म की आजादी का एहसास हो रहा था उसे जब वह खिडकी में खड़ा सारी दुनिया को देख और दिखा रहा था !

दरबारी जब सीता के यहां पहुंचा तो वह घर पर न थी। दरबारी ने सिर पीट लिया। मां ने बताया वह प्रभा देवी में कुमुद से मिलने गयी है। प्रभा देवी का इलाका कोई दूर न था लेकिन कुमुद के घर का कैसे पता चले ? पूछता तो मां कहती—क्यों काम क्या है ? इसलिए खामोश ही रहना अच्छा था।

उस पर यह एक और मुसीबत—मां बताने लगी पहले माले पर रहने वाले सिंधी ने 'नोस्ट' दे दिया है। नोटिस दे दिया है तो वह क्या करे ? इस वक्त तो

हालात ने उसे नोटिस दे दिया है। कुछ देर बैठा वह मा की बूढी बातें सुनता रहा और बताता रहा कि बब्बल उसका भाजा है। बडा प्यारा-दुलारा बच्चा है लेकिन मा को जैसे कोई दिलचस्पी न थी। उसने सिर्फ एक बार कहा—'क्यों रे?" बब्बल ने जवाब भी दिया। लेकिन मा ने आगे बात न चलायी। बब्बल को मा की बोली मालूम थी लेकिन मा बब्बल की बोली भूल चुकी थी। वह फिर अपने रोने ले बैठी—"कमेटी कहती है हर साल इतने पैसे मरम्मत पर लगाया करो। अब कोई रोटी खाये कि मरम्मत करवाये। क्या-क्या कानून पास हो गये हैं। कांग्रेस सरकार तो डूबने को आयी है। अष्टग्रही मे क्या होगा? मैं तो जगाधरी मायके जाती हू तुम शादी कब करोगे?"

कुछ ही देर मे मा बोर हो गयी। बोली—"सीता पता नही आती है कि नही आती। तुम टैक्सी पर तो आये ही हो। मुझे जरा माहिम तक छोड दो "

"मैं माहिम की तरफ नही जा रहा माजी—"

"किधर जा रहे हो?"

"शहर की तरफ।"

"ठीक है" मा बोली—"वहा भी परेल के पास मुझे काम है हिंडोले आ रहे हैं ना। मुझे मौली खरीदनी है, मौली जानते हो क्या होती है?"

दरबारी सिर पीट कर रह गया। बब्बल तग करने लगा था। उस पर बाहर टैक्सी का मीटर चढ रहा था। उसे कुछ न सूझा तो दिल ही दिल मे माथे पर हाथ मारकर बोला—

"चलो माजी मैं आपको परेल छोड दू। रास्ते मे कुमुद का घर है ना "

"है तो" मा उठते हुए बोली—"पर आग लगे—यह बाजार बबई के बीस बार गयी हू तो बीस बार ही घर भूल गयी—"

"चलो इक्कीसवी बार भी भूल जाना।"

"पर तुम सीता को ले कहा जा रहे हो?"

"दीदी के पास कहा ना "

"सुना है वह मुसलमान है?"

"क्या बात करती हैं माजी?" दरबारी ने जैसे किसी गिरते हुए पहाड को

थाम लिया—"सतवंती नार किसी मुसलमान औरत का नाम हो सकता है···?"

इससे पहले कि मा पूरे तौर पर दरबारी पर हावी हो जायें सीता चली आयी। बहार के एक झोंके की तरह आंचल में पत्ते ही पत्ते, फूल ही फूल लिये। उसने आयरन रंग की एक चोली चुस्त किये हुए थी और बेगमी चावलों के कलर की-सी हैंडलूम साड़ी लपेट रखी थी जो जिस्म के सारे उभारों को एक आजाद, एक तूफानी से बहाव में ले आयी थी। खुद वह बहार का झोंका थी लेकिन दरबारी के लिए पतझड़ का पैगाम। उसके अंदर के फूल-पत्ते एक-एक करके खुश्क होने, गिरने और कुछ आंधियों के साथ उड़ने लगे—और जो डाल पर रह गये थे सूख कर आपस में टकराते, दिल को धड़काने लगे—

सीता ने आते ही पहले बब्बल को देखा और आंखें फैलायीं—"किसका बच्चा है?" और फिर लपक कर बच्चे के पास जा पहुंची—"है··· कितना प्यारा है ··· बबलू-सा"

"हां" दरबारी ने कहा—"बब्बल इसका नाम है। तुम्हें कैसे पता चला?"

"मुझे क्या मालूम?" सीता ने ताली बजाते, बब्बल को अपनी गोद में बुलाते हुए कहा—

"हर बच्चे की शकल से उसके नाम का पता चल जाता है···तुम्हें नहीं चलता?"

बब्बल ने पहले शक ओ-शुबाह की नजर से सीता की तरफ देखा और फिर मुस्करा दिया। जैसे बरसों से जानता हो और फिर तराजू के अंदाज में बाजू उठा दिये। सीता ने उसे उठा लिया। छाती से लगा लिया और सब औरतों की तरह थोड़ा झूल गयी। बस रिश्ता कायम होने ही बब्बल ने छोटी अलमारी पर पड़ी हुई किसी टोकरी की तरफ इशारा किया और 'ऊं-ऊं' करने लगा जैसे कह रहा हो—उसमें कुछ है मेरे लिए··?

दरबारी की निगाहों में ख्वाब थे और जब सीता ने देखा तो उसकी नजरों में सेजें थीं और बच्चे। शायद बब्बल सीता की आंखों में से प्रतिबिंबित हो रहा था। दरबारी ने कुछ उतावले होकर कहा—"घंटा भर से तुम्हारी राह देख रहा हूं·· दीदी ने बुलवाया है···"

सीता ने मा की तरफ देखा—"मां—?"

"हां बेटा" मां ने इजाजत देते हुए कहा।

"ठहरो मैं इसके लिए कुछ बिस्कुट।"

दरबारी ने बेसब्री से कहा—

"होते रहेंगे तुम चलो · मेरे पास इतना-सा भी वक्त नहीं है ··" और सीता बब्बल के गाल रगड़ती हुई चल दी। कहती हुई—

"ऐ तू तो थोना-सा, मोता-सा, गोता-सा बबलू है।"

और सीता दिल मे इतना-सा बमबमा लिये बगैर चल दी। बाहर टैक्सी को देखते हुए बोली—"इसमे चलेंगे ?"

दरबारी ने सिर हिला दिया। टैक्सी ड्राईवर जो बेचैन हो रहा था खुश हो गया। पीछे की तरफ लपककर उसने टैक्सी का दरवाजा खोला और बब्बल और सीता और आखिर दरबारी बैठ गये। जभी सीता की निगाह सूटकेस पर पड़ी एक शक की परछाई उसके चेहरे पर से गुजरी।—"यह सूटकेस ?"

"हां" दरबारी ने कहा।

"दीदी के यहां जा रहे हो ?"

"कहीं भी जा रहा हूं तुम्हें इससे क्या" और फिर एक गुस्से से भरी निगाह सीता पर डालते हुए बोला—"तुमने कहा नहीं था···जहां भी ले जाओगे जाऊंगी"

सीता को कुछ बातें समझ मे आने लगीं। दरबारी के चेहरे की रंगत ·सूटकेस बच्चा ·उसने डर की हालत मे बब्बल को सीट पर बिठा दिया और नथने फुलाती हुई बोली—"हां कहा था—"

सीता ने फिर एक तेज-सी नजर दरबारी पर फेंकी और फिर अपनी निगाहें चुरा ली। उसे अपना आप जैसे कुछ गंदा-सा लगा। साड़ी के पल्लू से उसने अपना लाल होता हुआ चेहरा पोंछा। दरबारी ने नशे मे डूबी हुई निगाह सीता पर फेंकते हुए कहा—"सीता तुम फिर लगी हो उस दिन की तरह करने।"

सीता डर गयी—"नहीं तो" वह बोली।

टैक्सी हाजी अली के पास से जा रही थी। आज समंदर का वही रंग था जो मानसून मे पहले होता है। मैला-कुचैला, गंदा और गीला शायद दूर कहीं बरसात शुरू हो चुकी थी और अनगिनत गंदे नाले और नदियां समंदर मे पड़ रही थीं !

फिर वही सफर—ताडदेव, ओपेरा हाउस, महात्मा गाधी रोड, फ्लोरा फाउटेन—और एक होटल । आज वह होटल नही था जहा वह उस दिन गये थे।

सामने एक बेयरा खडा था। दरबारी सीता और बब्बल को देख कर लपका। बडे ही इज्जत के साथ उसने टैक्सी का दरवाजा खोला। दरबारी उतरा। टैक्सी वाले को पैसे दिये और फिर बेयरे को सूटकेस उतारने का इशारा किया ''सीता उतरी। उसकी आखें झुकी-झुकी-सी थी और बब्बल को अपने बाजुओं मे लेने से जैसे उसे कुछ सकोच हो रहा था।

"उठाओ ना''" दरबारी ने बब्बल की तरफ इशारा करते हुए कहा—"बच्चा हमेशा औरत उठाती है।"

सीता ने कुछ बेबसी की हालत मे बब्बल की तरफ देखा जिसे वह अभी उठाना न चाहती थी लेकिन दरबारी और उसके गुस्से से डरती थी। मर्द और उसकी वहशत से डरी हुई थी। उसने बब्बल को उठा तो लिया लेकिन उससे प्यार न कर सकती थी' 'उसे कच्चे-कच्चे, खट्टे-खट्टे, गदे-गदे डकार-से आने लगे थे।

होटल ऊपर था। दरबारी ने तो यह भी तो न पूछा—कमरा है? '' अब कोई जरूरत न थी। वह अपनी निगाहो मे वही पेशावरी लोगो की तरह वाली बेबाकी पैदा कर चुका था जिसकी अब जरूरत भी न थी।

सीता ने देखा—सीढियो पर जैसे किसी ने तेल और घी के ड्रम के ड्रम लुढका दिये है। रस्सा जिसकी मदद से न जाने कितने लोग ऊपर गये थे हाथों के लगने से मैला और गदा हो रहा था। पूरे वातावरण से किसी बासी देगी की बू आ रही थी।

रस्से को हाथ लगाए बगैर सीता दरबारी के पीछे-पीछे ऊपर पहुच गयी।

मैनेजर साहब ने तीनों को आते देखा तो उनके चेहरे पर एक अजीब पवित्र-सी चमक चली आयी। वह जल्दी से काउटर के पीछे से निकला और दोनो हाथ कमरे की तरफ स्वीप करते हुए बोला—"वेलकम सर · "आज सब कमरों के दरवाजे सीता और दरबारी पर खुले थे।

दरबारी ने मैनेजर से कहा—

"हम दिल्ली मोरा से आये हैं और इस वक्त ट्राजिट में है। रात ग्यारह बजे

वाली पजाब मेल से आगरे जायेंगे जहा ताजमहल देखेंगे जो शाहजहा ने अपनी चहेती मुमताज के लिए बनवाया था। असल मे उसे मुमताज से इतनी मोहब्बत न थी जितना जुर्म का एहसास था क्योंकि उससे उसने सोलह-अठारह बच्चे पैदा किये थे और अपनी इस ज्यादती का उसे बदला देना चाहता था " पर इन बातों की जरूरत ही न थी। मैनेजर 'सर' 'सर' करता रहा। जरूरत पडने पर हसता भी। जरूरत से ज्यादा भी हसता—सिर भी हिलाता झुक-झुक कर आदाब भी बजा लाता।

रजिस्टर पर दस्तखत करने के बाद दरबारी कमरे मे पहुंचा तो बब्बल के हाथ मे बिस्कुट थे।

"यह किसने दिये ?"

"बेयरे ने" मीता बोली।

"और यह—आईसक्रीम की कोन ?"

"पड़ोस का एक मेहमान दे गया है।"

और बेयरा बच्चे के लिए कटोरी मे दूध ला रहा था जैसे वह सदियों से बेकार था और आज यकायकी उसे कोई काम—ऐसा रोजगार मिल गया था जो कभी खत्म होने वाला न था जिसमे कभी छुट्टी नही होती जिसके सामने टिप्स की आमदनी और पुकार कोई माने न रखते थे। वह खुश था और दूध की कटोरी हाथ मे थामे वह यों खड़ा था जैसे वह किसी को नही कोई उस पर एहसान कर रहा है। वह जाना टलना न चाहता था।

"अच्छा बेयरा" दरबारी ने बेरहमी से बेयरे को झटकते हुए कहा—"हम थक गये है। देखो न कब से चले हैं। अब थोड़ा आराम करेंगे।"

"जी" बेयरा बोला—"मेरी जरूरत पड़े साहब "

दरबारी ने झट से दरवाजा बद कर लिया और अदर से चिटखनी चढ़ा दी। वह सचमुच थक गया था। उसने एक गहरा सास लिया और जाकर बिस्तर पर बैठ गया। उसे मीता का बब्बल को दूध पिलाना बुरा लग रहा था लेकिन वह कुछ कह न सकता था। कहता तो बुरा लगता। बहुत ही बुरा—

जभी अपने गतटरेपन मे बब्बल ने कटोरी को हाथ मारा और दूध नीचे गिर गया- -

"हुन गंदा कहीं का" सीता ने कहा और रूमाल से उसका मुह पोंछने और फिर भाड़न मे फर्श साफ करने लगी। बब्बल को हाथ लगाने की देर थी कि वह सीता की बाह पकड कर खडा हो गया।

सीता अदर ही अदर काप रही थी। दरबारी कुछ शर्मिंदा-सा नजर आने लगा था!

"यह होटल कोई इतना अच्छा नहीं" वह यों ही-सी कोई बात करने के लिए बोला।

"ठीक है" सीता बेपरवाही से बोली।

फिर दरबारी ने नाक सिकोड कर इधर-उधर सूघा और कहने लगा—"कोई बू-सी आ रही है"·· और फिर उसने पसीने के कतरे अपने माथे से पोछ डाले और बोला—"तुम अब उसे छोडो भी···"

सीता ने बब्बल को बिठाने की कोशिश की लेकिन वह तकला हो गया।

दरबारी ने एक ऐश-ट्रे बब्बल के पास ला रखी और बब्बल उसे खिलौना समझ कर लपका। वह बैठ गया और खेलने लगा ·· वह क्या करता?

फिर आगे बढकर दरबारी ने एक अनाड़ी बेढगे भोंडे अंदाज मे सीता का हाथ पकड लिया।

"भगवान के लिए" सीता बोली और उसने बब्बल की तरफ इशारा किया!

लेकिन दरबारी की आखो पर जैसे कोई चर्बी छायी हुई थी। उसे कुछ न दिखायी दे रहा था। सिर्फ एक ही एहसास था कि वह है और एक तरोताजा शादाब लडकी। वह तेजी से सास ले रहा था। उसने जब अपने बाजू सीता के गिर्द डाले तो वह गोश्त-पोस्त के नहीं लकडी के मालूम हो रहे थे और सीता के नर्म और मासल जिस्म में खबे जा रहे थे। सीता ने कोई विरोध नहीं किया। दरबारी की बाहों मे कापती हुई वह नजर के साथ बेदम होती जा रही थी··· आज वह खुद भी बेसहारा हो जाना चाहती थी!

बब्बल ने डर कर दोनो की तरफ देखा।

सीता को अभी तक रोते देख कर दरबारी कह रहा था ·· 'वही मा जरा हुआ न ··तुम मुझ से प्यार नहीं करती?"

"मैं तुम से प्यार नहीं करती?—मैं तुमसे।"

बब्बल ने ऐश-ट्रे की राख मुंह पर मल ली थी और अब रोने लगा था।

"चुप बे" दरबारी ने नफरत और गुस्से के साथ कहा।

सीता चौंकी। वह बाहर भाग जाना चाहती थी लेकिन—उसके हाथ, बाजू जवाब दे चुके थे…

दरबारी की डांट के बाद बब्बल ने डर कर चिल्लाना शुरू कर दिया। दरबारी एकदम आग-बबूला होकर लपका जैसे उसका गला घोंट देगा। मर्द और औरत के बीच इस भद्दी आवाज को हमेशा के लिए खत्म कर देगा। बब्बल के पास पहुंचते ही उसने जोर से एक थप्पड़ बब्बल को मार दिया। बब्बल लुढ़क कर दूर जा गिरा।

"शर्म नहीं आती ?" कहीं से मिस्री की आवाज आयी।

दरबारी ने पलट कर देखा—मिस्री नहीं सीता थी जो किसी अनजानी ताकत के आ जाने से अधनंगी हालत में उठकर बब्बल के पास चली आयी थी और उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया था। बब्बल सीता की छातियों में सिर दिये रो रहा था, सिसकियां ले रहा था। फिर उसने अपना मुंह उठाया और बंधी हुई घिग्घी के बावजूद दरबारी की तरफ इशारा करने लगा जैसे कह रहा हो इसने मुझे मारा !

दरबारी को महसूस हुआ जैसे इसने साफ-सुथरे कपड़ों में भी वह गंदा है। वह सीता से उतना शर्मिंदा न था जितना बब्बल से · लेकिन अपने आपको सही समझने की उसके पास अब भी बहुत-सी दलीलें थीं।

जभी दरबारी ने अपना सिर जैसे किसी दलदल में से उठाया और बब्बल की तरफ देखने लगा। वह सीता की तरफ देख भी न सकता था क्योंकि वह नंगी थी और बब्बल से अपने नंगेपन को छिपा रही थी और दरबारी को देख रही थी जैसे वह दुनिया का सबसे अधम इन्सान था जो उस कमीनी हद तक उतर आया था। फिर उसकी निगाहें सवाली थीं। वह कुछ भी नहीं समझ रही थी।

लज्जा, आत्मग्लानि और क्षोभ में दरबारी ने अपना हाथ बब्बल की तरफ बढ़ाया। सीता का बस चलता तो वह कभी बब्बल को गंदे और नापाक हाथों में न देती। लेकिन वह क्या करती। बब्बल खुद ही बेचैन होकर दरबारी के बाजुओं में लपक पड़ा और रोते हुए उधर सीता की तरफ इशारा करने लगा। जैसे कह रहा

हो—इसने मुझे मारा ···अब दरबारी के पास कोई दलील न थी और न सीता के पास—

"सीता" दरबारी ने कहा !

सीता कुछ न बोली। वह रो भी न सकती थी। जल्दी से उसने साड़ी का पल्लू खींचा और अपना जिस्म ढक लिया।

"सीता" दरबारी बोला—"तुम कभी ·· कभी मुझे माफ कर सकोगी ?" और फिर शक-ओ-शुबहे के अदाज मे उसकी तरफ देखते हुए बोला—"हम पहले शादी करेंगे।"

और फिर उसने हिम्मत करके अपना दूसरा बाजू सीता के गिर्द डाल दिया। सीता ने दरबारी की आखो मे देखा और फिर एक अधीरता के साथ दरबारी से लिपट गयी और उसके कांधे पर सिर रख कर बच्चों की तरह रोने लगी। उसके आसूओं मे दरबारी के आसू भी शामिल हो गये। दोनों के दुख एक हो गये और सुख भी··

उन दोनों को रोते देख कर बब्बल ने रोना बंद कर दिया और हैरानी से कभी सीता और कभी दरबारी की तरफ देखने लगा ··जभी यकायकी वह हंस दिया जैसे कुछ हुआ ही नही और अपने कुरमुरे के लिए दरबारी की मुट्ठी खोलनी शुरू कर दी···।

टर्मिनस से परे

पंजाब मेल चली तो खासी मुस्त रफ्तार से प्लेटफार्म के हाते से बाहर निकली। देर तक मोहन जाम को अपनी नाजुक-सी बीवी सुमित्रा का बदन एक सादी-सी हैंडलूम की साड़ी में लिपटा हुआ नजर आता रहा। सुमित्रा कम्पार्टमेंट के दरवाजे में खड़ी थी जबकि मोहन एक स्टाल के बराबर खड़ा आखिर दम तक अपना रूमाल हिलाता रहा।

गाडी चलने से पहले सुमित्रा की आखे नम हो गयी थी। शब्द हमेशा की तरह बेकार हो गये थे—"पीछे घर का ख्याल रखना"—"होटल की रोटी मत खाना"—"हफ्ते में एक नहीं दो खत जरूर लिखना"—यह सब बातें आखो की जबान के सामने गूगी हो गयी थी और उन्होंने मोहन जाम जैसे आदमी के दिल को भी नर्म कर दिया था हर बीवी अलग होने के पहले आखो ही आखो में कोई ताईद (स्वीकृति) मागती है। उस वक्त तो कोई झूठ भी बोल दे लेकिन कुछ लोग मोहन ने कुछ न कहा। वह पहले तेज-तेज और फिर आहिस्ता-आहिस्ता रूमाल हिलाता रहा। यह हरकत एक रसम बन चुकी थी लेकिन अच्छी मालूम होती थी। दिल कहा, क्यो और किस के लिये धड़क रहा है। यह तो दिखायी नहीं देता, अलबत्ता रूमाल नजरो के धुंदलके में डूबने तक बराबर उस आदमी को दिखायी देता है जो—जा रहा है।

यह सफर है ही बकवास। मैं तो जब भी कहीं जाने लगता हू मेरी तबीयत गिर-सी जाती है। स्टेशन पर भीड़, महज भीड़ की वजह से आदमी अकेला रह जाता है। फिर आगे जाने के लिए गाडी थोडा पीछे हटती है। फिर कोई सीटी, कोई आवाज—"अरे-अरे गाडी छूट गयी, मेरा सामान रह गया"—आखिर कोई किसी का नहीं यह दुनिया जब एक बार तो जी चाहता है आदमी टिकेट-विकेट लौटा दे और घर जाकर मजे में बैठ जाये—चाहे बीवी से लडे ही!

जिदगी की विजय यही है कि उदासी के साये में भी कहीं खुशी की भावनायें रेंगती रहे और गाडी के छूटते ही लपक कर सामने आ जायें और उनकी रोशनी में उदासिया गायब हो जायें। कभी जिनके साथ प्रोग्राम बनते थे अब उनके बगैर

बनने लगें ··· मोहन ने एक गहरा सास लिया—चलो दो महीने की गये छुट्टी। कुछ चीजो का न होना ही एक तरह का होना है। सुमित्रा लौटेगी तो एक बार उसे भी पता चल चुका होगा कि मेरे बगैर जिंदगी के क्या माने है ? फिर से गारत करने के लिए उसका स्वास्थ्य भी अच्छा हो चुका होगा। फिर वह कैसे लिपटेगी ·· उलटा मुझ ही से कहेगी—"तू कहा चली गयी थी मोहनी ?"

मोहन विक्टोरिया टर्मिनेस के प्लेटफार्म से बाहर निकलने के लिए मुड़ा तो उसी तरफ से कोई दूसरी गाडी प्लेटफार्म पर आ रही थी। मोहन चौक गया। उसे यू लगा जैसे सुमित्रा उस गाडी से गयी और इससे लौट आयी है। जभी उसने एक मोटी औरत को कपार्टमेंट के दरवाजे मे फंसे हुए देखा, मुस्कराया और चल दिया। उसे रेडियो क्लब जाना था। ताश के कुछ मदारियो के साथ फ्लाश खेलने के लिए, जहा बीच-बीच मे कभी-कभी पान की बेगम जिंदा हो जाया करती थी और समदर से आने वाले झक्कड मे उसकी उन्नाबी साडी का पल्लू किसी न किसी को अपनी लपेट मे ले लिया करता था। पल्लू के हटाये जाने तक साडी मे लिपटे हुए एक जिस्म के बजाय दो का एहसास होने लगता।

मोहन जा रहा था। अनजाने में घर और कार की चाबिया उसके बाएं हाथ की उगली पर घूम रही थी। दाया हाथ पतलून की जेब मे था जिसमे वह प्लेटफार्म का टिकेट टटोल रहा था। जभी उसकी नजर सामने पड़ी।

"अच्ची !" वह रुकते हुए बोला !

मोहन अचला को जानता था लेकिन कोई खास इतना भी नही। अचला के शौहर राम गदकरी को तो वह शायद जिंदगी मे एक-आध बार ही मिला होगा लेकिन अचला से अकसर मिष्टान्न मे मुलाकातें हुआ करती थी, जहा वह अपनी एक बदमाश-सी सहेली—देवी के साथ वेजीटेरियन खाना खाने आया करती थी। नमस्ते-नमस्ते के अलावा मोहन जाम और अचला गदकरी के बीज आठ-दस नही तो बारह-पंद्रह फिकरे हुए होगे जिनसे पता चला तो सिर्फ इतना कि वह भी कोलाबा मे रहती है। फर्क यह था कि मोहन 'कफ परेड' के एक अच्छे से फ्लैट मे रहता था और अचला कारमूर्ये पर की एक पुरानी बिल्डिंग मे रहती थी !

शायद मोहन उसे 'अच्ची' के नाम से न पुकारता लेकिन देवी ने मोहन का उससे परिचय ही इसी नाम से करा दिया था। देवी को मोहन अच्छी तरह जानता

टर्मिनस से परे

पंजाब मेल चली तो गाड़ी गुस्त रफ्तार से प्लेटफार्म के हाते से बाहर निकली। देर तक मोहन जाम को अपनी नाजुक-सी बीवी सुमित्रा का बदन एक सादी-सी हैंडलूम की साड़ी में लिपटा हुआ नजर आता रहा। सुमित्रा कंपार्टमेंट के दरवाजे में खड़ी थी जबकि मोहन एक स्टाल के बराबर खड़ा आखिर दम तक अपना रूमाल हिलाता रहा।

गाड़ी चलने से पहले सुमित्रा की आखे नम हो गयी थी। शब्द हमेशा की तरह बेकार हो गये थे—"पीछे घर का ख्याल रखना"—"होटल की रोटी मत खाना"—"हफ्ते मे एक नही दो खत जरूर लिखना"—यह सब बाते आखो की जबान के सामने गूगी हो गयी थी और उन्होंने मोहन जाम जैसे आदमी के दिल को भी नर्म कर दिया था हर बीवी अलग होने के पहले आखो ही आखो मे कोई ताईद (स्वीकृति) मागती है। उस वक्त तो कोई झूठ भी बोल दे लेकिन कुछ लोग मोहन ने कुछ न कहा। वह पहले तेज-तेज और फिर आहिस्ता-आहिस्ता रूमाल हिलाता रहा। यह हरकत एक रसम बन चुकी थी लेकिन अच्छी मालूम होती थी। दिल कहा, क्यो और किस के लिये धड़क रहा है। यह तो दिखायी नही देता, अलबत्ता रूमाल नजरो के धुंदलके मे डूबने तक बराबर उस आदमी को दिखायी देता है जो—जा रहा है।

यह सफर है ही बकवास। मैं तो जब भी कही जाने लगता हू मेरी तबीयत गिर-सी जाती है। स्टेशन पर भीड़, महज भीड़ की वजह से आदमी अकेला रह जाता है। फिर आगे जाने के लिए गाड़ी थोड़ा पीछे हटती है। फिर कोई सीटी, कोई आवाज—"अरे-अरे गाड़ी छूट गयी, मेरा सामान रह गया"—आखिर कोई किसी का नही यह दुनिया जब एक बार तो जी चाहता है आदमी टिकेट-विकेट लौटा दे और घर जाकर मजे मे बैठ जाये—चाहे बीवी से लड़े ही।

जिंदगी की विजय यही है कि उदासी के साये मे भी कही खुशी की भावनाये रेंगती रहे और गाड़ी के छूटते ही लपक कर सामने आ जाये और उनकी रोशनी मे उदासिया गायब हो जाये। कभी जिसके साथ प्रोग्राम बनते थे अब उसके बगैर

बनने लगें "मोहन ने एक गहरा सांस लिया—चलो दो महीने की गयी छुट्टी। कुछ चीजों का न होना ही एक तरह का होना है। सुमित्रा लौटेगी तो एक बार उसे भी पता चल चुका होगा कि मेरे बगैर जिंदगी के क्या माने है? फिर से गारत करने के लिए उसका स्वास्थ्य भी अच्छा हो चुका होगा। फिर वह कैसे लिपटेगी उल्टा मुझ ही से कहेगी—"तू कहा चली गयी थी मोहनी?"

मोहन विक्टोरिया टर्मिनेस के प्लेटफार्म से बाहर निकलने के लिए मुडा तो उसी तरफ से कोई दूसरी गाड़ी प्लेटफार्म पर आ रही थी। मोहन चौंक गया। उसे यूं लगा जैसे सुमित्रा उस गाडी से गयी और इससे लौट आयी है। जभी उसने एक मोटी औरत को कंपार्टमेंट के दरवाजे में फंसे हुए देखा, मुस्कराया और चल दिया। उसे रेडियो क्लब जाना था। ताश के कुछ मदारियों के साथ फ्लाश खेलने के लिए, जहां बीच-बीच में कभी-कभी पान की बेगम जिंदा हो जाया करती थी और समंदर से आने वाले झक्कड़ में उसकी उन्नाबी साडी का पल्लू किसी न किसी को अपनी लपेट में ले लिया करता था। पल्लू के हटाये जाने तक साडी में लिपटे हुए एक जिस्म के बजाय दो का एहसास होने लगता!

मोहन जा रहा था। अनजाने में घर और कार की चाबियां उसके बाएं हाथ की उंगली पर घूम रही थीं। दायां हाथ पतलून की जेब में था जिससे वह प्लेटफार्म का टिकेट टटोल रहा था। जभी उसकी नजर सामने पड़ी।

"अच्ची!" वह रुकते हुए बोला!

मोहन अचला को जानता था लेकिन कोई खास इतना भी नहीं। अचला के शौहर राम गदकरी को तो वह शायद जिंदगी में एक-आध बार ही मिला होगा लेकिन अचला से अकसर मिष्ठान्न में मुलाकातें हुआ करती थीं, जहां वह अपनी एक बदमाश-सी सहेली—देवी के साथ वेजीटेरियन खाना खाने आया करती थी। नमस्ते-नमस्ते के अलावा मोहन जाम और अचला गदकरी के बीच आठ-दस नहीं तो बारह-पन्द्रह फिकरे हुए होंगे जिनसे पता चला तो सिर्फ इतना कि वह भी कोलाबा में रहती है। फर्क यह था कि मोहन 'कफ परेड' के एक अच्छे से फ्लैट में रहता था और अचला कारमूये पर की एक पुरानी बिल्डिंग में रहती थी!

शायद मोहन उसे 'अच्ची' के नाम से न पुकारता लेकिन देवी ने मोहन का उससे परिचय ही इसी नाम से करा दिया था। देवी को मोहन अच्छी तरह जानता

था। देवी समझती भी थी कि पानी मिश्री के लिए कितना खतरनाक होता है। उस पर भी वह छूटते ही किसी भी पराये मर्द से घुल-मिल जाती थी। उसकी आजाद जिंदगी कुछ ऐसा ही शर्बत थी जो जिंदगी की डलिया मे रात-भर पड़ा रहता है। सुबह तक पानी किसी लौ के उठने से उड़ जाता है और फिर से मिश्री की डलिया ठिलिया की तह मे दिखाई देने लगती है। पहले से भी साफ-शफ्फाफ, चमकीली-नुकीली!

मोहन के पुकारने पर अचला ने घूमकर देखा और सिर्फ इतना कहा—"ओ" और कुछ देर के बाद बोली "हन"!

और फिर उसने अपनी साड़ी के पल्लू से आखो की नम पोंछ डाली। अब वह मुस्करा रही थी। ऐसा मालूम होता था जैसे यकायक किसी ने कोई सुनहरा ताज उसके सिर पर रख दिया। थोड़ा मोहन के करीब आते हुए वह बोली—"आप यहा कैसे ?"

"बीवी को छोड़ने आया था" मोहन ने जवाब दिया—"कश्मीर जा रही है · बच्चे की छुट्टियां हो गयी ना आप ·? ·"

"मै ?" और अचला एकदम खिलखिला कर हस दी और फिर उसी दम चुप भी हो गयी। कुछ शर्माते हुए बोली—"मैं उनको छोड़ने आयी थी।"

"ओ" और मोहन भी हँस दिया। एक नजर अचला पर डालने के बाद वह दूसरी गाडी के इजन की तरफ देखने लगा जिसमे से अभी तक धुआ उठ रहा था। फिर अचला की तरफ देखते हुए बोला—

"कहा गये गदकरी साहब ?"

"दिल्ली।"

"कब आयेगे ?"

"यही कोई हफ्ता-दस दिन मे।" अचला ने कहा—"कोई कांग्रेस हो रही है।"

"शायद ज्यादा दिन भी लग जायें ?"

"हा। शायद · "

और अचला अपने बालों को सवारने लगी जो पहले ही सवरे हुए थे। सिर्फ उनमे एक पिन ढीला होकर कुछ ऊपर उठ आया था जिसे अचला ने अपने मोमी हाथो से दबा दिया। अभी उसे यो लगा जैसे उसके हाथ देर तक ऊपर उठे रहे हैं।

मोहन की नजर उसके पूरे बदन पर फेरी देती हुई एक पल के लिए उसके बदन के उस हिस्से पर जा रुकी थी जो चोली और साड़ी के बीच होता है। यकायक हाथ नीचे करते हुए उसने साड़ी से अपने बदन के नगे हिस्से को ढक लिया !

मोहन ने सोचा बदन के इस हिस्से को अग्रेजी मे 'मिडर्फ' कहते है और शहद की मक्खी की तरह स्टेशन से बाहर निकलने तक यह लफ्ज उसके दिमाग मे भनभनाता रहा · मिडर्फ · मिडर्फ ··मिडर्फ ·मिडर्फ

और मोहन ने उसे दिमाग से निकालने की कोशिश भी न की। सब बेकार था। मोहन जानता था··मक्खी कितनी ढीठ होती है। बार-बार उडकर फिर वही आ बैठती है जहा से उड़ी थी। झल्लाकर उसे हटाने की कोशिश करें तो नाक टूट जाती है। मक्खी छूट जाती है।

बाहर गर्मी बहुत चिकनी-चिकनी, गीली-गीली थी। ब्लाउज सीनों से चिपक रहे थे और उस सोने की तरह से खूबसूरत लग रहे थे जो कानो को फाड़े डालता है। पसीनों के कतरे साड़ियों और पतलूनो के अदर ही अदर पिडलियों पर टपकते और जोक की तरह रेंगते मालूम हो रहे थे स्टेशन का चलता-फिरता प्याऊ पीछे रह गया था और यह उसकी वजह से था जो प्यास और भी तीखी हो रही थी। बाहर हाल के एक कोने मे थोड़ी जगह थी जहा ऊपर छत पर दो परो वाला पखा सुस्त रफ्तार से चल रहा था। उसके नीचे एक बुड्ढा मुह खोले हुए नीचे सो रहा था और यो लग रहा था जैसे कोई लाश पहचान के लिए शहर के मुर्दाखाने मे पड़ी हो—

मोहन और अचला ने दो-चार बातें की और उसके बाद उनकी बातें खत्म हो गयी। दोनों अपने-अपने दिमाग में कोई विषय ढूढ रहे थे जो ज्यादा सोचने की वजह से हाथ में न आ रहा था। अचला दो कदम आगे जा रही थी और मोहन पीछे। जभी अचला मे अपने बदन के उन उभारो की पहचान याद आयी जिन्हें औरतें बदमूरत समझती है और मर्द खूबसूरत समझते हैं और हर औरत उन्हें मुफ्त मे दिखाना नही चाहती। वह या पैसे मागती है या मोहब्बत जो हमेशा नगी होती है और जिसे कपड़े पहना दिये जायें तो वह मोहब्बत नही रहती। अचला ने अपने जिस्म के पिछले हिस्से पर साडी खीच ली। उसे यो मालूम हो रहा था जैसे नजरो की बरछियां पीछे से उसके बदन के हर पोर पर लग रही है।

"अच्छा मोहनजी " वह मुडते हुए बोली—"मैं अब घर जाऊगी ।"

"कैसे जायेंगी ?" मोहन ने पूछा !

"ऐसे" और अचला ने थोडा चलकर दिखाया और फिर दोनों खिलखिला के हस दिये । इतनी-सी बात मे दोनो के बीच एक अपनापन पैदा हो गया था। आखिर मोहन ने कहा—"मेरा मतलब है आप गाडी नही लायी ।"

अचला ने सिर हिलाते हुए कहा—

"मुझे ड्राइविंग नही आती "

"मैं जो हू" मोहन ने कहा—"आज थोडी देर के लिए मुझे ही अपना ड्राइवर समझ लीजिये "

"जी" अचला बोली—"नही नही यह कैसे हो सकता है ? मैं मैं बस से चली जाऊगी । आप क्यों तकलीफ करते है ?"

आप क्यों तकलीफ करते है का जुमला ऐसा है जिससे कोई किसी को तकलीफ देना चाहता है और उसके बच निकलने की गुजाइश भी रखता है । शायद उसे टटोलता है तुम मेरे साथ किस हद तक बढ सकोगे ? यह जुमला मर्द कहे तो एक आम-सी (मामूली) बात होती है लेकिन औरत कहे तो खास बात यह औरतों के फिकरे जैसे—"झूठे कही के", "मैं मर गयी" वगैरह ।

"उसमे तकलीफ की क्या बात है" मोहन बोला—"मैं घर ही तो जा रहा हू । रास्ते मे आपको छोड दूगा ।"

जैसे रेडियो क्लब मोहन के दिमाग से अपने आप ब्राडकास्ट हो गयी थी ।

थोडी हिचकिचाहट के बाद अचला गदकरी मोहन जाम की गाडी मे बैठ गयी !

गाडी फ्रीयर रोड की तरफ से निकली । क्रासिंग पर पुलिस-मैन ने उल्टा हाथ दे रखा था जिसकी वजह से मोहन को गाडी रोकनी पडी । मोहन पुलिस-मैन के उल्टे हाथ पर हमेशा भन्नाया और मुह मे गालियां गुनगुनाया करता था लेकिन आज वही हाथ उसे मसीह का हाथ मालूम हो रहा था ।

"देहली कैसी है ?" मोहन ने वार्तालाप करने का विषय ढूढ ही लिया ।

अचला ने जवाब दिया—"वैसी ही ।"

"क्या मतलब ?" मोहन ने चौंक कर कहा—"मैं तो समझता हू वह एक

बहुत ही नेक लड़की है।"

"मैंने कब कहा बुरी है ?" अचला बोली और हँसने लगी।

मोहन अचला के जाल में आ गया था और अब यों ही बच निकलने के लिए इधर-उधर अपने पर फड़फड़ा रहा था। पसीने के बारीक से कतरे उसके माथे पर चले आये। अचला उससे दूर हट कर दरवाजे के साथ लगी बैठी थी जैसे कपड़ा भी छू गया तो कोई रिश्ता पैदा हो जायेगा। अपनी झेंप मिटाने के लिए मोहन बोला—"आप मुझ से इतनी दूर क्यों बैठी हैं ?"

"यों ही" अचला ने कहा और मुश्किल से इंच-भर मोहन की तरफ सरक आयी…

…"मैंने सोचा आपको गीयर बदलने में तकलीफ न हो "

"फिर वही… तकलीफ।"

जब तक पुलिस-मैन ने हाथ दे दिया था। लेकिन मोहन की कार बदस्तूर (जैसी की तैसी) खड़ी थी। पुलिस-मैन की सीटियां और पिछली कारों के हार्न एकसाथ सुनाई देने लगे। मोहन ने जल्दी से गाड़ी को गीयर में डाला और घबराहट में फौरन पैर क्लच पर से हटा लिया। गाड़ी झटके के साथ आगे बढ़ी। बंद होते-होते रुकी। पुलिस-मैन से कुछ आगे निकले तो अचला बोली—"क्या आप ऐसे ही गाड़ी चलाते हैं ?"

"नहीं" मोहन ने कहा—"मैं तो इतने प्यार से चलाता हूं कि पता भी नहीं चलता…मगर आज "

"आज क्या हुआ ?"

"आप हुई हैं…और क्या होगा ?"

मोहन और अचला दोनों टाऊन हाल के सामने जा रहे थे। न जाने क्यों मोहन का जी चाह रहा था आज कोई ऐक्सीडेंट हो जाये। एक बस तेजी से गुजरी और मोहन को अपने अंदर उस अजीब-सी ख्वाहिश को दबाना पड़ा। सामने टाऊन हाल की तरफ जाती हुई सीढ़ियों पर से हाल की तरफ देखते हुए मोहन ने कहा—

"कितना अच्छा है ?"

"बहुत अच्छा है।"

एल्फिन्स्टन सर्किल की तरफ से जवानी के आलम में बिफरी हुई एक बेहद

खूबसूरत लडकी एक लड़के के हाथ में हाथ डाले रजिस्ट्रार के दफ्तर जा रही थी। शायद उसकी शादी होने वाली थी इसलिए उसका चेहरा अदरूनी ऊष्मा से तमतमाया हुआ था। अचला ने मोहन से पूछा—

"आपको कैसी मालूम होती है ?"

"अच्छी।"

और मोहन ने 'अच्छी' कुछ इस अदाज से कहा कि अच्छी और अच्ची में कोई फर्क न रहा। अच्ची खुश हो गयी। कोई क्या कर सकता था वह खुश हो गयी यो ही दिखावे के लिए बोली —"मैं इतनी खूबसूरत कहा हू ?"

मोहन ने एक नजर अचला की तरफ देखा और वह सब कह दिया जो वह यो न कह सकता था।

कामा हाल, लेवाइन गेट गुजर गये और अब मोहन की गाडी रीगल सिनेमा के पास से निकल रही थी। सामने की मूर्ति मनमोहना की थी । फुलेरे की दुकान अच्छी थी। गाड़ी 'काजवे' पर 'सत्य सदन' के सामने रुक गयी—जहा अच्ची रहती थी।

अच्ची ने छिछलती नजर से इधर-उधर देखा। सिवाय सामने के टेलर मास्टर के जो अच्ची की नाप जानता था किसी दूसरे ने अचला को दूसरे किसी की कार से उतरते न देखा था। देखता भी तो उसे क्या परवाह थी ? मोहन को क्या हया थी ? उस पर भी एकदम दरवाजा खोल कर अचला गाडी से उतर गयी। थोडा ठिठक कर—"अच्छा मोहनजी बहुत-बहुत शुक्रिया" कहा और चल दी।

मोहन बदस्तूर ड्राइवर की सीट पर बैठा था। एक टाग अदर थी और दूसरी खुले हुए दरवाजे के बाहर। वह उतर कर अचला के लिए दरवाजा खोलना चाहता था लेकिन उसने मौका ही न दिया, कुछ दूर जाकर अचला को जैसे कुछ याद आया वह थोडी रुकी और जो कहा भी वह सिर्फ इसलिए कि वह उसे न कहना चाहती थी और अपने अदर किसी फिकरे को रोके हुए थी। लेकिन बाज वक्त जिस्म रूह से भी आगे निकल जाता है

"कभी आइएगा मोहनजी "

और मोहन के जवाब का इन्तजार किये बगैर अचला घर की तरफ लपक गयी। पीछे जैसे मोहन हवा से बातें कर रहा था —"आऊगा

आऊंगा क्यों नहीं ?"

अचला का ख्याल था—मोहन इतना तो समझदार होगा ही। इनके घर न होने पर⋯कितना बुरा मालूम होता है⋯ यह दावत तो सिर्फ तकल्लुफ की बात थी।⋯

मोहन वाकयी समझदार था। वरना वह दूसरे ही दिन अचला के यहां पहुंच जाता ? जबकि अपने पति राम गदकदी का अचला के दिमाग मे ख्याल भी न था !

मोहन जाम ने घंटी कुछ इस जोर से बजाई कि अचला घबरा कर भागी चली आयी जैसे राम अगले ही रोज किसी पुष्पक विमान पर बैठ के आ गये। अभी तो⋯अचला को कपड़े भी ठीक करने का मौका न मिला था। दरवाजा खोलते हुए उसने थोड़ा-सा मुह बाहर निकाला और फिर यकायक पीछे हट गयी, अपने आप मे सिमिट गयी और बोली—"जरा रुक जाइये।"

पर वह अदर भाग गयी !

मोहन में इतनी ताब ही कहां थी ? वह तो नीचे ही से यों आया था जैसे फर्स्ट गियर मे लगा हो। उसने दरवाजे को यो हल्का-सा धक्का दिया और वह खुल गया। अगले ही क्षण वह ड्राइंग-रूम मे था और सिर घुमा-घुमा कर अदर की सब चीजों का जायज़ा (परीक्षण) ले रहा था। उसके तो सिर पर भी जैसे कोई आख थी। जहा वह खड़ा था वहा से अचला का बेड-रूम साफ दिखाई दे रहा था।

औरत और घर मे फर्क ही क्या है ? कम से कम पूछ तो लेना चाहिए ! आखिर इतना भी क्या ? लेकिन मोहन पैर से सिर तक उमड़ा हुआ था जैसे अचला बड़े बेड-रूम के खुले दरवाजे मे से सिमटी हुई दिखाई दे रही थी। दोनों ऐसे थे जैसे भावना और कल्पना—आखो और जिस्म की दृष्टि से भगवान ने उन्हें बनाया था। अचला पलग के पायती पर से साड़ी उठा कर जल्दी-जल्दी उसे नीचे के कपड़ो में लपेट रही थी।

"माफ कीजिए" मोहन जाम ने वहीं से कहा और वही से वैसा ही अचला ने

जवाब दिया—"कोई बात नहीं।"

ड्राइंगरूम और बेड-रूम के बीच एक छोटी-सी जगह थी जहां शीशे के कैबिनेट के अंदर शिवजी भोलेनाथ की तस्वीर टंगी थी और उस पर एक बासी हार लटक रहा था। यही नहीं साथ कुआरी मरियम की तस्वीर भी थी और गुरुनानक की भी और उसके साथ ही कैलेंडर लटक रहा था जिस पर लीडा नंगी खडी थी और एक राजहंस उसे अपने पैरों में दबाये चोंच उठाये उसके बालों के गुच्छे को तोडने की कोशिश कर रहा था।

उस एक क्षण में मोहन जाम ने दुनिया भर की औरतें देख ली थी। सुमित्रा देख ली थी और देबी देख ली थी, जाजा ग्योवर देख ली थी, कोई और भी देख ली थी और राधा देख ली थी जो मोहन की सगी बहन थी और बरेत में अपने वीविंग मास्टर पति के साथ रहती थी।

मोहन ने हमेशा औरत को माया के रूप में देखा था। वह बाहर से और अंदर से और मालूम होती थी। अच्छा और बुरा, गुनाह और सवाब (पाप और पुण्य) कभी खूबसूरत और कभी बदसूरत तरीके से आपस में घुले-मिले होते थे। फिर जो औरत कपडों में भरी-पूरी दिखाई देती वह दुबली निकलती और दुबली दिखाई देने वाली भरी-पूरी उसे ही तो माया कहते हैं या लीला ··जैसे ऐसी तदुरुस्त औरत जिसे देखते ही गुर्दे में दर्द होने लगे, उससे डरना बेकार की बात है और हड्डियों के ढांचे से उलझने पर इतना भी नफा नहीं होता जितना किसी मजदूर को बीस सेर लकडियां काटने में।

माया—जिसके बारे में सोचें कि वह वश में हुई तो वही हिकमत नाकाम हुई और जिसके बारे में यह हाथ न आयेगी, वही गर्दन दबाएगी—और माया क्या होती है· ? · शायद एक और माया होती है जो पा लेने के बाद भी हासिल नहीं होती। इस दुनिया से जाते समय यों मालूम होता है आपने किसी को न पाया आपको सबने पा लिया।

जभी साडी और बालों को ठीक करती हुई अच्ची ड्राइंग-रूम में चली आयी! वह कितनी हसीन लग रही थी। क्या सिर्फ इसलिए कि वह दूसरी औरत थी ? नहीं नहीं, वह पहली होती तो भी इतनी ही खूबसूरत मालूम होती। उसमें—कोई बात थी जो किसी दूसरी में न थी लेकिन ·ऐसा तो फिर हर एक के बारे में कह

सक्ते है मगर उसकी भवों पर बचपन की किसी चोट की वजह से हल्की-सी खराश थी। जिसने वालों की आजादी (तहरीर) को दो हिस्सों में बाट दिया था और वह खराश ही थी जिसे चूम-चूम लेने को जी चाहता था !

मोहन के करीब आते हुए फिर से हाथ ऊपर उठा कर अच्ची ने सामने से अपने वाल कुछ ऊपर उठा दिये। वालों का एक टायरा-सा (Tiara) वन गया था। सोने और हीरे के ताज जिसका मुकाबला नहीं कर सकते। वह अपनी ही साड़ी के पल्लू से अपने आप को हवा करती हुई आयी—

"उफ आज कितनी गर्मी है ?"

और फिर दायें तरफ हाथ बढाते हुए दीवार पर पखे के स्विच को दवा दिया। जभी मोहन बोला—

"मै भी सोच रहा था…"

"क्या सोच रहे थे आप…?" अचला ने एक इंतजार भरी निगाह से मोहन की तरफ देखा।

"यही" मोहन ने कहा—"आज कितनी गर्मी है उफ "

और जब पखे से हवा का पहला झोका आया तो मोहन और अचला तसकीन की सास लेते हुए आमने-सामने सोफे पर बैठ गये। कितना जुल्म था। वह एक-दूसरे के पास भी न बैठ सकते थे। सब कुछ कितना अप्राकृतिक मालूम हो रहा था। यह ठीक भी था। अगर दुनिया-भर के मर्द और औरत प्राकृतिक जिंदगी गुजारने लगें तो क्या हो? लेकिन मर्द और औरत दोनों अपूर्ण हैं। उनकी पूर्णता—? जिस्मों को मारिये गोली, आत्माओं को पा लेने के लिए भी क्या एलास्का से होकर आना पड़ेगा—?

ऐसे ही तकल्लुफ में लोग एक-दूसरे से मीलों दूर चले जाते है। फिर अजीब तरह की खीच-तान शुरू होती है, जान-न-पहचान और आते ही हाथ पकड लिया और यह भी—पहले क्यों न बुलाया ? क्या समझते हो ? मोहब्बत के खेल में तो पहली नजर, पहला जुमला, और पहली हरकत आखिर तक छा जाती है।· एक दिन देवी एक पेंटर के बारे मे कह रही थी जिससे वह मोहब्बत करती थी और अब भी करती है—"मैं तो अपना सब कुछ उस पर लुटा देती लेकिन छूटते ही कैसे भोंडे तरीके से उसने मेरा हाथ पकड़ा और मेरे सब छोटे-बड़े राज जानने की

कोशिश करने लगा ऐसे क्यों होता है ? मैंने उसी चोर तरीके से उसे रोक दिया। अब मैं उसके पीछे भाग रही हूं और वह किसी जिद में पड़ गया है। जाने समय का यह कौन-सा अंश था जिसमें सुना है वह अलगीचाहे से किसी रही के भाग जाता है "

अचला के कोई बच्चा न था। पांच-छह साल की शादी के बावजूद उसकी ममता वैसे ही दबी पड़ी थी। सहसा उसकी पहाड़ी गोरखा-वर्ग की एक नौकरानी थी जो अच्ची के इशारे पर चाय बना कर ले आयी। फिर एक प्लेट में मिठाई भी लायी जो अचला ने घर में ही बनायी थी, जिस पर सिक्का काफी ज्यादा बिखरा हुआ था। नौकरानी ने मोहन को 'कभी तो देखा नहीं' के अन्दाज में देखा और फिर रसोई में काम करने के लिए चली गयी।

"लड़की अच्छी मालूम होती है" मोहन ने मिठाई मुंह में डालते हुए कहा।

"हां" और अचला ने अंदर की तरफ देखा—"पर जवान लड़कियों को घर में रखना नही चाहिए।"

"क्यों रखना क्यों न चाहिए ?"

"क्या बतलाऊ ?" अचला हंस दी—"रोज कोई न कोई नया अलबेला दरवाजे पर मौजूद होता है।"

और फिर दोनों मिलकर हंसे। मोहन ने बात शुरू की—"मैं भी तो हूं।"

अच्ची के चेहरे पर लाली दौड़ गयी। निगाहें चुराते प्याली में चम्मच हिलाते हुए बोली—

"आपकी बात दूसरी है" और फिर यकायक बात को आगे बढ़ाते हुए बोली—"अब के राम आयेंगे तो आपसे मिलाऊंगी, बड़े मजे के आदमी हैं…"

मोहन ने छेड़ा—"इसका मतलब है उससे पहले न आऊं ?"

"नहीं, नहीं" अचला ने घबराते हुए कहा—"आप जब जी चाहे आइए आपका अपना घर है।"

फिर अचला ने सोचा वह क्या कह गयी। औरत होना भी एक मुसीबत है। क्यों वह हर वक्त डरी रहती है। क्यों कहती कुछ है और मतलब कुछ और होता है।

और अचला ने राम गदकरी की बातें शुरू कर दीं जैसे उनसे अच्छा मर्द कोई इस दुनिया में नहीं। एक राम अयोध्या में पैदा हुए थे और अब बीसवीं सदी में पैदा हुए हैं और कोलाबा में रहते हैं !

मोहन जाम के पास इसके सिवा कोई चारा न था कि वह सुमित्रा की बातें करे। दोनों में फासला और बढ़ गया था और बराबर बढ़ता जा रहा था। उनके जाने-बूझे बगैर वह एक-दूसरे से दूर होकर करीब होने की कोशिश कर रहे थे। मोहन ने बताया सुमित्रा बडी ग्रेट औरत है लेकिन उसकी स्वास्थ्य की खराबी ने पूरी जिंदगी पर एक गम की छाप लगा दी है ··

तभी नौकरानी हाथ पोंछती हुई आयी।

"बाई मैं जाऊ ?"

"नहीं नहीं" अचला ने मोहन की तरफ देखते हुए कहा—"कपडे धोओ जाकर। देखती नहीं गुसलखाने के पास कितना ढेर लगा है ? चलो। चलो।"

और नौकरानी मुह फुलाती हुई चली गयी। इसके सिवा चारा ही क्या था ?

मोहन वैसा ही सुमित्रा के बारे में कह रहा था—"दस साल से जिस औरत ने तुम्हारा साथ दिया हो। उसे तुम सिर्फ इसलिए छोड़ दो कि वह बीमार है, जिसने अपनी जवानी के बेहतरीन साल तुम्हारी खिदमत में लगा दिये और जिसके स्वास्थ्य की खराबी के तुम जिम्मेदार हो ·मैं तो सोच भी नहीं सकता "

और मोहन की आखो में आसू चले आये।

"अचला को न जाने क्या हुआ। उसमे बरसों से दबी कोई चीज उबल पडी—"नहीं नहीं, मोहनजी" वह बोली—"ठीक हो जायेगी" और फिर मोहन के एकदम पास पहुचते हुए उसने अपनी साडी के पल्लू से मोहन की आखें पोंछ दीं।

मोहन एक घुटन के साथ उठा और बोला—"अच्छा—मैं चलूगा।"

"बैठिये तो कुछ देर" अचला ने फिर वैसा ही जुमला कहा।

लेकिन मोहन ने इंकार कर दिया। उसने जल्दी से अपनी घड़ी की तरफ देखा और बोला—"मुझे साढे-ग्यारह बजे अजवानी पेपर मिल्ज में जाना है।"

और मोहन फरियादी नजरों से अचला की तरफ देखता हुआ चला गया !

अचला उठी। वह मुस्करा रही थी। बेड-रूम में जाकर उसने अपने सरापा की तरफ देखा। वह कैसी लग रही थी। उसे अपना आपा अच्छा लगा। फिर वह

नौकरानी के पास पहुची।

"तुम्हारा जोह्नी नही आया" अचला ने कहा!

इस बात का जवाब देने के बजाय रोजी बोली—"वह साहब जो आये थे चले गये?"

"हा" अचला को कितनी तसल्ली थी!

"तुम जोह्नी के साथ पिक्चर चली जाना" अच्ची ने कहा—"तुम्हारे सब लडको से एक वही मुझे ठीक मालूम होता है"

और रोजी यकायकी खुश हो उठी!

अच्ची से मोहन की शायद यह पाचवी या छठी मुलाकात थी। अब वह टेलर मास्टर और दूसरे लोगो की नजरो से बचती-बचाती मोहन की गाडी मे आ बैठती थी और दोनो शाम को हवाखोरी के लिए निकल जाते थे।

इस बीच मोहन ने सुमित्रा को हफ्ते मे एक चिट्ठी लिखने के बजाय तीन-तीन लिखनी शुरू कर दी। एक चिट्ठी मे तो मजाक भी किया—"अगर तुम न आओगी तो मैं किसी दूसरे से लौ लगा लूगा" और यो उसने सुमित्रा को बेफिक्र कर दिया।

एक शाम को पुरेज के पास से होती हुई गाडी बैंक-वे के पास अधेरे मे खडी हो गयी! अचला ने भी एतराज न किया। आज वह बाए दरवाजे के साथ लगकर बैठने के बजाय सीट के ठीक बीच मे बैठी थी। मोहन जाम के हाथ सीट पर अच्ची के चारो ओर थे और अच्ची एक हाथ से न्यूट्रेल मे पडे हुए गियर को फर्स्ट और सेकेंड मे लगा रही थी जैसे वह गाडी चलाने की कोशिश कर रही हो।

मोहन ने अचला का हाथ थाम लिया। मना करना तो एक तरफ उसने मोहन का हाथ दबा दिया। और दोनो कुछ क्षण के लिए खामोश हो गये। यहा तक कि मोहन को कहना पडा—

"गदकरी कब आने वाले है?"

"यही दो-एक दिन मे।"

"नार्मल क्यो हो गयी?"

"भगवान जाने। इन मर्दों का क्या पता किस सौतिन के साथ रास रचा रहे हों ?"

"क्या बात कर रही हो ?" मोहन ने अच्ची का हाथ झटकते हुए कहा—"वह तो भगवान राम हैं तुम्हारे लिए ···"

"भगवान राम होते तो सीता को साथ न ले जाते ?"

मोहन ने हंसते हुए कहा—"अब सीता कान्फ्रेंस में थोड़े जा सकती है ?"

और मोहन ने अच्ची की बगल में हाथ डाल कर उसे कुछ अपनी तरफ खींच लिया। अच्ची ने थोड़ी-सी आपत्ति की लेकिन फिर जैसे खुद को ढीला छोड़ दिया। उसे यों भी किसी आराम (सहारे) की जरूरत थी क्योंकि जब से गाड़ी बैकवॉटर में आकर अंधेरे में खड़ी हुई थी उसने अंदर ही अंदर कांपना शुरू कर दिया था। उसकी नसों को किसी आराम की जरूरत थी। उसने आखें बंद करते हुए अपना सिर मोहन की छाती पर रख दिया !

मोहन अचला से प्यार करने ही वाला था कि एक आदमी गाड़ी के पास चला आया और बोला—

"नारियल पानी"

"नहीं चाहिए" मोहन ने अचला से अलग होते हुए कहा लेकिन नारियल वाले को वैसा ही वहीं खड़े पाकर वह झल्ला उठा—"अबे कहा ना—नहीं चाहिए ···" और फिर "जाता है या ··· ?" और मोहन जैसे उसे मारने के लिए लपका।

अचला ने उसे पीछे से पकड़ लिया—"क्या कर रहे हैं ?" कुछ घबराते और अपने कपड़े दुरुस्त करते हुए बोली—"देखते नहीं उसके हाथ में छुरी है ?"

"होगी" मोहन ने बेपरवाही के अंदाज में कहा।

नारियल वाले ने अपनी मालाबारी जबान में कुछ कहा और चला गया। कुछ दूर पत्थर की दीवार पर बैठे हुए एक आदमी ने आवाज दी—"मजाकरा बाबू ··· मजाकरा।"

मोहन थोड़ा दूर हट कर बैठ गया और अचला से कहने लगा—"घर चलते हैं।"

"किसके घर ?"

"मेरे ··· तुम्हारे ··· रोजी क्या वहीं होगी ?"

"नहीं—वह पिक्चर देखने गयी है अपने जोनी के साथ⋯"

"तो फिर ठीक है"

"नहीं नहीं" वह बोली—"घर पर तुम्हें क्या करना है ?"

असल में अचला को घर में वह शीशे का कैबिनेट और उसमें लगी हुई तस्वीरें याद आ गयी थी। वह तो अपने शौहर से भी प्यार करने से पहले दरवाजा बंद कर लिया करती थी। उसके बाद पत्थर पर बैठे हुए आवारा (बेफिक्रे) के मौजूद होने के एहसास से बेखबर होकर जब मोहन ने अचला का मुंह चूमा तो उसमें पहला-सा आत्मसमर्पण न रहा था। "नहीं नहीं" उसने कुछ हल्का-सा कहा जो विरोध भी था और नहीं भी। अलबत्ता जब मोहन ने हाथ बढ़ा कर अच्ची के छोटे-बड़े राज मालूम करने की कोशिश की तो वह बिदक कर अलग हो गयी। मोहन को बुरा-सा लगा। उसने कुछ देर ठहरने के बाद फिर एक भरपूर हमला किया लेकिन अचला किसी निहायत-ही मजबूत किले में कैद होकर बैठी थी। वह शिकायत के लहजे में बोली—"नहीं नहीं इतना ही बहुत है।"

"बेवकूफ न बनो अच्ची" मोहन ने कुछ नाराज हो कर कहा—"नहीं तुम भी देवी की तरह पछताओगी।"

"नहीं मोहन" अचला ने बड़े प्यार से रूठते हुए कहा—"प्यार का यही मतलब थोड़े होता है !"

"जो होता है वह समझा दो।"

"क्यों ? बहन-भाई का प्यार नहीं होता ?"

"होता क्यों नहीं ?" मोहन ने अपनी मर्दाना नाराजगी को छिपाते हुए कहा और उसे अपनी बहन राधा याद आ गयी जो परेल में रहती थी।

"यह रिश्ता तो हम हमेशा नहीं रख सकते" अच्ची बोली—"एक-दो रोज में आ जायेंगे—महीने डेढ़-महीने में सुमित्रा बहन भी लौट आयेंगी।"

"हूं।"

"बहन-भाई का प्यार है जिसमें कोई डर नहीं कोई खटका नहीं⋯"

"ठीक है" मोहन ने अपने माथे पर से पसीना पोंछते हुए कहा—"आज से मैंने तुम्हें बहन कहा" और जन्नाटे से गाड़ी चला दी।

अच्ची बहुत डर गयी थी। उसने दोनों हाथों से मोहन का बायां बाजू पकड़

लिया और कंधों पर अपने बालों का खूबसूरत ताज रखते हुए बोली—"तुम तो रूठ गये।"

"रूठूंगा क्यों" मोहन ने कहा—"भला भाई-बहन से रूठ सकता है?"

अचला ने झटके में अपना सिर मोहन के कांधे से हटा लिया।

कुछ देर बाद गाड़ी 'सत्य सदन' के सामने खड़ी थी। आज दरवाजा खोलने के लिए मोहन ने जरा भी कोशिश नहीं की। अचला बेदिली से उतरी। सामने का टेलर मास्टर गौर से उनकी तरफ देख रहा था और आसपास के कुछ लोग भी। मगर अचला को जैसे कोई डर न लग रहा था। उसने आज मोहन का शुक्रिया भी अदा न किया। वह बेहद फिक्र में थी। ऐसे वसवसे और डर उसके दिल में पैदा हो गये थे जिन्हें वह खुद भी न जानती थी। उसे एक डर थोड़े था? हजारों थे जिनमें से एक को दूसरे से अलग करके देखना और पहचाना मुमकिन न था।

"अब आओगे?" उसने पूछा!

"आऊंगा, आऊंगा क्यों नहीं?" मोहन ने कहा और फिर खिलखिला कर हंस दिया जैसे कोई बच्चे को डरा तो सकता है मगर एक हद तक। उसके बाद मोहन 'टाटा' कह कर चल दिया। अचला जब घर लौटी तो किसी किस्म का बोझ उसके सिर से उतर चुका था!

अगले ही रोज गदकरी चले आये।

अच्ची उन्हें लेने स्टेशन पर गयी तो यह देख कर हैरान हुई—उसके शौहर ने मूंछें रख ली हैं!

"यह क्या?" अचला ने पूछा।

"ऐसे ही" उसके पति ने हंसते और आशिक़ाना नजर से अपनी बीवी की तरफ देखते हुए कहा—

"मन की मौज"

और फिर कुली के सिर पर सूटकेस रखवाते अच्ची के पास आते हुए बोले—"बुरी लगती है?"

"नहीं, बुरी नहीं लगती मगर यूं मालूम होता है जैसे मैं किसी और ही मर्द

के साथ जा रही हू ।" अचला ने मुस्कराते हुए कहा !

राम गदकरा ने छेडा—"अच्छा है न एक ही जिंदगी मे दो मर्द देख लिये ।"

उसने सोचा अच्ची हसेगी और इस लतीफे से पूरा लुत्फ (मजा, रस) उठायेगी या धप से पीठ पर हाथ मार कर कहेगी—"शर्म नही आती · " लेकिन अचला ने कुछ न कहा । उल्टे जैसे किसी फिक्र की परछाई उसके चेहरे पर से गुजर गयी। एक खोज-भरी निगाह से उसने राम के चेहरे पर देखा जो मूछों की वजह से पहले से भी ज्यादा बेवकूफ नजर आ रहा था । अचला को यकीन हो गया कोई ऐसी-वैसी बात नही है ! अब वह प्यार की बातें कर रही थी मगर—मगर राम गदकरी काफेस का झगडा ले बैठे थे ।

घर पहुच कर अच्ची ने अपने पति को सामान भी ठीक से न रखने दिया । वह एक बच्ची की तरह मचल गयी और उसका हाथ पकड कर घसीटती हुई अंदर बेड-रूम मे ले गयी और उसके गले लग कर फूट-फूट कर रोने लगी । राम गदकरी हैरान ही तो रह गया ।—"अरे ग्यारह ही दिन तो लगे हैं ।"

लेकिन अच्ची रो रही थी और मचल रही थी । उसे लिपटाते और दिलासा देते हुए आखिर मे राम ने कहा—"मुझे क्या मालूम था तुम इतना ही डर जाओगी ।"

"मै यह सब डर के मारे कर रही हूं" अचला ने एकदम परे हटते हुए कहा ।

"नही प्यार के मारे" और राम गदकरी हस दिया । बढ कर फिर से अच्ची को गोद मे लेते हुए बोला—"मै जानता हू अच्चे मै भी तुम से इतना ही प्यार करता हू ।"

"बस !"

"इससे भी ज्यादा ।"

"झूठे कही के । मुझसे प्यार करते तो यह मूछे रखते ?"

अचला का ख्याल था राम ने मूछें किसी लड़की के भड़काने पर रखी हैं। राम समझ गया । उसे अचला की भावनाओं से ज्यादा अपने समझ जाने पर खुशी थी । प्यार मे उसने मुह आगे बढ़ाया तो अचला ने मुह पीछे की तरफ मोड़ लिया, जिस पर राम ने वायदा किया कि अगले ही रोज वह मूछें-ऊछें सब मुंडवा

डालेगा। अपनी ही नहीं—जो भी दिखायी देगा उसकी भी !

दो-एक रोज बाद वायदे के मुताबिक मोहन जाम चला आया। पहले तो अच्ची चौंकी। फिर अपने आप को संभालते हुए वह अपने पति राम गदकरी की तरफ लपकी और बोली—"जी मैंने आपको बताया नहीं। मैंने अपना एक भाई बनाया है।"

"भाई? बनाया है?"

"हां" अचला कहने लगी—"क्या भाई नहीं होते?"

और इस तरह राम गदकरी को पकड़ कर अचला मोहन जाम से मिलवाने के लिए उसे ड्राइंग-रूम में ले आयी। दोनों मर्द एक-दूसरे से इस तरह मिले जैसे वह नासमझी की हालत में मिलते हैं। यह नहीं कि राम गदकरी ने मोहन जाम को ठीक तरीके से उठाया-बिठाया नहीं या उसकी मुनासिब खातिर-मुदारत (आवभगत) नहीं की। उसने सब कुछ किया लेकिन वह ऐसे ही था जैसे आदमी कुछ नहीं समझता मगर करता चला जाता है। मुस्कराहटें बनावटी थीं। हंसी बनावटी थी।

और अचला थी कि लुटी जा रही थी। एक बार भाई कह देने के बाद जैसे छुट्टी हो गयी। उसने न सिर्फ चाय, खताई वगैरह सामने रखी बल्कि रोजी को भी बाजार भेज दिया, कुछ नमकीन चीजें लाने के लिए। राम गदकरी यह सब बर्दाश्त कर रहा था लेकिन एक चीज जो उसकी समझ में नहीं आ रही थी वह यह थी कि मोहन जाम के आने पर अचला उसे भी भूल चुकी थी—जो उसका पति था उसके भाई का जीजा। और राम गदकरी देख रहा था कि ऐसा करने में अचला कितनी बेबस है !

जब कोई चीज लेने के लिए अचला अंदर जाती तो यह मर्द लोग एक-दूसरे से सरसरी तौर पर तकल्लुफ महज तकल्लुफ में एक-आध जुमला कहते। राम गदकरी कुछ कान्फ्रेंस का रोब डालने की फिक्र में थे और मोहन जाम उस शिपमेंट का जिक्र कर रहे थे जो उन्होंने अभी-अभी जापान से मंगवाया था। दोनों के फिकरे बीच में टूट जाते थे।

अच्ची अंदर से आयी तो वह साड़ी बदले हुए थी और सामने के बालों में फिर से क्राउन बना लिया था और खुशबू तो उसके साथ ही बाहर लपकी आयी थी।

अच्छाई और सफाई जताने के लिए और भी बहुत से झूठ बोलने पड़े जिनकी जरूरत न थी क्योंकि रिश्ता भगवान ने नहीं इंसान ने बनाया था।

उसके बाद दो-एक बार फिर मोहन जाम आया और अचला उसी तरह विवशता और आत्म-विभोरता में लपकी-झपकी। मोहन जाम के चले जाने के बाद राम गदकरी देर तक खामोश बैठे रहे यहां तक कि अपनी खामोशी उन्हें खुद ही नागवार-सी महसूस होने लगी। सामने ताक पर ट्रांसिस्टर पड़ा था जिसकी सूई घुमाते हुए राम ने अच्ची से कहा—

"जानती हो ट्रांसिस्टर किसे कहते हैं ?"

"यही जो सामने पड़ा है।"

"नहीं" राम ने खफा होते हुए और कुछ मुस्कराहट के मिले-जुले भाव में कहा—"मिस्टर बहन को कहते हैं और ट्रांसिस्टर वह बहन होती है जो सगी न हो ऐसे ही भाड़े में लेकर बनायी हो· इसलिए तुम शोर भी मचाती हो "

अचला को बहुत गुस्सा आया—"*क्या मतलब ? ··आप भाई और बहन के* रिश्ते पर शक करते हैं ? उसका मजाक उड़ाते हैं ?"

"मेरा मतलब है ?"

"मैं सब जानती हूं" अच्ची ने हांफते हुए कहा—"तुम मर्द लोग सब कमीने हो। तुम्हारी नजरों में कूट-कूट कर गदगी भरी है · क्या दुनिया में मर्द-औरत, पति-पत्नी बनकर ही मिल सकते हैं ? क्या संसार में··" और अच्ची का गला भर आया और वह रोती हुई कैबिनेट के सामने भगवान की तस्वीर के पास जाकर घुटनों के बल बैठ गयी और दुहाई देने लगी—"मैंने कोई भी पाप किया हो भगवान तो मेरे शरीर पर कीड़े पड़े···कोढ लग जाये··"

राम अब पछताने लगा था। फिर भगवान की सनद थी। उसने पीछे से आकर अचला को दोनों कांधों से पकड़ कर उठाया लेकिन अचला ने उसे इस जोर से झटक दिया कि राम दीवार में जा लगा। सिर पर मामूली-सी चोट भी लगी। अचला इतनी तदुरुस्त थी कि राम गदकरी जैसे इकहरे बदन वाले आदमी का उसे संभालना मुश्किल था। फिर वह अदर जाकर अपने आपको बिस्तर पर गिरा कर जोर-जोर से रोने लगी।

राम अब बहुत पछता रहा था और आप जानते हैं, पछताते हुए मर्द की क्या

नक्ल होती है ? राम की सारी शाम अच्ची को मनाने में लगी हालांकि वह विरला 'मुतोभी सभा घर' में विलायत हुसैन का सितार सुनने के लिए जाने वाला था और अचला के लिए टिकट खरीद कर लाया था जो अब उसने हसीन मगर गुस्सैली बीवी के सामने फाड़ कर फेंक दिया। फिर वह वहीं बिस्तर पर पड़ी घर की सितार को कमर में बाजू डालकर उसके तार दुरुस्त करने लगा। चूंकि उस्ताद आदमी न था इसलिए एक भी सुर ठीक न निकला। आखिर उसने कहा भी तो सिर्फ इतना —"मैं तुम पर इतना-सा भी शक करूं अच्चे तो गाय खाऊं। मैं तो सिर्फ यह कहता हूं तुम्हारे अपने भाई भी तो हैं ..."

"कहां हैं!" अचला बोली—"एक कलकत्ता में बैठा है दूसरा बिजवाड़े में।"

"पिछवाड़े में भाई का होना जरूरी है!"

"हां जरूरी है" अच्ची ने सिर को एक फैसले वाली मुद्रा में झटका देते हुए कहा—"कोई तो हो तुमसे पूछने वाला " राम गदकरी फिर भी न समझा। बड़ी मरघली आवाज में उसने कहा—"तुम्हारी मर्जी, लेकिन मैं तो समझता हूं इसकी कोई जरूरत नहीं।"

"तुम्हें मूछें रखने की क्या जरूरत थी?"

महीने-डेढ़ के बाद सुमित्रा चली आयी!

सुमित्रा अब पहले से वाकई अच्छी मालूम हो रही थी। बच्चे की भी तंदुरुस्ती पहले से अच्छी थी। वह कश्मीरी जबान के कुछ लफ्ज सीख आया था, सही-गलत तौर पर इस्तेमाल करता रहता था। सुमित्रा बार-बार उसे पकड़ कर कहती डैडी को यह सुनाओ, डैडी को वह सुनाओ लेकिन वह बदमाश वही रटे हुए फिकरे दोहराता। बाद में पता चला वह कश्मीरी जबान की गंदी गालियां थीं।

मोहन जाम ने अचला की-सी बेवकूफी न की! सुमित्रा से अचला की मुलाकात करवाने के बहुत पहले ही उसने कह दिया—उसने एक बहन बनायी है।

सुमित्रा सुनती रही। उसे अपने मोहन पर पूरा-पूरा भरोसा था! नहीं · वह उन औरतों में से थी जो मर्द की बेबाकी और बेपरवाही में मोहब्बत करती है और या उसका स्वास्थ्य इस हद दर्जे खराब होता है कि वह मोहब्बत के तकाजों को पूरा

नही कर सकती और जिंदगी को हर हालत मे मौत से बड़ी मानते हुए कुछ ऐसे फिकरे कहती है—"इस मारले है तो मारले फिरे।" और फिर···"भगवान को जवाब उन्हे देना है मुझे नही देना !"

आखिर रात को चुपके मे ऐसी आवाज मे रोती है जो उन्हे खुद भी सुनायी नही देती।

सुमित्रा ने कहा भी तो सिर्फ इतना—"जरूरत क्या थी ? तुम्हारी अपनी बहन जो थी। उस पर निछावर करो अपना प्यार या ऐसी ही कोई प्यार की बाढ़ आयी है ?"

"हां" मोहन ने कुछ सख्ती के साथ कहा।

सुमित्रा दब गयी। स्वास्थ्य तो खराब होना ही था। अभी से क्यों शुरू हो। उसने जवाब के मे अदाज मे सवाल किया—"राधा कैसी है !"

"मैं तो उससे मिला नही।"

"हाय राम जब से मैं गयी हू अपनी बहन से भी नही मिले···?"

"वक्त नहीं मिला।"

"और वह खुद भी नही आये ! राधा और कैलाशपति !"

"आये थे तीन-चार बार···लेकिन मैं ही घर पर नहीं था।"

सुमित्रा कहना चाहती थी—मिलते भी कैसे ? वह तो सगी बहन थी, बनायी हुई थोडी थी ? लेकिन उसने कुछ न कहा। उसका स्वास्थ्य अभी बहुत अच्छा न था !

और फिर मोहन जाम ने जो कह दिया—

"चौबीस को रक्षा बधन का त्योहार है, जाऊगा और मिल आऊगा।"

रक्षा बंधन के दिन मोहन जाम परेल अपनी बहन राधा के यहा पहुंचा। साथ सुमित्रा भी थी। राधा यों पर फैला कर लपकी जैसे बरसो के बाद मिली हो। उसे इस बात का एहसास भी न था कि वह औरत है और न मोहन को अपने मर्द होने का पता था। उसने राधा को गाल पे चूम लिया, फिर सिर पर प्यार से हाथ फेरा और बहन की आखो से शिकायत के आसू पोछे।

कुछ देर बाद राधा बड़े मजे से उठी और लकड़ी की जाली मे से मिठाई की तश्तरी उठा लायी। फिर चौकी सामने रख कर भाई को बिठाया। उसका मुह

पुरुष की तरफ किया। जाजू मोहन का बच्चा भी साथ दूसरी गोदी में जा कर बैठ गया जैसे अलमी का सेहरा!

"अरे!" राधा ने जाजू की तरफ देखते हुए कहा—"पहले तू राखी बंधवाएगा?"

"हां" जाजू ने बड़ा-सा सिर हिलाया।

"पहले तो मैं अपने भाई को बांधूंगी।"

"नहीं पहले मेरे बांधो।"

"ऐसा ही हठ चलाता है" राधा प्यार से बोली—"तू भगवान से कह मुझे भी एक बहन ला दे छोटी-सी। जो हर साल राखी बांधा करे!"

और ऐसा कहने से जाजू मोहन और कैलाशवति तीनों ने सुमित्रा की तरफ देखा। जिसने शरमा कर मुंह साड़ी में छिपा लिया।

राधा ने मोहन भैया की कलाई पर सादा-सी मोती की राखी बांधी। मुंह में मीठे का एक टुकड़ा डाला। मोहन ने जेब से दस का एक नोट निकाला और राधा की हथेली पर रख दिया। राधा ने उसका नोट अपनी आंखों से लगाया और प्रार्थना की—

"यह दिन हर बहन के लिए आये भगवान।"

और उसकी आंखों में प्यार और विश्वास की नमी थी!

सुमित्रा और बच्चे को घर छोड़ कर मोहन जाम अचला के यहां जाने के लिए निकला। वह सुमित्रा को बाद में कभी ले जाना चाहता था, उस रोज नहीं। उसकी कोई खास वजह थी। औरतें कई बातों में मर्दों को खाम-ख्वाह टोकती रहती हैं—यह करो, वह न करो जैसे औरतों को बहुत-सी बातें मर्दों की समझ में नहीं आती उसी तरह मर्दों की बाज बातें औरतों के पल्ले नहीं पड़ती!

मोहन बाजार में एक कपड़े की दुकान पर गया। बहुत कुछ उलट-पलट करने के बाद उसे बनारस की एक साड़ी मिली जिस पर सुनहली कारीगरी की गयी थी! उस पर भी उसकी कीमत सवा-तीन सौ तै हुई। मोहन ने पैसे दिये। साड़ी को एक खूबसूरत गिफ्ट-पेपर में बंधवाया और कागज पर के 'सत्य सदन'

। · "

होते देखकर राम गदकरा

।—"क्या हो गया मेरी

। कहा और फिर अपने बाजू

र करो "

चने लगा।

खुला हुआ···जब तक मोहन

रे जा चुका था।

में प्याज के छिलके की तरह का एक दुपट्टा था जिसने अच्ची के गले और सीने को स्वास्थ्य का रंग दे दिया था। कमीज ने छाती, कमर और निचले हिस्से की बहुत खूबसूरत हद-बंदिया कर रखी थी। उसके हाथ में थाली थी जिस पर रखी हुई मिठाई पर सोने के वर्क कांप रहे थे और उसकी एक तरफ राखी थी जिसकी झलमल में कुछ सच्चे मोती टके हुए थे।

मोहन ने बड़ी हिम्मत से हाथ बढाया। अचला ने जब मोहन की कलाई पर राखी बाधना शुरू की तो राम गदकरी को उसके हाथ खुशी से कापते हुए दिखायी दिये। फिर मोहन ने मिठाई के टुकडे के लिए मुह खोला और अचला ने उसमें कलाकंद रख दी। तभी मोहन ने गिफ्ट-पेपर खोला और उसमे से साडी निकाली। उस पर सौ रुपये का नोट रखा और दोनों चीजें अचला की तरफ बढा दी?

राम गदकरी की आखें थोडी देर के लिए फैली और फिर जैसी थी वैसी हो गयी।

रक्षा की यह रस्म अदा करने में अचला भी खामोश थी और मोहन भी। दोनों के बदन में यकायकी कही हाथ छू जाने से एक बिजली-सी दौड गयी। फिर अचला ने धीमी-सी आवाज में कहा—

"यह दिन बार-बार आये भगवान।"—और जब मोहन ने अचला की आखो मे देखा तो उनमें हया की सुर्खी थी ··

कुछ देर बाद यो ही-सी बातचीत के बाद मोहन ने राम गदकरी से हाथ मिलाया। अचला से नमस्ते की ओर चल दिया। दरवाजे की तरफ बढते हुए उसने एक आह भरी और चल दिया!

अचला हमेशा की तरह उसे नीचे छोडने जाना चाहती थी, लेकिन आज उसके पैर जवाब दे गये थे!

"तुम्हे खुश होना चाहिए अच्ची" राम ने कहा—"भाई को राखी बाधी है।"

"हा' अच्ची ने कहा—"पर आज सुबह ही से मेरी तबीयत कुछ "

"सुबह ही से तो यह सब बनाती रही हो, दुपट्टा [illegible] करती रही हो।"

अचला ने सिर हिला दिया। राम ने आगे बढकर कहा—"मैं तो समझता था

तुम अपने भाई की दी हुई साड़ी पहन कर मुझे दिखाओगी ··"

अच्ची ने कोई जवाब न दिया। उसकी आंखें बंद-सी होते देखकर राम गदकरी ने आगे बढ़कर उसे थाम लिया और बड़े प्यार से बोला—"क्या हो गया मेरी अच्ची को ?"

"कुछ नहीं" अच्ची ने एक धीमी-सी आवाज में कहा और फिर अपने बाजू राम के चारों ओर डालते हुए बोली—"मुझ से प्यार करो ··"

राम ने अच्ची को सीने से लिपटा लिया और भींचने लगा।

"और" अच्ची ने कहा !

उसके बाद अच्ची की आंखें बंद थी और मुंह खुला हुआ···जब तक मोहन जाम, अचला और राम गदकरी के ख्यालों से भी परे जा चुका था !

एक जरा-सी बात

"क्यों ? अच्छी तरह समझ गये न ? एक जरा-सी बात है " वकील साहब ने आगे झुक कर दुबले-पतले लडके से पूछा।

गोपाल सिंह के किताबी चेहरे पर हल्दी बिखरी हुई थी। नयी उभरती हुई उम्र मे भूरी दाढी सरसो की तरह फूट रही थी। कनपटियो से लबी-लबी डोरिया पसीने की बह रही थी जिन्हे वह बार-बार हथेलियों से पोछ रहा था। उसने अपनी थकी हुई आखे मनो के बोझ की तरह ऊपर उठायीं।

उसकी आखे देखकर वकील साहब लरज गये। सुनहरी हथेलिया गुस्से मे काप रही थी   जैसे दूध भरी कटोरियो मे सुनहरे तारो के फूल तैर रहे हों। अल्लाह पाक ने यह अखडिया कितनी राते जाग-जाग कर बनाई होगी।

"नही वकील साहब" गोपाल ने मरी हुई सिसकी ली। उसका सिर और नीचा हो गया। सूजे हुए पपोटों ने छलकती कटोरियो पर भारी पर्दा गिरा दिया।

"अमा यार इतनी-सी बात समझ मे नही आती। रक्खी से तुम्हारा नाजायज सबध था। तुम दोनो रात को "

"नही" गोपाल सिंह बेकरारी से अपना सिर इधर-उधर पटकने लगा जैसे वह किसी अनजाने फदे से अपनी गर्दन छुडाना चाहता हो—"ऐसा मत कहो वकील साहब मत कहो "

"सरदारजी" वकील साहब ने जोर से मेज पर घूसा मारा—"क्यो मेरा वक्त बरबाद करते हो ? तुम्हारा बेटा मरना ही चाहता है तो कोई वकील उसकी जान नही बचा सकता "

"वकील साहब" गोपाल सिंह के बूढे बाप ने कराह कर पहलू बदला—"मेरा एक ही पुत्तर ए वकीलजो ईदी जान बचा लो जी "

"इसमे मेरा क्या दोष है सरदारजी कि आपका एक ही बेटा है और वह फासी पर लटकने को तुला हुआ है।"

"जो इनने फासी हो गयी ते " बूढा सरदार बिलख उठा।

"जैसा मैं कहता हू यह वही बयान अदालत मे दे दे तो फासी नही होगी।

इतनी-सी बात इसकी समझ में नहीं आती। इसके भेजे में तो गोबर भरा हुआ है। रक्खी से इसका संबंध था। जोगिंदर ने इन्हें रंगे-हाथ पकड़ लिया। उसके सिर पर खून सवार हो गया। वह गंडासा लेकर दोनों पर पिल पड़ा। छीना-झपटी में गंडासा उलटा जोगिंदर को लगा और वह वहीं ढेर हो गया ''

"यह झूठ है। गंडासा मेरे हाथ में था। मैं जोगिंदर को मारने के लिए ''

"फिर वही मुर्गे की एक टांग—सरदारजी! तुम्हारा लौंडा पहले दर्जे का वह है · "

"गोपिया! मेरी ओर वेख पुत्रा" बूढ़े सरदार ने कहा।

लड़का सहम कर और झुक गया। वह जानता था बूढ़े बाप की आंखें गाढ़ी दल-दल की तरह उसके मन को पकड़ लेंगी और फिर वह कभी नहीं छोड़ेगी।

वकील साहब ने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया। ऐसी बेबसी से उनका आज तक साबका नहीं पड़ा था। बड़े खुरदुरे, बेमरूअत और कारोबारी किस्म के आदमी थे। न जाने कितने डाकुओं, कातिलों और दिमागी तौर पर बीमार मरीज़ों को फांसी के तख्ते से उतार लाये थे। किसी मुकदमे में उन्होंने *जज़बात* (भावुकता) को कभी शरीक नहीं किया। लेकिन इस बूढ़े सरदार और दुबले-पतले लड़के को देख कर दिल पर न जाने कहां ऐसा वे जगह घूसा लगा था कि बेचारे बेबस से हो गये थे। मआज अल्लाह! क्या सूरत पायी थी बदनसीब ने लगता था चंदन का पौधा सोंधी-सोंधी मिट्टी से तड़प कर निकल खड़ा हुआ हो।

"गोपाल सिंह · कभी फांसी देखी है?"

"नहीं जी · "

"जानते हो बच्चा, फांसी कितनी भयानक होती है? आंखें उबल कर गालों पर लटक आती है। जबान बाहर निकल पड़ती है। गर्दन खिंच कर हाथ भर लंबी हो जाती है।" वकील साहब निहायत डरावनी और दृढ़ता की आवाज में गोपाल को इस तरह डराने लगे कि खुद उनकी पीठ पर कनखजूरा रेंग गया। गोपाल सिंह के ऊदे होंठ कांपे और वह दांतों में हथेली दबा कर रो पड़ा। दूध की कटोरियों में तैरते सुनहले तार के फूलों की बूटियां उथल-पुथल हो गयी।

"तुम रक्खी को बचपन से जानते हो?" वकील साहब ने बात घुमायी।

"हां जी। इनने, उनने, कट्ठे खेला कर दे जी · " बूढ़े सरदारजी ने जमीन से

कोई फुटभर की बलदी नापी।

गोपाल के चेहरे पर नर्म-नर्म बचपन निखर आया। वकील साहब को फिर खुदा की कुदरत याद आ गयी। फरिश्तो ने जाने कितने चेहरो की मासूमियत चुरा कर इस छोकरे पर जाया की होगी!

"इसका मतलब है कि तुम बचपन से एक-दूसरे को चाहते थे।"

"बच्चे तो बदर समान होते हैं। चाहना-वाहना कैसा। घडी मे मिलाप, घडी मे झगडा। अभी गले मे बाहे डाले हरी-हरी घास मे बीर-बहूटिया ढूढ रहे है और जरा देर मे एक-दूसरे के बाल खसोटने लगे। और रक्खी तो पूरी मिर्च थी। किसी से उसकी दो घडी को न बनती। बस एक गोपाल ही था जो उसकी नादिरशाही झेल लेता था। बुढापे की औलाद था न। उसका दिल भी बडाबूढा था। रक्खी दुतकार देती तो मुह लटकाये मा के कूल्हे से लग कर बैठ जाता। फिर उसका मन चाहता और पुकारती तो भागा-भागा उसके पास पहुच जाता ·· "

थोडी और बड़ी हुई तो दूसरी लडकियो की टोली मे सिर जोड़े न जाने क्या-क्या बातें करती। एकदम गोपाल से फिरट हो गयी।

"छोकरे बहुत खराब होते है, उनके मन मे खोट होता है" रक्खी ने गोपाल को समझाया और वह समझ गया। फिर उसके दिल मे खोट कुलबुलाने लगा। इसके बाद रक्खी को भी खोट से रुचि हो गयी। कभी रूठ जाती, कभी आप ही आप मान जाती।"

"देख रे गोपी--अगर तूने कभी मुझ से प्रेम-वरेम किया तो अच्छा न होगा। चाची से कह कर इतने जूते लगवाऊगी कि पगडी ढीली हो जायेगी--"

"चल भुतनी! क्या बावले कुत्ते ने काटा है जो मैं तुझ से प्रेम करूगा?" गोपाल चढ जाता।

"क्यो रे पाजी मुझ मे क्या ऐंब है? काली-कलूटी हू? लगडी हू? कानी हूं जो मुझ से प्रेम नही करेगा—बोल"—वह लडने लगती।

"बस मेरी मर्जी होगी करूगा मेरी मर्जी होगी नही करूंगा" गोपाल अकड़ता।

"अह्हह—बडा आया मर्जी का सगा। चल। जा चूल्हे मे" वह उखड जाती और कई दिन तक नाक उचकाये रहती। गोपाल की दुनिया अंधेर हो जाती। वह

पीला-पीला मुंह लिये इधर-उधर घूमता। फिर न जाने रक्खी की कौन-सी रग फड़कती कि एकदम नर्म हो जाती !

"हाय गोपी तेरे बिना कैसे जीऊंगी। मैं तो संखिया खाकर सो रहूंगी।"

गोपाल के मुंह पर रौनक आ जाती। आंखें सुलग उठतीं तो वह फिर एकदम पलट कर फन मारती।

"क्यों रे तूने क्या समझा है रे ? खबरदार जो मीठी-मीठी आंखों से देखा। कसम से दीदे फोड़ दूंगी," वह बेबात के फड़क उठती !

खुदा ने भी औरत-मर्द के दरमियान क्या अजीब तूफान जोड़ दिया है। एक घूंट अमृत का तो एक घूंट जहर का। कभी गुस्से में प्यार तो कभी प्यार में गुस्सा और दोनों में एक लज्जत। दोनों में दुख।

"गोपी रे—इधर मैं नहा रही हूं तू दूसरी तरफ मुंह करके बैठना और जो इधर देखे तो वाह गुरु तेरी आंखें ही पट्टम कर दे "

मगर जब गोपाल ने ईमानदारी से मुंह ही न फेरा बल्कि उठकर पत्थरों की ओट चला गया तो रक्खी बुरा मान गयी !

और जब रक्खी की चीखें सुन कर वह उसे बचाने के लिए पानी में कूदा तो वह भाड़ का कांटा बन गयी। उसका सारा मुंह खसोट डाला। खूब गालियां सुनायीं। उसके बालों में भूल गयी। गरीब खुद डूबते-डूबते बचा !

"तेरी बला से। मुझे डूबने दिया होता। सूअर मैं तेरी कौन लगती हूं।" गोपाल के विरोध पर वह उल्टे ताने देने लगी लेकिन जब वह खिसियाता हुआ वापस होने लगा तो नर्म पड़ गयी।

"चल जनम-जले अब तो तू ने मुझे देख ही लिया और तेरे कपड़े भी भीग गये हैं। उधर पत्थर पर सुखाने को डाल दे और तू भी नहा डाल। बड़ी सड़ांध आ रही है तुझ में से। मगर खबरदार इधर मत आना। पल्ली तरफ ही नहाना, हां।"

मगर कौन रहता है परली तरफ—और फिर बाज दूरियां बड़ी खतरनाक होती हैं। ज्यादा निकटता में बेपर्दगी का खतरा भी कम हो जाता है। शबराती पानी से बाहर और काफी दूर था। उसने देख लिया और बड़ा शोर मचाया। रक्खी के बाबा से जाकर शिकायत ठोंक दी ··

बड़ी ले-दे हुई ! हालांकि गोपाल सिर्फ अपने जूड़े में अटकी हुई रक्खी की नथ

छुडाने मे लगा था लेकिन शबराती ने जो हाहाकार मचायी तो रक्खो का नथना कटते-कटते बचा। सारे गाव मे हुल्लड मच गयी। रक्खी के शराबी बाप ने उसे चार चोट मार दी। बाल पकड कर सारे आगन मे घसीटा। फिर भूखा-प्यासा कोठरी मे बद कर दिया।

गोपाल सिंह के औसान ऐसे खता हुए कि भैंसो बोखार चढ आया। दूसरे दिन से अगर टाईफायड मे उसकी जान के लाले न पड़ गये होते तो भान सिंह गडासे से उसकी गर्दन उडा देता!

दो महीने तक वह मौत से लड़ता रहा। जिस दिन रक्खी की शादी जोगिंदर से हुई उसी दिन वैद्यजी ने गोपाल को जिंदगी की तरफ से जवाब दे दिया था। जब वह आहिस्ता-आहिस्ता चल कर धूप मे बैठने के काबिल हुआ तो लोग अब तक तालाब वाले हादसे को भूल चुके थे। वैसे गाव की तारीख मे यह कोई इतनी बेमिसाल और भयानक बात भी नही थी।

"बीमारी से अच्छे होने के बाद तुम ने रक्खी की शादी पर अफसोस किया होगा?" वकील साहब ने पूछा। गोपाल सोच मे पड गया! बीमारी से उठकर तो वह बस बहुत दिनो तक खाने को तरसता रहा। वैद्यजी कहते थे सिर्फ पतली दाल दो और गोपाल का जी चाहता कि सारी दुनिया को हडप कर जाय। फिर जब वह थोडा तगडा हो गया तो काम पर जाने लगा। रक्खी बनी-ठनी सहेलियों के साथ ठठोल करती, गहने चमकाती फिरती। वह चिढ-सा गया—"औरत की जात कमीनी होती है"—यह सोच कर उसका कलेजा ठंडा हो गया था। "जेवर कपड़ा दे दो और लौंडी बना लो—"

मेरे तो गिरधर गोपाल
दूसरा न कोई।

क्या लहक कर गाया करती थी—"हाय गोपियें तेरे बिना कैसे जीऊगी"—और नामुराद जनम-जली खूब जी रही थी!

"चल-चल तू कहा से गिरधर बन बैठा मूरख तू तो निरा गोपाल है—अरे भई तू मेरा तो कोई भी नहीं · "

वह एक दिन सूप मांगने को आयी तो गोपाल को चिढ़ाने लगी। न जाने क्यों

गोपाल की आंखें छलछला आयीं। वह ठट्ठा मारकर हंसने लगी !

"हाय मैं मर गयी। हाय कहीं मर्द भी रोया करते हैं ? मर्द तो रुलाते हैं

"जोगिंदर तुझे जी भर कर रुलायेगा," उसने कोसा।

"रुलाएगा तो रोऊंगी, हंसाएगा तो हंसूंगी, मेरा स्वामी जो हुआ।"

गोपाल का जी चाहा कि रुक्मी के मुंह पर इतनी जोर का थप्पड़ मारे उसके मुन्ने-मुन्ने सफेद दांत चावलों की तरह बिखर जायें लेकिन उसने औरत हाथ छोड़ना नहीं सीखा था। वह उठकर जाने लगा तो रुक्मी सहम गयी।

"अरे गोपालजी नाराज हो गये ? न जी। बिगड़ो नहीं," वह उसके पैरों उलझ गयी—"हाय जो तुम सच्ची में रूठे तो मेरे प्रान निकल जायेंगे। अरे मेरे चोटी पकड़ कर दो थप्पड़ मार लो पर नाराज न हो गोपिया तू तो मेरा सब कुछ है..." उसने बोझिल आवाज़ में कहा—"ब्याह होना तो अलग बात है मितवा... मेरा तेरा तो जनम-जनम का साथ है रे तू मेरा गिरधर गोपाल नहीं तो और कौन है ? देख गोपिया कभी कोई संकट आन पड़ा तो तुझे ही पुकारूंगी। तब मेरी रक्षा के लिए तू अपना चक्र घुमाते आना। आओगे न। वचन दो।"

गोपाल उसे झटक कर ऊपर कोठरी में जा कर पड़ गया। उसने रुक्मी को कोई वचन नहीं दिया। मगर वचन देना न देना क्या उसके बस की बात है ?

वह जब भी आती अपने पति के गुण गाने लगती—"हाय राम... मुझे इतना प्यार करता है कि बस," वह आंखों में परियां नचा कर कहती और जब गोपाल की नाक तमतमा उठती तो खूब हंसती।

"अरे गोपाल तू मेरे गबरू से जलता है," वह चिढ़ाती।

"अरे तेरे जूते जो मारता है तब...?"

"हां मारता है तो दुलार भी तो कैसे करता है," वह फाहिशा औरतों की तरह आंखें मटकाती—"सभी पति अपनी पत्नियों को मारते हैं। तेरे संग ब्याह होता तो तू भी छोड़ देता ? तू भी तो मारता पीटता..."

"मैं नहीं मारता पीटता।"

"सच्ची कभी प्यार से भी नहीं पिटाई करता ?"

मगर रुक्मी की यह हंसी थोड़े ही दिन की...

जोगिंदर, कई-कई...

तरह उसे धुनता कि सारे मोहल्ले मे जाग हो जाती। चारो तरफ से गालिया पडती और फिर खामोशी हो जाती। तीसरे-चौथे दिन फिर वही तमाशा होता और फिर तो यह रोजाना की बात हो गयी। इधर आधी रात बीती उधर रक्खी की चीखे गूजी। मोहल्ले वाले भी कुछ आदी हो गये। बहुत ही आफत मचती तभी कुछ चौकते। मगर गोपाल के कानो मे रक्खी की चीखे गर्म सलाखो की तरह उतर जाती। रक्खी के गहने आहिस्ता-आहिस्ता उसके जिस्म मे गायब होने लगे—जोगिंदर हफ्तो के लिए गायब होने लगा। वह नौकरिया भी कई बदल चुका था। रक्खी खूब बीमार पडी। गर्भपात होने के बाद कुछ दूसरी औरतो की मुसीबतें खडी हो गयी थी। अब उसने घर से निकलना भी कम कर दिया।

जब कोई पति अपनी पत्नी को मारे-पीटे या उसका निरादर करे तो लोग बीवी को ही कुसूरवार समझते है। रक्खी के भी सारे ऐब उभर आये। लोग मुह पर सुना देते !

एक दिन वह तालाब से पानी भर कर लौट रही थी तो गोपाल से मुठभेड हो गयी। उसके कपडे मैले और फटे हुए थे। बाल खुश्क और चेहरा पीला पड गया था। वह बाल्टिया उठा कर चली तो पाव ठीक से नही पड रहे थे। गोपाल का खून खौल उठा। वह उसके सामने जा खडा हुआ !

"गोपी," बड़े गुरूर से उसने कहा—"मेरे रास्ते से हट जा।" उसकी सास फूल रही थी लेकिन उसने बाल्टिया नही छोडी !

"कल रात तेरे पति के प्यार की बडी जोरदार आवाजें आ रही थी गोपाल ने ताना मारा।

"तेरी बला से तू कौन ?"

"मैं तेरा कोई नही रक्खी ?"

"नही," रक्खी ने उबलते हुए आसूओ के डर से गर्दन फेर ली।

"न गिरधर, न गोपाल · ?"

"मुझे जाने दे गोपिया "

"मुझसे छिपानी है ?"

"बताने से फायदा ? कोई क्या कर सकता है उसका ?"

"मैं उस हरामी का गला दबा सकता हूं···"

"हाय मेरी मा ? तू मुझे बेवा कर देगा ?"

"हा अब तेरी चीखें मुझसे नही सुनी जाती।"

"तू अपने कान मे रूई ठूस ले ···"

"मैं उसकी हलक मे कृपाण उतार दूगा," गोपाल कापने लगा।

"हाय राम। अच्छा अब मैं न चीखूगी। मुह मे ताला लगा लूगी · "

"मैं तब भी तेरी चीखे सुन लूगा—"

"मैं पुकारू न पुकारू गोपाल को चक्र लेकर आना ही होगा ?" वह पत्थर पर बैठकर हसने लगी ! फिर उदास हो गयी ! "वह नामुराद क्या करे ? वह रडी निर्दयी है। नाराज हो जाती है तो निकालकर कुडी चढा लेती है। फिर मर्द अपना गुस्सा किस पर उतारे···?"

"अगर अब उसने तुझे मारा तो मैं उसकी छुट्टी कर दूगा।"

वह गुस्से से उठ कर जाने लगा तो रक्खी ने उसके पैरो को हाथ लगाया। उसके जिस्म की सारी शक्ति घुल कर पानी हो गयी।

"गोपी !" वह धीमी आवाज मे बोली। गोपाल का जी डूबने लगा।

"क्या है ?" वह चिढ कर बोला।

"तेरी सूरत देखे जी नही भरता," वह भूखी नजरे उसके चेहरे पर जमा कर बोली !

"मुझे जाने दे रक्खी," गोपाल ने मिन्नत की।

"अरे अब तू भाग कर कहा जायेगा गोपिये ?" उसने पैर छोडकर हाथ अपनी सूनी गोद मे रख लिये जो कुछ ही दिन हुए अगारो से भर गयी थी। "मेरा तेरा नाता हाथ-पैर का नही जो टूट सके, अपने मन से चला जा पर मेरे मन से कैसे छूटेगा !"

गोपालसिंह आगे झुककर सिर इधर-उधर झटकने लगा जैसे वह किसी तग सुराख मे फसकर रह गया हो।

"मुशीजी ! अगर कान कुरेदने से फुर्सत हो तो पिछली पेशी की फाइल सरका दीजिये।" वकील साहब ने ठडी सास ली ! "सरदारजी लड़का आना-कानी पर तुला हुआ है। इसमे कोई शक नही कि रक्खी ने इसे फास

रखा था।"

"नही वकील साहब नही," गोपाल थक चुका था।

"अरे भाई कितने मर्द शराब पीते है और बीवियों को भी मारते हैं, मगर किसी की नीद उचाट नही होती·"

"लेकिन उसकी चीखें मुझे पागल किये दे रही थी वकील साहब। तभी तो मैंने कसम खायी कि मै जोगिदर को खतम कर दूगा मगर मैं बडा कायर निकला," गोपाल सिंह ने अपना सिर दोनों हाथो मे थाम लिया।

चीखें काली कलूटी रातों की धज्जियां उडा रही थी। लोग दिन भर की मेहनत के थका देने वाले नशे मे चूर बेहोश थे। मगर एक बदनसीब जाग रहा था!

उसने दरवाज़े की कुडी खटखटाई। दरवाज़ा खुला हुआ था और उसने देखा था कि रक्खी को जोगिदर सिंह चारपाई के चारो तरफ दौडा रहा है। रक्खी के जिस्म पर एक तार भी बाकी न बचा था। उसका चदन जैसा जिस्म नीला हो रहा था—जैसे सापों ने फन मारे हो। गोपाल को देख कर जोगिदर आखें मिचमिचाने लगा।

"कौन हो तुम भाई?" उसने बड़े प्यार से पूछा।

"इसे मत मारो," गोपाल ने इलतिजा की!

"क्यो?" वह बुरा मान गया—"तू कौन है रे? इसका यार?"

"नही।"

"अरे तू इसका यार नही? क्यो? भाई तू इसका यार क्यो नही? मैं भी इसका यार नही। मूतरी जैसी बास आती है। जरा भी 'खोश बू' नही। सूघ जरा इसे। अरे मैं कहता हू सूघ।"

"तुम नशे मे हो जोगिदर—"

"अच्छा इसका प्यार ले··· बिल्कुल सडास ऐसी बास आती है। अरे तू मेरा भाई है। तू इसका प्यार ले। मै जो कहता हू···"

"बकवास बद करो," गोपाल का खून खौल गया। उसने लपककर जोगिदर का गरीबान पकड़ लिया और झटके देने लगा। मगर वह एक इच भी नही

हिला। चट्टान की तरह खड़ा हंसता रहा और गोपाल मक्खी की तरह भनभनाता रहा। फिर जोगिंदर ने होले से मक्खी को दूर झाड़ दिया और दरवाज़ा बंद कर लिया। और फिर चीखें उठीं और गोपाल के सिर पर घन-सी बरसती रहीं!

इन्हीं दिनों गोपाल के लिए इंदौर से रिश्ता आया और वह अपने पिताजी के साथ अपनी दुल्हन को देखने चला गया। वहां निर्मल की मुस्कुराहटें थीं और रक्खी की चीखें नहीं थीं। मगनी के बाद जब वह लौटे तो सब बधाई देने आये। रक्खी तो उन दिनों नाचती फिरी। उसे खुश देख कर गोपाल भी खुश था।

"कैसा लगा?" जब सब इधर-उधर हो गये तब रक्खी ने गोपाल से पूछा।

"अच्छा लगा।"

"निर्मल रानी की बता—मोटी तो नहीं है।"

"नहीं ठीक है।"

"लंबी है कि नाटी?"

"मेरी ठोड़ी तक आती है।"

"ऐ है! हाथ-पैर? गोरे-गोरे? छोटे-छोटे?"

"बहुत गोरे तो नहीं ··हां छोटे तो हैं···"

"और कमर? कमर तो पतली होगी?"

"अब मुझे क्या मालूम? मोटी है कि कमर पतली ···कोई मैंने नापी थी···"

"अरे भोलेनाथ···कमर ही का तो सारा खेल है· अबके जाना तो सारा बदन नापना, हां···"

"तूने अपने पति का नापा था··?"

"इसका इस समय क्या ज़िक्र है," वह बिगड़ गयी—"तू अपनी बता···प्यार लिया तू ने?"

गोपाल सिर हिलाकर मुस्कुराया!

"हां मज़ा आया होगा। मेरा पति भी जब प्यार करता था तो समूची जान होठों पर आ जाती थी···"

"अब प्यार नहीं करता?" गोपाल ने कुरेदा!

"जाने दे। मैं जनम-जली हूँ रे..." उसने ठंडी सांस भरी।

"गोपालसिंह। रक्खी कोर्ट में यह बयान देने को तैयार है कि उसका तुमसे नाजायज संबंध था—" वकील साहब फिर बोले।

"कमीनी सूअर की बच्ची," गोपाल भड़क उठा— "झूठी हरामजादी," वह उस रक्खी को गालियां देने लगा जो उसकी अपनी रक्खी पर इतना बड़ा पाप का दाग लगा रही थी।

यह चीखें पहले से भी ज्यादा भयानक होती गयीं। रात के सन्नाटे को चीरती हुई भुतनियों की तरह उभरती फिर सिसकियों में डूब जाती और फिर उभरती। गोपाल को सोते हुए भी डर लगता कि जैसे उसने आग मूदी चीखें जाग पड़ेंगी और फिर नींद टूट जायेगी। कभी-कभी वह सुबह तक चीख के इंतजार में जागता रहता। न चीख आती न नींद।

उस रात उसने बड़े इत्मीनान से गंडासा मचान पर से उतारा और उसे पुलिया के पत्थर पर घिस-घिस कर तेज़ करने लगा।

आधी से ज्यादा रात बीत गयी मगर चीख की आवाज़ न आयी। शायद जोगिंदर की रक्खी मेहरबान थी। गोपालसिंह को झपकियां आने लगीं और वह घर आकर सो रहा।

जब पहली चीख उसके कानों में टकराई तो उसने समझा यह उसका वहम है। किसी बीती पुरानी चीख की अनुगूंज है। मगर लगातार आध घंटे तक रक्खी की चीखें गोपाल के भेजे को आरे की तरह चीरती रहीं। काश वह गंडासे से अपना ही सिर काट सकता। चीखों से तो छुटकारा मिल जाता!

फिर क्या हुआ कुछ याद नहीं। सिर्फ इतना याद है कि जोगिंदर रक्खी को बालों से पकड़े पुराने चीथड़े की तरह झटक रहा था। रक्खी के जिस्म पर उसकी मस्की हुई साल के सिवा कुछ न था। नकसीर फूटकर गाढ़ा-गाढ़ा खून छाती की नीची-ऊंची गहराईयों पर से बहता हुआ घुटनों तक टपक रहा था जहां कभी उसका सीधा-सीधा चेहरा हुआ करता था वहां सिर्फ एक गोश्त का लाल लोथड़ा था। जोगिंदर उसका सिर पाये पर पटक रहा था!

रक्खी की दायें हाथ की हड्डी टूट कर बाहर निकल पडी थी ! जब सहारे के लिए वह जमीन को पकडने लगती तो उसका झूलता हुआ हाथ पीछे को तह हो जाता और हड्डी कच्ची मिट्टी के फर्श मे घुस जाती !

वह कच्ची मिट्टी का फर्श गोपाल की धडकती हुई छाती थी।

यह आखिरी तस्वीर उसकी पुतलियों ने समेट ली थी। फासी के बाद चिता भी उस परछाई को भस्म न कर पायेगी।

उसके हाथो की दसो उगलिया अनगिनत गडासे बन गयी। जोगिंदर का सिर उसके गैंडे जैसी गर्दन मे सडे हुए अमरूद की तरह टपक कर चारपाई के नीचे लुढक गया। ठोकर मे गोपाल ने सिर को बाहर निकाला और खील-खीलकर दिया !

गोपाल की सास उसके फेफड़ो मे उलझ रही थी। दूध की छलकती हुई कटोरियों मे काला-काला मैंस पेच ताव खा रहा था। सुनहरे तार के फुदने मद पड गये थे !

"मैने जोगिंदर को मारा है जी" और जनम-जनम मारता रहूगा "

वकील साहब की आखे लडखडा कर झुक गयी !

बूढे सरदारजी की उम्र के बीस साल सूखे पत्तो की तरह झड गये। छाती चौडी हो गयी।

"वकील साहब," उसकी आवाज़ मे यकीन गूज रहा था—"मेरे पुत्तर ने जेड़ा बयान दीत्ता है उदे बदलन दी जरूरत नयी "

चौथी का जोड़ा

सेहदरी[1] के चौके पर आज साफ-सुथरी जाजिम बिछी थी। टूटी हुई खपरैल की झरियों मे धूप की आड़ी-तिरछी जालिया पूरे दालान मे बिखरी हुई थी। मोहल्ले टोले की औरतें खामोश और सहमी हुई बैठी थी जैसे कोई बडी घटना घटने वाली हो। माओं ने बच्चे छातियों से लगा लिये थे। कभी-कभी कोई बडा दुबला-पतला-सा चिडचिडा बच्चा रसद की कमी की दुहाई देकर भन्ना उठता।

"नाए · नाए मेरे लाल।"

दुबली-पतली मा उसे अपने घुटने पर लिटा कर यू हिलाती जैसे धान मिले चावल सूप मे फटक रही हो। बच्चे हुकारे भर खामोश हो जाते।

आज कितनी आस-भरी निगाहे कुब्रा की मा के फिक्र मे डूबे हुए चेहरे को तक रही थी। छोटे अर्ज की तूल के दो पाट तो जोड लिये गये थे मगर अभी सफेद गजी का निशान ब्योतने[2] की किसी को हिम्मत न पडती थी। काट-छाट के मामले मे कुब्रा की मा का स्थान बहुत ऊचा था। उसके सूखे-सूखे हाथो ने न जाने कितने जहेज सवारे थे। कितने छठी छूछक तैयार किये थे और कितने ही कफन ब्योंते थे। जहा कही मोहल्ले मे कपडा कम पड जाता और लाख जतन पर भी ब्योत न बैठती कुब्रा की मा के पास केस लाया जाता। कुब्रा की मा कान[3] निकाल लेती, कलफ तोडती, कभी तिकोन बनाती, कभी चौखटा करती और दिल ही दिल मे कैंची चला कर आखो मे नाप-तोल मुस्कुरा पडती।

"बांह और घेर तो निकल आयेगा। गरीबान के लिए कतरन मेरी बुकची से ले लो," और मुश्किल आसान हो जाती। कपडा काट कर वह कतरनो की पिंडी बना कर पकडा देती। पर आज तो सफेद गजी का टुकडा बहुत ही छोटा था

---

[1]तीन दरवाजो वाला बरामदा जो प्राय: जनानखाने मे होता है।

[2]कपड़े की काट-छाट मे उस हिसाब को कहते हैं जिसमे बिना कपड़ा बेकार किये अपनी मतलब की चीज काट-छाट कर निकाल लेते हैं।

[3]कपडे फाडने मे कोने तिरछे हो जाते हैं। उसे हाथ से खींच कर सीधा करने को कान निकालना कहते हैं।

और सब को यकीन था कि आज तो कुब्रा की मा की नाप-तोल हार जायेगी जभी तो सब-की-सब दम साधे उनका मुह तक रही थी। कुब्रा की मां के धीरज भरे चेहरे पर फिक्र की कोई शिकन नही थी। चार गिरह गजी के टुकडे को वह निगाहों से ब्योत रही थी। लाल तूल की छाया उसके हल्के नीलाई लिये हुए पीले चेहरे पर उषा की तरह फूट रही थी और उदास-उदास गहरी झुर्रियां अधेरी गुफाओं की तरह एकदम उजागर हो गयी जैसे घने जगल मे आग भडक उठी हो और उसने मुस्कुरा कर कैंची उठा ली।

मोहल्ले वालियों के जमघटे से एक लबी इत्मीनान की सास उभरी। गोद के बच्चे ठमक दिये गये। चील जैसी तेज निगाहो वाली कुआरियो ने लपा-झप सूई के तागे मे डोरे पिरो दिये। नयी ब्याही दुल्हनों ने अपनी उगलियां मे छल्ले पहन लिये। कुब्रा की मा की कैंची चल पडी थी। सेहदरी के आखिरी कोने मे पलगडे पर हमीदा पैर लटकाये हथेली पर ठोडी रखे कुछ सोच रही थी।

दोपहर का खाना निबटा कर बी अम्मा सेहदरी की चौकी पर जा बैठती थी और बुकची खोल कर रग-बिरंगे कपडो का जाल बिखेर दिया करती थीं। कौड़ी के पास बैठी बर्तन माजती हुई कुब्रा कनखियो से उन लाल-लाल कपडो को देखती तो एक सुर्ख झपकी-सी उसके पीले मटियाले रग मे लपक उठती। रूपहली कटोरियो के जाल जब पूरे-पूरे हाथो मे खोल कर अपनी जाघो पर फैलाती तो उसका मुर्झाया हुआ चेहरा अजीब अरमान-भरी रोशनी से जगमगा उठता। गहरी खदकों जैसी झुर्रियों पर कटोरियो की छाया नन्ही-मुन्नी मशालो की तरह जगमगाने लगती। हर टाके पर जरी का काम हिलता और मशाले कपकपा उठती।

याद नही उस शबनमी दुपट्टे मे पहले और कितने दुपट्टे बने टके तैयार हुए और लकडी के भारी कब्र जैसे सदूक की तह मे डूब गये। कटोरियो के जाल धुधला गये। गगा-जमुनी कोरें माद पड गयी। तोई के लच्छे उदास हो गये मगर कुब्रा की बारात न आयी। जब एक जोडा पुराना हो जाता तो उसे चाले का जोड़ा कहकर सेंत दिया जाता और फिर एक नये जोडे के साथ नयी उम्मीदो की शुरआत हो जाती। नयी छानबीन के साथ नयी अतलस छाटी जाती। सेहदरी के चौके पर साफ-सुथरी जाजिम बिछती। मोहल्ले की औरतें मुह मे पान और बगल मे

बच्चे दबाये झांझन बजाती आ पहुचती !

"छोटे कपड़े की गोट तो निकल आयेगी पर बिचपयो का कपडा न निकलेगा।"

"लो बुआ और सुनो तो क्या निगोडी मारी तूल की बिचया पडेगी ?"

और फिर सब के चेहरे चिंतित हो जाते। कुब्रा की मा खामोश माहिर की तरह आख के फीते से कपडे की लबाई-चौडाई नापती और बीवियां आपस मे छोटे कपडो के बारे मे खुसर-फुसर करके कहकहे लगाती। ऐसे मे कोई मनचली सोहाग या बन्ना छेड देती। कोई और चार हाथ आगे वाली ब्याली समधिन को गालिया सुनाने लगती। बेहूदा गदे मजाक और चुहलें शुरू हो जाती। ऐसे मौको पर कुआरी बालियों को सेहदरी से दूर सिर ढाक कर खपरैल मे बैठने का हुकुम दिया जाता और जब कोई नया कहकहा सेहदरी मे उभरता तो बेचारियां एक ठडी साम भरकर रह जाती। "अल्लाह यह कहकहे उन्हें खुद कब नसीब होंगे ?"

उस चुहल से दूर कुब्रा शरम की मारी मच्छरो वाली कोठरी में सिर झुकाये बैठी रहती। इसी बीच कतर-ब्योत बडी नाजुक हालत पर पहुच जाती। कोई कली उल्टी कट जाती और उसके साथ-साथ बीवियो की मत भी कट जाती। कुब्रा सहम कर दरवाज़े की आड से झाकती !

यही तो मुश्किल थी कि कोई जोडा अल्लाह मारा चैन से न सिलने पाया। जो कली उल्टी कट जाये तो जान लो नयी नाईन की लगायी हुई बात मे ज़रूर कोई अडगा लगेगा। या तो दूल्हा की कोई रखैल निकल आयेगी या उसकी मा ठोस कडो का अडगडा[1] बांधेगी, जो गोट मे काम आ जाये तो या मेहर पर बात टूटेगी या भरत के पायों[2] के पलग पर झगडा होगा। चौथी का शगुन बडा नाजुक होता है। बी अम्मा की सारी तजुरबेकारी और उनका सुघड़ापा धरा रह जाता। न जाने ठीक वक्त पर क्या हो जाता कि धनिया बराबर बात बढ़ जाती।

---

[1]वह लडकी जिसमे गाड़ी के घोडे जोत कर दौडाया जाता है और इस तरह उसे गाड़ी जोतने के लायक बनाया जाता है।

[2]कांस की धात का बना पाया।

बिस्मिल्लाह[1] के रोज से मुघट मा ने जहेज जोडना शुरू कर दिया था। जरा-सी कतरन बचनी तो तिलेदानी या इतर की शीशी का गिलाफ-सी कर घनुक[2] गोखरु से संवार कर रख देनी। लडकी का क्या है खीरे ककडी की तरह बढती है। जो बारात आयेगी तो यही सलीका काम आयेगा।

और जब से अब्बा गुज़रे इस गुन और ढग का भी दम फूल गया। हमीदा को एकदम अपने अब्बा याद आ गये। अब्बा कितने दुबले-पतले थे। लबे जैसे मोहर्रम का झडा। झुक जाते तो सीधा खडा होना मुश्किल था। सुबह-सुबह ही उठकर नीम की दातून तोड लाते और हमीदा को घुटने पर बैठा कर न जाने क्या सोचा करते। फिर सोचते-सोचते नीम की दातून का कोई फोसडा गले मे चला जाता और वह खासते ही चले जाते। हमीदा बिगड कर उनकी गोद से उतर आती! खांसी के धक्कों से यो हिल-हिल जाना उसे बिल्कुल पसद नही था। उसके नन्हें से गुस्से पर वह और हंसते और खांसी सीने मे बेतरह उलझती जैसे गर्दन कटे कबूतर फड़फडा रहे हों। फिर बी अम्मा आकर उन्हे सहारा देती। पीठ पर धप-धप हाथ मारती।

"तौबा है · ऐसी भी क्या हसी ?"

अच्छो के दबाव से सुर्ख आखें ऊपर उठाकर अब्बा बेकसी से मुस्कुराने लगते। खासी तो रुक जाती लेकिन वह देर तक हाफा करते।

"कुछ दवा-दारू क्यो नही करते कितनी बार कहा तुमसे ···"

"बड़े अस्पताल का डाक्टर कहता है सूइया लगवाओ। रोज तीन पाव दूध और आधी छटाक मक्खन खाओ ···"

"ऐ खाक पड़े उन डाक्टरो की सूरत पर। भला एक तो खासी ऊपर से चिक-नाई। बलगम न पैदा कर देगी। हकीम को दिखाओ किसी ···"

"दिखाऊगा।"

अब्बा हुक्का गुडगुडाते और फिर अच्छा लगता—

"आग लगे उस मुये हुक्के को। उसी ने तो यह खासी लगायी है। जवान बेटी

[1] किसी काम के शुरू करने को कहते हैं! यह एक सस्कार भी है जो पढाई-लिखाई शुरू कराने समय किया जाता है।

[2] गोटे, सलमो सितारो के साथ लगाने वाला एक फूल!

की तरफ भी देखते हो आख उठा कर ''

और अब अब्बा कुब्रा की जवानी को तरफ रहम की भीख मागती हुई निगाहों से देखते। कुब्रा जवान थी ? कौन कहता था जवान थी ? वह तो बिसिमल्लाह के दिन से ही अपने जवान होने की बात सुनकर ठिठक कर रह गयी थी। न जाने कैसी जवानी आयी थी कि न तो उसकी आखो मे परिया नाची न उसके गालों पर जुल्फें परेशान हुई, न उसके सीने मे तूफान उठे। न कभी उसने सावन-भादों की घटाओ से मचल कर प्रीतम या साजन मागे। वह झुकी-झुकी, सहमी-सहमी जवानी जो न जाने कब दबे पाव उस पर रेंग आयी वैसे ही चुपचाप न जाने किधर चल दी। मीठा बरस नमकीन हुआ और फिर कडुआ हो गया।

अब्बा एक दिन चौखट पर औधे मुह गिरे और उन्हे उठाने के लिए किसी हकीम या डाक्टर का नुस्खा न आ सका और हमीदा ने मीठी रोटी के लिए जिद्द करनी छोड दी और कुब्रा के पैगाम[1] न जाने किधर रास्ता भूल गये, जानो किसी को मालूम ही नही कि उस टाट के पर्दे के पीछे किसी की जवानी आखिरी सिसकियां ले रही है और एक नयी जवानी साप के फन की तरह उठ रही है। मगर बी अम्मा का दस्तूर न टूटा। वह उसी तरह रोज़ दोपहर को सेहदरी मे रग-बिरगे कपडे फैलाकर गुडियो का खेल-खेला करती। उन्होने कही-न-कही से जोड-जमाकर शबरात के महीने मे क्रेप का दुपट्टा साढे-सात रुपये मे खरीद ही डाला। बात ही ऐसी थी कि बगैर खरीदे गुजारा न था। मझले मामू का तार आया कि उनका बडा लडका राहत पुलिस की ट्रेनिंग के सिलसिले मे आ रहा है। बी अम्मा के तो बस जैसे एकदम घबराहट का दौरा पड गया। जानो राहत नही, चौखट पर बारात आयी खडी हो और उन्होने अभी दुल्हन के माग की अफशाँ[2] भी नही कतरी। होल से उनके तो छक्के छूट गये। झट अपने मुह-बोली बहन बदो की मा को बुला भेजा।

"बहन मेरी, मेरा मरा मुह देखो जो इस घडी न आओ।"

और फिर दोनो मे खुसुर-फुसर हुई। बीच मे एक नजर दोनो कुब्रा पर भी

[1]मुसलमान घरानो म शादी का प्रस्ताव लडके वाला करता है और लडकी के घर भिजवाता है। इसी को पैगाम कहते हैं।

[2]माग मे भरने के लिए सुनहरी-रुपहली जरी।

डाल लेतीं जो दालान में बैठी चावल फटक रही थी। वह उस काना-फूसी की जबान को अच्छी तरह समझती थी। उसी वक्त बी अम्मा ने कानों की चार माशे की लौंग उतार कर मुह-बोली बहन के हवाले की कि जैसे-तैसे करके शाम तक तोला-भर गोखरू, छह माशे सलमे सितारे और पाव गज़ नेफे के लिए तूल ला दे। बाहर की तरफ वाला कमरा झाड-पोंछ कर तैयार किया। थोड़ा-सा चूना मगा कर कुब्रा ने अपने हाथों से कमरा पोत डाला। कमरा तो चिट्टा हो गया मगर उसकी हथेलियों की खाल उड गयी और जब वह शाम को मसाला पीसने बैठी तो चक्कर खाकर दोहरी हो गयी।

सारी रात करवटें बदलते गुजरी। एक तो हथेलियों की वजह से दूसरे सुबह-सुबह की गाडी से राहत आ रहे थे।

"अल्लाह ... ...मेरे अल्लाह मिया ... अबके तो मेरी आपा के नसीब खुल जायें ... ... मेरे अल्लाह मैं सौ रकअत[1] नफ़ल[2] तेरी दरगाह मे पढ़ूंगी।" हमीदा ने सुबह की नमाज़ पढ़ कर दुआ मागी।

सुबह जब राहत भाई आये तो कुब्रा पहले ही से मच्छरों वाली कोठरी मे जा छिपी थी। जब सेवैयों और पराठों का नाश्ता करके बैठक मे चले गये तब धीरे-धीरे नयी दुल्हन की तरह पैर रखती कुब्रा कोठरी से निकली और जूठे बर्तन उठा लिये।

"लाओ मैं धोऊ बी आपा।" हमीदा ने शरारत से कहा।

"नहीं .. " वह शर्म से झुक गयी!

हमीदा छेड़ती रही। बी अम्मा मुस्कुराती रही और क्रेप के दुपट्टे पर पल्लू टाकती रही। जिस रास्ते कान की लौंग गयी थी उसी रास्ते फूल-पत्ता और चादी की पाजेब भी चल दी और फिर हाथों को दो-दो चूड़िया भी जो मंझले मामू ने रंडापा उतारने पर दी थीं। रूखी-सूखी खुद खाकर आये दिन राहत के लिए पराठे तले जाते, कोफ्ते भुनते, पुलाव महकते। खुद सूखा नवाला पानी से उतार कर वह होने वाले दामाद को गोश्त के लच्छे[3] खिलाती।

[1]नमाज़ की एक पूरी विधि!
[2]धन्यवाद की नमाज़ शुकराने की नमाज़।
[3]लच्छे गोश्त के टुकड़े।

"जमाना खराब है बेटी," वह हमीदा की मुंह फुलाये देखकर कहा करती और वह सोचा करती—

"हम भूखे रहकर दामाद को खिला रहे हैं। बी आपा सुबह-सवेरे उठकर जादू की मशीन की तरह काम पर जुट जाती है, बासी-मुंह पानी का घूंट पी कर राहत के लिए पराठे तलती है, दूध औटाती है ताकि मोटी-सी मलाई पड़े। उसका बस नहीं था कि वह अपनी चरबी निकाल कर उन पराठों में भर दे। और क्यों न भरे? आखिर को एक दिन वह उसका अपना हो जायेगा। जो कुछ कमायेगा उसकी हथेली पर रखेगा। फल देने वाले पौधे को कौन नहीं सींचता? फिर जब एक दिन फूल खिलेंगे और फलों से लदी हुई डाली झुकेगी तो ताना देने वालियों के मुंह पर कैसा जूता पड़ेगा।"—और इस ख्याल से बी आपा के मुर्झाये हुए चेहरे पर सोहाग खिल उठता। कानों में शहनाइयां बजने लगतीं और वह राहत भाई के कमरे को झाड़ती, उनके कपड़ों को प्यार से तह करती जैसे वे कुछ उससे कहते हों। वह उसके बदबूदार चूहों जैसे सड़े मौजे धोती, बिसांधी बनियानें और नाक से लथड़े हुए रूमाल साफ करती। उनके तेल से चिपचिपाते हुए तकिए के गिलाफ पर 'स्विट ड्रीम' काढ़ती। पर मामला चारों कोने चौकस नहीं बैठ रहा था। राहत सुबह-सवेरे अंडे पराठे डट कर जाता, शाम को आकर कोफ्ते खा कर सो जाता—और बी अम्मा की मुंह-बोली बहन खुसुर-फुसुर करती—

"बड़ा शर्मिला है बेचारा।" बी अम्मा बात को छिपाती हुई कहती।

"हां यह तो ठीक है पर भाई कुछ तो पता चले रंग-ढंग से, कुछ आंखों से।"

"ऐ नौज! खुदा न करे मेरी लौंडिया आंखें लड़ाये। उसका तो आंचल भी नहीं देखा किसी ने।"

बी अम्मा गर्व से कहती। खाला मेरी जान को आ जाती।

"हाय तो मैं क्या करूं खाला?"

"राहत मियां से बात क्यों नहीं करती अकल-खरी[1]।"

"भैय्या हमें तो शर्म आती है। दूसरे हमें उनसे डर लगता है।"

"ऐ है वह तुझे फाड़ ही खायेगा ना।" बी अम्मां चिढ़ कर बोलती।

---

[1] रूखा व्यवहार, बर्ताव करने वाली।

"नहीं तो मगर· · ' मैं लाजवाब हो जाती।

और फिर 'मिस्कोट' हुई। बड़ी सोच-विचार के बाद खली के कबाब बनाये गये, बहनोई से मजाक करने के लिए। उस दिन बी आपा भी कई बार मुस्कुरा पड़ी।

चुपके से बोली—"देखो हंसना नहीं। नहीं तो सारा खेल बिगड़ जायेगा।"

"नहीं हंसूगी।" मैंने वायदा किया।

"खाना खा लीजिये।" मैंने चौकी पर खाने की सीनी[1] रखते हुए कहा।

फिर जो पट्टी के नीचे रखे हुए लोटे से हाथ धोते वक्त राहत ने मेरी तरफ सिर से पांव तक देखा तो मैं सरपट भागी वहां से। मेरा दिल धक-धक करने लगा।

"अल्लाह तोबा···क्या खुन्नास (बदमाश) आखें है कमबख्त की "

"जा निगोड़ी मर। अरी देख तो सही वह कैसा मुंह बनाता है। सारा मज़ा किरकिरा कर दिया।"

बी अम्मा ने टोका पर मैं टस-से-मस न हुई।

बी आपा ने एक बार मेरी तरफ देखा। उनकी आखों में आरजू थी, लौटी हुई बरातों का गुब्बार था और चौथी के पुराने जोड़ों की तरह उदासी—मैं सिर झुकाये जाकर खंभे से लगकर खड़ी हो गयी।

राहत खामोश खाते रहे। मेरी तरफ न देखा। खली का कबाब खाते देखकर मुझे चाहिए था कि मजाक उड़ाऊं, कहकहे लगाऊं कि—"वाह-जी-वाह दूल्हा भाई।"

"खली खा रहे हो।"—मगर जानो किसी ने मेरा नरखरा दबोच लिया हो।

बी अम्मा ने जल कर मुझे वापस बुला लिया और मुंह-ही-मुंह में कोसने लगी। अब मैं उनसे क्या कहती कि वह तो मजे से खा रहा है। कमबख्त कहीं मुझे भी न खा जाये।

"राहत भाई कोफते पसंद आये?"

बी अम्मा के सिखाने पर पूछना पड़ा।

[1]इसे सामान्यतः सुजनी भी कहते हैं।

जवाब नदारद।

"बताईये न।"

"अरी ठीक से जाकर पूछ।" बी अम्मा ने टोका दिया।

"आपने लाकर दिये हमने खा लिये। मज़ेदार ही होंगे।" वह बोले।

"अरे वाह रे जंगली।" बी अम्मा से न रहा गया तो बोल उठीं—"तुम्हें पता भी न चला। क्या मजे से खली के कबाब खा गये?"

"खली के? अरे तो रोज काहे के होते हैं। मैं तो आदी हो चुका हूं खली और भूसा खाने का" राहत ने चुपके से कहा।

बी अम्मा का मुंह उतर गया। बी आपा की झुकी हुई पलकें फिर न उठ सकीं। दूसरे रोज बी आपा ने रोजाना से दुगनी मिलाई की और फिर शाम को मैं खाना लेकर गयी तो बोले—

"कहिये आज क्या लायी हैं? आज तो लकड़ी के बुरादे की बारी है।"

"क्या हमारे हाथ का खाना आप को पसंद नहीं आता?" मैंने जलकर कहा।

"यह बात नहीं, कुछ अजीब-सा मालूम होता है। कभी खली के कबाब तो कभी भूसे की तरकारी।"

मेरे तन-बदन में आग लग गयी। हम सूखी रोटी खाकर उसे हाथी की खुराक दें, घी टपकते पराठे ठुसायें, मेरी बी आपा को जोशादा नसीब नहीं और उसे दूध-मलाई निगलवायें। मैं भन्ना कर चली आयी।

बी अम्मा की मुंह-बोली बहन का बताया हुआ नुस्खा काम आ गया और राहत ने दिन का ज्यादा हिस्सा घर ही गुजारना शुरू कर दिया। बी आपा तो चूल्हे में झुकी रहतीं। बी अम्मा चौथी के जोड़े सिया करतीं और राहत की गंदी आंखें तीर बनकर मेरे दिल में चुभा करतीं। बात-बे-बात छेड़ना। खाना खाने वक्त कभी पानी तो कभी नमक के बहाने से बुलाना और साथ-साथ जुमला-बाजी। मैं खिसिया कर बी आपा के पास जा बैठती। जी चाहता साफ कह दूं किसी की बकरी और कौन डाले दाना-घास। ऐ बी मुझसे तुम्हारा बैल न नाथा जायेगा। मगर बी आपा के उलझे हुए बालों पर चूल्हे की उड़ती हुई राख नहीं नहीं मेरा कलेजा धक से हो गया। मैंने उसके सफेद बाल लट के नीचे दबा दिये। "नास जाये उस कमबख्त नज़ले का। बेचारी के बाल पकने शुरू हो गये!"

राहत ने फिर किसी बहाने से पुकारा।

"ऊंह"—मैं जल गयी। पर बी आपा ने कटी हुई मुर्गी की तरह जो पलट कर देखा तो मुझे जाना ही पड़ा।

"आपा हम से खफा हो गयीं।" राहत ने पानी का कटोरा लेकर मेरी कलाई पकड़ ली। मेरा दम निकल गया और भागी हाथ झटक कर।

"क्या कह रहे थे ?" बी आपा ने शर्म-ओ-हया से घुटी हुई आवाज में कहा। मैं चुपचाप उसका मुह तकने लगी। क्या कहती ?

"कह रहे थे किसने पकाया है खाना · वाह वाह · जी चाहता है खाता ही जाऊं ··पकाने वाली का हाथ खा जाऊं· ओह · नहीं · खा नहीं जाऊं · बल्कि चूम लूं।"—मैंने कहना शुरू किया और बी आपा का खुरदुरा हल्दी-धनिए के बिसाद मे सड़ता हुआ हाथ अपने गाल से लगा लिया। मेरे आंसू निकल आये।

"यह हाथ।" मैंने सोचा—"जो सुबह से शाम तक जुटे रहते हैं, उनकी बेगार कब खतम होगी ? क्या उनका कोई खरीदार नहीं आयेगा ? क्या उन्हें कभी कोई प्यार से न चूमेगा ? क्या उनमें कभी मेहदी न रचेगी · ? क्या उनमे कभी सोहाग का इतर नहीं बसेगा ?" जी चाहा जोर से चीख पड़ूं।

"और क्या कह रहे थे ?"

बी आपा के हाथ तो इतने खुरदुरे थे पर आवाज इतनी रसीली और मीठी थी कि राहत के कान होते तो···मगर राहत के कान न थे, न नाक, बस नर्क जैसा पेट था।

"और कह रहे थे—अपनी बी आपा से कहना इतना काम न किया करें और जोशांदा पिया करें · "

"चल झूठी···"

"अरे वाह झूठे होंगे आप के वह···"

"अरी चुप मुर्दार।" उसने मेरा मुह बंद कर दिया।

"देख तो स्वेटर बुन गया है। उन्हें दे आ। पर देख तुझे मेरी कसम मेरा नाम न लीजियो।"

'नहीं बी आपा उन्हें न दो स्वेटर···तुम्हारी इन मुट्ठी-भर हड्डियों को स्वेटर

की कितनी जरूरत है।" मैंने कहना चाहा पर कह न सकी।

"आपा बी तुम खुद क्या पहनोगी ?"

"अरे मुझे क्या जरूरत है ? चूल्हे के पास तो वैसे ही झुलसन रहती है।"

स्वेटर देख कर राहत ने अपनी एक भौं शरारत से तान कर कहा—

"क्या यह स्वेटर आपने बुना है ?"

"नहीं तो।"

"तो भई हम नहीं पहनेंगे।"

मेरा जी चाहा उसका मुंह नोच लूं। कमीने मिट्टी के तोदे। यह स्वेटर उन हाथों ने बुना है जो जीते-जागते गुलाम हैं। उसके एक-एक फंदे में नसीबों-जली के अरमानों की गर्दनें फंसी हुई हैं। यह उन हाथों का बुना हुआ है जो पगोड़े झुलाने के लिए पैदा हुए हैं। टूटे बटन और फटा हुआ दामन रफू करने के लिए बनाये गये हैं। उनको थाम लो गधे कहीं के। और यह दो पतवार बड़े-से-बड़े तूफान के थपेड़ों से तुम्हारी जिंदगी की नाव को बचाकर पार लगा देंगे। यह सितार न बजा सकेंगे, मनीपुरी और भरत नाट्यम न दिखा सकेंगे। उन्हें पियानो पर नाच करना नहीं सिखाया गया। उन्हें फूलों से खेलना नसीब नहीं हुआ। मगर ये हाथ तुम्हारे जिस्म पर चरबी चढ़ाने के लिए सुबह से शाम तक सिलाई करते हैं। साबुन और सोडे में डुबकियां लगाते हैं। चूल्हे की आंच सहते हैं। तुम्हारी गदगियां धोते हैं ताकि तुम उजले चिट्टे बगला-भगती का ढोंग रचाये रहो। मेहनत ने उनमें जख्म डाल दिये हैं। उनमें कभी चूड़ियां नहीं खनकती हैं। उन्हें कभी किसी ने प्यार से नहीं थामा !

मगर मैं चुप रही। बी अम्मा कहती हैं मेरा दिमाग तो मेरी नयी-नयी सहेलियों ने खराब कर दिया है—"मुझे कैसी नयी-नयी बातें बताया करती हैं, कैसी डरावनी मौत की बातें, भूख और काल की बातें। धड़कते हुए दिलों के एकदम चुप हो जाने की बातें।"

"यह स्वेटर तो आप ही पहन लीजिये···देखिये न आपका कुर्ता कितना बारीक है।"

जंगली बिल्ली की तरह मैंने उसका मुंह, नाक, गला और बाल नोच डाले और अपनी पलंगड़ी पर जा गिरी।

बी आपा ने आखिरी रोटी टाल कर जल्दी-जल्दी हाथ धो लिये और आंचल से हाथ पोंछती मेरे पास आ बैठी !

"क्या बोले ?" उससे न रहा गया तो धकड़ते हुए दिल से पूछा !

"बी आपा यह राहत भाई बड़े खराब आदमी है।" मैंने सोचा आज सब कुछ बता दूंगी !

"क्यों ?" वह मुस्कुरायी !

"मुझे अच्छे नहीं लगते · यह देखिये मेरी सारी चूड़ियां चूरा हो गयी।" मैंने कांपते हुए कहा।

"बड़े शरीर हैं।" उसने रोमैंटिक आवाज में शरमा कर कहा।

"बी आपा—सुनो बी आपा यह राहत अच्छे आदमी नहीं हैं।" मैंने सुलग कर कहा—"आज बी अम्मा से कह दूंगी।"

"क्या हुआ ?" बी अम्मां ने जा नमाज़ बिछाते हुए पूछा।

"देखिये मेरी चूड़ियां, बी अम्मा।"

"राहत ने तोड़ डालीं।" बी अम्मां खुशी-खुशी से चहक कर बोली !

"हां !"

"खूब किया। तू उसे सताती भी बहुत है · ऐ है तो दम काहे को निकल गया। बड़ी मोम की बनी हुई हो। जरा हाथ लगाया पिघल गयीं।" फिर चुमकार कर बोली—"खैर तू भी चौथी में बदला लीजियो वह कसर निकालियो कि याद करें मियांजी "

यह कह कर उन्होंने नीयत बांध ली !

मुंह-बोली बहन से फिर कान्फ्रेंस हुई और मामलों को उम्मीद के रास्ते पर बढ़ते देख कर बेहद खुशी से मुस्कुरा दिया गया।

"ऐ है, तू तो बड़ी ठस है। ऐ हम तो अपने बहनोइयों का खुदा की कसम नाक में दम कर दिया करते थे।" मुंह-बोली बहन बोली !

और वह मुझे बहनोईयों से छेड़छाड़ करने के हथकंडे बताने लगी कि किस तरह उसने छेड़छाड़ करके अचूक निशाने पर ठीक बैठने वाले नुस्खों से उन दो बहनों की शादी करायी थी जिनके नाव पार लगने के सारे मौके हाथ से निकल चुके थे। एक तो उनमें से हकीमजी थे। जहां बेचारों को लड़की वालियां छेड़ती

शरमाने लगते और शरमाते-शरमाते कपकपी के दौरे पड़ने लगते और एक दिन मामू साहब से कह दिया मुझे गुलामी मे ले लीजिये।

दूसरे वायसराय के दफ्तर मे क्लर्क थे। जहा सुना कि बाहर आये हैं लडकिया छेडना शुरू कर देती। कभी गिलौरियो मे मिर्चे भर कर भेज दी, कभी मेवैयो मे नमक डाल कर खिला दिया।

"ऐ लो वह तो रोज आने लगे। आधी आये, पानी आये क्या मजाल जो वह न आयें। आखिर एक दिन कहलवा ही दिया। अपने एक जान-पहचान वाले से कहा कि उनके यहा शादी करा दो।" पूछा कि "भई किससे ?"

कहा—"किसी से भी करा दो।"—"और खुदा झूठ न बुलवाये तो बडी बहन की सूरत यह थी कि देखो तो जैसे बीचा चली जाती हो। छोटी तो बस सुबहान-अल्लाह एक आख पूरब तो दूसरी पच्छिम। पद्रह तोला सोना दिया है बाप ने और बडे साहब के दफ्तर मे नौकरी अलग दिलवायी।"

"हा भई जिसके पास पद्रह तोले सोना हो और बडे साहब के दफ्तर की नौकरी उसे लडका मिलते क्या देर लगती है।"—बी अम्मा ने ठडी सास भर कहा।

"यह बात नहीं है बहन। आजकल के लड़को का दिल बस थाली का बैगन होता है। जिधर झुका दो उधर ही लुढक जायेगा।"

"मगर राहत तो बैगन नही अच्छा-खासा पहाड है। थाली तो झुका दू पर कही मैं ही न पिस जाऊ।"

मैंने फिर भी आपा की तरफ देखा। वह खामोश देहलीज पर बैठी आटा गूध रही थी और सब कुछ सुनती जा रही थी। उसका बस चलता तो जमीन की छाती फाड कर अपने कुवारेपन की लानत समेत उसमे समा जाती।

क्या मेरी आपा मर्द की भूखी है? नही वह भूख के एहसास से पहले ही सहम चुकी है। मर्द की कल्पना उसके दिमाग मे उमग भर कर नही उभरी बल्कि रोटी, कपड़े का सवाल बनकर उभरी। वह एक वेवा की छाती का बोझ है। उस बोझ को ढकेलना ही होगा।

मगर इशारो और गुप-चुप बातो के बावजूद राहत मिया न तो खुद ही फूटे न उनके घर ही से पैगाम आया। थक, हार के बी अम्मा ने पैरों के तोड़े गिरवी

रख कर पीर मुश्किल कुशा की नियाज़ (भेंट पूजा) कर डाली। दोपहर-भर मोहल्ले-टोले की लड़कियां आंगन में उधम मचाती रहीं। बी आपा शरमाई-लजाई मच्छरों वाली कोठरी में अपने ख़ून की आख़िरी बूंद को चुसाने जा बैठीं। बी अम्मा सेहदरी में अपनी चौकी पर बैठी चौथी के जोड़े में आख़िरी टांके लगाती रहीं। आज उनके चेहरे पर मंज़िलों के निशान थे। आज मुश्किल आसान होगी। बस आसां[1] की सूईयां रह गयी हैं। वह भी निकल जायेंगी। आज उनकी झुर्रियों में फिर मशालें थरथरा रही थीं। बी आपा की सहेलियां उसको छेड़ रही थीं और वह ख़ून की बची-खुची बूंदों को ताव में ला रही थी! आज कई रोज़ से उसका बुख़ार नहीं उतरा था। थके, हारे दीये की तरह उसका चेहरा एक बार टिम-टिमाता और फिर बुझ जाता। इशारे से उसने मुझे अपने पास बुलाया। अपना आंचल उठा कर नियाज़ की तश्तरी मुझे थमा दी।

"इस पर मौलवी साहब ने दम[2] किया है।" उस की बुख़ार से दहकती हुई गर्म-गर्म सांस मेरे कान में आने लगी।

तश्तरी लेकर मैं सोचने लगी—"मौलवी साहब ने दम किया है। यह पाक मलीदा अब राहत के तंदूर में झोंका जायेगा। वह तंदूर जो छह महीने से हमारे ख़ून के छींटों से गर्म रखा गया है। यह दम किया हुआ मलीदा मुराद पूरी करेगा।" मेरे कानों में शादयाने बजने लगे। मैं भागी-भागी कोठे में बरात देखने जा रही हूं। दुल्हा के मुंह पर लम्बा-सा सेहरा पड़ा हुआ है, जो घोड़े के अयालों को चूम रहा है। चौथी का शहाबी जोड़ा पहने, फूलों से लदी, शरम से निढाल आहिस्ता-आहिस्ता क़दम तोलती बी आपा चली आ रही हैं। चौथी का सुनहरी तारों का जोड़ा झिलमिल कर रहा है। बी अम्मा का चेहरा फूल की तरह खिला हुआ है। बी आपा की हया से बोझिल निगाहें एक बार उठती हैं। शुक्रिये के आंसू अफ़शां की कनियों में कुमकुमे की तरह उलझ जाते हैं।

"यह सब तेरी मोहब्बत का फल है।" बी आपा की ख़ामोशी कह रही है… हमीदा का गला भर आया।

"जाओ न मेरी बन्नो।"—आपा ने उसे जगा दिया। और वह चौंक कर

[1] तकलीफ़ों, मुसीबतों की आख़िरी मंज़िल।
[2] बरकत के लिए पढ़ कर फूंकना।

ओढनी के आचल से आसू पोछती ड्योढ़ी की तरफ बढ़ी।

"यह यह मलीदा।" उसने उछलते हुए दिल को काबू में रखते हुए कहा। उसके पैर काप रहे थे। जैसे वह साप की बाबी मे घुस आयी हो और पहाड खिसका। राहत ने मुह खोल दिया। वह एक कदम पीछे हट गयी। मगर दूर कही बारात की शहनाइयों ने चीख लगायी। जैसे कोई उनका गला घोट रहा हो। कापते हाथो से पाक मलीदे का नवाला बना कर उसने राहत के मुह की तरफ बढा दिया। एक झटके से उसका हाथ पहाड की खोह मे डूबता चला गया ' नीचे बहुत नीचे अधेरे के अथाह गार की गहराइयो मे। और एक बडी-सी चट्टान ने उसकी चीख का गला घोट दिया।

नियाज के मलीदे की रकाबी हाथ से छूट कर लालटेन के ऊपर गिरी और लालटेन ने जमीन के ऊपर गिर कर दो-चार सिसकिया भरी और गुल हो गयी। बाहर आगन मे मोहल्ले की बहू-बेटिया "मुश्किल कुशा" की शान मे गीत गा रही थी।

सुबह की गाडी से राहत मेहमान-नवाजी का शुक्रिया अदा करता हुआ रवाना हो गया। उसकी शादी की तारीख तै हो चुकी थी और उसे जल्दी थी। उसके बाद उस घर मे अडे न तले गये। पराठे न पके और स्वेटर न बुने गये। दिक जो एक अरसे से बी आपा की ताक मे भागी-भागी पीछे आ रही थी एक ही छलाग मे उसे दबोच बैठी और उसने सिर झुका कर अपना नामुराद अस्तित्व उसकी गोद मे सौप दिया।

और फिर उसी सेहदरी मे चौकी पर साफ-सुथरी जाजिम बिछायी गयी। मोहल्ले की बहू-बेटिया जुडी। कफन का सफेद-सफेद लट्ठा मौत के आचल की तरह बी अम्मा के सामने फैल गया। बरदाश्त के बोझ से उनका चेहरा काप रहा था। बायी भौ फडक रही थी। गालो की सुनसान वादिया भाय-भाय कर रही थी। उनके चेहरे पर भयानक शाति और मौत भरा इत्मीनान था।

कफन के लट्ठे की कान निकाल कर उन्होने चौहरा तह किया और उनके दिल मे अनगिनत कैचिया चल गयी। आज उनके चेहरे पर भयानक शाति और मौत भरा इत्मीनान था जैसे उन्हे पक्का यकीन हो कि और जोडो की तरह चौथी का यह जोड सैंयता न जायेगा!

एकदम सेहदरी में बैठी लड़कियां बालिया मैनाओं की तरह कुहकने लगीं। हमीदा गुजरे हुए दिनों को दूर झटक कर उनके साथ जा मिली। लाल तूल पर सफेद गजी का निशान। उसकी सुर्खी में न जाने कितनी मासूम दुल्हनों का अरमान रचा है और सफेदी में कितनी नामुराद कुआरियों के कफन की सफेदी डूब कर उभरी है। और फिर एकदम सब खामोश हो गये। बी अम्मा ने आखिरी टांका भर कर तोड लिया। दो मोटे-मोटे आसू उनके रुई जैसे नर्म गालों पर धीरे-धीरे रेंगने लगे। उनके चेहरे की शिकनों में से रोशनी की किरनें फूट निकलीं और वह मुस्कुरा दी जैसे आज उन्हें इत्मीनान हो गया कि कुब्रा का जोडा बन कर तैयार हो गया और कोई दम मे शहनाइया बज उठेंगी।

अमर बेल

बड़ी मुमानी का कफन भी मैला नहीं हुआ था कि सारे खानदान को शुजाअत मामू की दूसरी शादी की फिक्र डसने लगी। उठते-बैठते दुल्हन तलाश की जाने लगी। जब कभी खाने-पीने से निबट कर बीबियां बेटों की बरी या बेटियों का जहेज टांकने बैठतीं तो मामू के लिए दुल्हन तजवीज़ की जाने लगती।

"अरी अपनी भतीजी फातिमा कैसी रहेगी?"

"ऐ है बी, घास तो नहीं खा गयी हो। भतीजी फातिमा की सास ने सुन लिया तो नाक-चोटी काट कर हथेली पर रख देगी। जवान बेटे की मैय्यत उठते ही वह बहू के चारों ओर कुंडल डाल कर बैठ गयी है। वह दिन और आज का दिन देहलीज़ से कदम न उतारने दिया। निगोड़ी के मैके में कोई मरा-जीता होता तो शायद कभी आना-जाना हो जाता।"

"और भई, शुजअत भैय्या को कुआरी नहीं मिलेगी जो जूठा पत्तल चाटेंगे। लोग बेटिया थाल में सजा कर देने को तैयार हैं। चालीस के तो लगते भी नहीं" असगरी बेगम ने कहा।

"ऊई। खुदा खैर करे। मुआ पूरे दस साल निगल रही हो। अल्लाह रखे खाली[1] के महीने में पूरे पचास के भरके···।"

"अल्लाह!"—बेचारी इमत्याज़ी फूफू तो बोल के पछताईं। शुजाअत मामू की पांच बहनें एक तरफ और वह निगोड़ी एक तरफ और माशा-अल्लाह से पांचों बहनों की ज़बानें[2] बस कंधों पर पड़ी रहती थीं। यह गज-गज भर की। कोई मचेटा हो जाता तो बस पांचों एकदम मोर्चा बांध कर डट जातीं। फिर मजाल है कि कोई मुगलानी, पठानी तक मैदान में टिक जाये। बेचारी शेखानियों,

---

[1]चांद का ग्यारहवां महीना। अरब में इस महीने लोग घर पर ही रहते हैं। किसी लड़ाई या युद्ध में नहीं जाते। नूरजहां ने इस महीने का नाम खाली महीना रख दिया। भारत में इस खाली महीने का प्रभाव यह हुआ कि लोगों ने इस महीने में शादी-ब्याह भी करना बंद कर दिया और इस को मनहूस महीना समझने लगे।

[2]मुंह-फट बिना शील-संकोच के बोलने वालियां।

मैयदानियों की वात ही न पूछिये—बडी-बडी दिल, गुर्दा वालियों के छक्के छूट जाते।

मगर इमत्याज़ी फूफू भी उन पांचो पाडवों पर सौ कौरवो से भारी पडती। उनका सब से खतरनाक हथियार उनकी चिनचिनाती हुई बर्मे की नोक जैसी आवाज़ थी। बोलना जो शुरू करती तो ऐसा लगता जैसे मशीन-गन की गोलिया एक कान से घुसती है और दूसरे कान से जन्न निकल जाती है। जैसे ही उनकी किसी से तकरार शुरू होती सारे मोहल्ले मे तुरत खबर दौड जाती कि भाई इमत्याज़ी बुआ की किसी से चल पडी है और बीबिया कोठे लाघती, छज्जे फलागती दगल की तरफ हल्ला बोल देती।

इमत्याज़ी फूफू की पांचो बहनो ने वह टाग ली कि गरीब नक्कू बन गयी। उनकी मझली बेटी गोरी खानम अब तक कुआरी धरी थी। छत्तीसवा साल छाती पर सो रहा था मगर कही नसीबा खुलने के लच्छन नज़र नही आ रहे थे। कुआरे मिलते नही, ब्याहे रंडुए नही होते। पहले जमाने मे तो हर मर्द तीन-चार को ठिकाने लगा देता था मगर जब से यह अस्पताल और डाक्टर पैदा हुए है बीवियो ने मरने की कसम खा ली है। जिसे देखो परलोक के बोरिए समेटने को तुली होती है। बडी मुमानी के बीमारी के दिनो मे ही इमत्याज़ी फूफू ने हिसाब लगाया था लेकिन उनके फरिश्तो को भी पता न था कि दोहाजू के लिए भी कुर मे वास डालने पड़ेंगे।

शुजाअत मामू की उम्र का सवाल बडी नाजुक सूरत पकड गया। कमर आरा और नूर खाला के लिए तो अभी लड़का ही थे इसलिए वह तो मारे हौल के बरसों की गिनती मे बार-बार घपला डाल देती क्योकि उनको उम्र का हिसाब लग जाने से खुद खालाओं की उम्र पर गाह पडती थी। इसलिए पाचो बहनें बिल्कुल अलग-अलग दिशाओ से हमला करने लगी। उन्होने फौरन इमत्याज़ी फूफू के नवाम दामाद का जिक्र छेड़ दिया जिसका हवाला ही फूफी की दुखती रग था क्योकि वह उनकी नवासी (नाती) पर सौत ले आया था।

मगर हमारी फूफी भी खरी मुगलानी थी, जिनके वालिद शाही फौज मे बर्क अंदाज थे, वह कहां मार खाने वालियों मे से थी। झट पैंतरा बदल कर वार खाली कर दिया और शहज़ादी बेगम की पोती पर टूट पड़ी जो खुले बदों खानदान

की नाक कटवा रही है क्योंकि वह रोज डोली में बैठ कर धनकोट के स्कूल में पढने जाया करती थी। उस ज़माने में स्कूल जाना उतना ही भयानक समझा जाता था जितना आजकल कोई फिल्मों में नाचने-गाने लगे।

शुजाअत मामू बडे माकूल आदमी थे। निहायत मुथरा नक्शा। छरेहरा बदन। मझोला कद। इमत्याजी फूफू सारे में कहती फिरती थी कि खिज़ाब लगाते है मगर आज तक किमी ने कोई सफेद बाल उनके सिर में नही देखा। इसलिए यह अदाज़ा लगाना मुश्किल था कि खिज़ाब लगाना कब शुरू किया। यो देखने में बिल्कुल जवान लगते थे। वाकई चालीस के नही जचते थे। जब उन पर पैगामों की बहुत ज़ोर की बारिश हुई तो बौखला कर उन्होंने मामला बहनों के सुपुर्द कर दिया। इतना कह दिया कि लडकी इतनी छिछोरी न हो कि उनकी बेटी लगे और ऐसी खूसट भी न हो कि उनकी अम्मा लगे।

बड़ी ढूढ मची और आखिर पासा रुख्साना बेगम के नाम पड़ा।

"अई! क्या डराता हुआ नाम है?" इमत्याज़ी फूफू को कुछ न सूझा तो नाम में ही कीडे निकालने लगी मगर बहनों ने ऐसा मोर्चा कसा कि उनकी किसी ने न सुनी।

"लौडिया सोलह से कम या एक दिन ज्यादा हो तो सौ जूते सुबह, सौ जूते शाम, ऊपर से हुक्के का पानी ..."

मगर उनकी किसी ने न सुनी। वह अपनी गोरी बेगम की नाव पार लगाने के लिए ख्वाह-न-ख्वाही (जबर्दस्ती) द्वंद्व मचाती थी।

रुख्साना बेगम थी कि बस कोई देखे तो देखता ही रह जाये। जैसे पहली का नाज़ुक शरमाया हुआ चाद किसी ने उतार लिया हो। शकल देखे जाओ पर जी न भरे। तोलो तो पाचवें के बाद छठा फूल न चढे। रगत ऐसी कि जैसे दमकता कुदन। जिस्म में हड्डी का नाम नही जैसे सख्त मैदे की लोई पर गाय का मक्खन चुपड दिया गया हो। नारित्व इस गज़ब की कि जैसे दर्जन भर औरतो का सत्त निचोड कर भर दिया गया हो। गर्म-गर्म लपटें-सी निकलती थी। शायद फूफू के कथनानुसार सोलह बरस की होगी मगर उन्नीस-बीस की उठान थी। बहनों ने मामू को पच्चीसवा साल बताया था। उन्हें थोड़ा सकोच तो हुआ लेकिन टाल गये। उम्र कम होना तो कोई बड़ा जुर्म नही।

सब से बुरी बात तो यह थी कि वह एक बहुत गरीब घर की बोझ थी। दोनों तरफ का खर्चा मामू के सिर रहा। जब रुखसाना मुमानी ब्याह कर आयी तो उन्हें देख कर मामू के पसीने छूट गये!

"बाजी यह तो बिल्कुल बच्ची है।" उन्होंने बौखला कर कहा।

"अई खुदा खैर करे। तेल देखो तेल की धार देखो। मर्द माठा और पाठा। बीवी बीसी और खीसी। दो-चार बच्चे हुए नहीं कि सारी कलई उतर जायेगी। गू-मूत में न सोलह सिंगार रहेंगे न यह रंग-रोगन। न यह छल्ला-सी कमर रहेगी न बाजुओं का लोच। बराबर की न लगने लगे तो जो चोर का हाल सो मेरा। मैं तो कहूं दस साल में बड़ी भाभीजान की तरह से हो जायेंगी।"

"फिर हम अपने वीरन के लिए साढ़े-बारह बरस की लायेंगे।" नूर खाला चहकीं।

"हुश्त!" मामू शरमा गये!

"दूसरी बीवी नहीं जीती इसलिए तीसरी।" शबीह बेगम बोलीं।

"क्या बक रही हो?"

"हां मियां। बड़े-बूढ़ों से सुनते आये हैं, दूसरी तो तीसरी का सदका (बलि) होती है। इसलिए पुराने जमाने में लोग दूसरी शादी गुड़िया से कर दिया करते थे ताकि फिर जो दुल्हन आये वह तीसरी हो..."

बहनों ने समझाया और मामू समझ गये। फिर जल्दी रुखसाना बेगम ने भी समझा दिया। दो-तीन साल में अच्छे खाने, कपड़े और आशिक जार मियां ने वह जादू फेरा कि पहली का चांद चौदहवीं का लगने लगा। वह चांदनी छिटकी कि देखने वालों की आंखें झपक गयीं। पोर-पोर से किरनें फूट निकलीं। शुजाअत मामू पर ऐसा नशा सवार हुआ कि बिल्कुल घुल हो गये। शुक्र है कि जल्दी पेंशन होने वाली थी वरना आये दिन दफ्तर में गोते जरूर रंग लाते।

बहनों के ले-दे के एक भैय्या थे। बड़ी मुमानी दुल्हनापे में ही जी से उतर गयी थीं। उनकी कमान कभी चढ़ी ही नहीं। जब तक जिंदा रहीं सूरत को तरसती रहीं। आल-औलाद खुदा ने दी ही नहीं कि उधर जी बहल जाता। मियां बहनों के चहीते भाई सूरत न देखें तो खाना न पचे। दफ्तर से सीधे किसी बहन के यहां पहुंचते, रात का खाना वहीं से खा कर आते। फिर भी रोजाना दस्तरख्वान

खतम। एक-न-एक दिन तो भाई का जी भरेगा…" दिलों को तसल्ली दी गयी।

अल्लाह-अल्लाह करके रुख़साना बेगम का पैर भारी[1] हुआ तो अल्लाह तोबा न उल्टियां न तबियत मादी। चेहरे पर और चार चांद खिल उठे। क्या मजाल जो ज़रा भी अक्कस आ जाये। वही शोख़िया वही माशूक़ाना अदाज़ (हाव-भाव) जो नयी दुल्हनों के हुआ करते हैं…और मामू का तो बस नहीं चलता। उन्हें उठा कर पलकों में छिपा लें। दिल निकाल कर कदमों में डाल देते हैं। दिल से उतरने के बजाय वह तो दिमाग पर छा गयी!

पूरे दिनों पर भी रुख़साना मुमानी के हुस्न को गहन न लगा। जिस्म फैल गया लेकिन चाद दमकता रहा। न पैरों पर सूजन न आखों के चारों तरफ हल्के। न चलने-फिरने में कोई तकल्लुफ। जापे के बाद चट से खड़ी हो गयी। क्या मजाल जो कमर बाल बराबर भी मोटी हुई हो। वही कुआरियों जैसा लचकदार जिस्म। भली बीवी के जापे में बाल झड़ जाते हैं। उनके वह अदबदा कर बढ़े कि सिर धोना मुश्किल हो गया।

हा बीवी के बदले ज़रा मामू झटक गये। जैसे बच्चा उन्होंने ही पैदा किया हो। थोड़ी-सी तोंद ढलक आयी। गालों में लंबी-लंबी झुर्रियां गहरी हो गयीं। बाल पहले से ज्यादा सफेद हो गये। अगर दाढ़ी न बनी होती तो चेहरे पर चीटियों के सफेद-सफेद अंडे फूट आते।

जब दो साल बाद बेटी हुई तो मामू की तोंद और आगे को खिसक आयी। आखों के नीचे खाल लटकने लगी। निचली दाढ़ का दर्द काबू से बाहर हो गया तो मजबूर होकर निकलवानी पड़ी। एक ईंट खिसकी तो सारी इमारत की चूलें ढीली पड़ गयीं।

उन दिनों मुमानी की अक्ल दाढ़ निकल रही थी।

गुजाअत मामू की बत्तीसी असली दांतों से ज्यादा हसीन थी। रही उम्र की बात, दोष नज़ले के सिर गया।

इम्त्याज़ी फूफू के हिसाब से रुख़साना मुमानी छब्बीस बरस की थीं गो अब भी वह कभी बच्चों के साथ धमा-चौकड़ी मचाने के मूड में आ जातीं तो सोलह बरस

[1] गर्भवती होने वालियों को प्रात घरों में पैर भारी होना कहते हैं। अंग्रेजी में family way का जो अर्थ है वही पैर भारी का भी है।

की लगने लगती। कई साल से उम्र का बढ़ना रुक गया था। ऐसा मालूम होता कि उम्र अड़ियल टट्टू की तरह एक जगह जम गयी है और आगे खिसकने का नाम ही नहीं लेती। ननदों के दिल पर आरे चलते। वैसे भी जब अपने हाथ-पैर थकने लगें तो नौजवानों की शोखियां घोड़े की दुलत्ती की तरह कलेजे में लगती हैं। और मुमानी साफ-साफ अमानत में खयानत कर रही थीं। शराफत और भलमसाहत का तो यह तकाजा था कि वह शौहर को अपना मजाजीखुदा (इस लोक का ईश्वर) समझतीं। अच्छे-बुरे में उनका साथ देतीं यह नहीं कि वह थके-मांदे बैठे हैं और बेगम बेतहाशा मुर्गियों के पीछे दौड़ रही हैं।

"ऐ भाभी तुम पर खुदा की सवार (तुम्हें भगवान सद्बुद्धि दे), न सिर की खबर है न पैर की, हुडदुगी बनी मुर्गियों को खदेड़ रही हो"

"ऐ तो क्या करूं खाला, मुई बिल्ली"

"अई लो! और सुनो! ऐ बीबी मैं तुम्हारी खाला कब से हो गयी। शुज्जन भाई मुझ से चार साल बड़े हैं। माशा-अल्लाह। बड़ा भाई बाप बराबर, तुम भी मेरी बड़ी हो। खबरदार जो तुमने फिर मुझे खाला कहा"

"जी बहुत अच्छा··" शादी के पहले रुख्साना मुमानी की अम्मां उनकी दुपट्टा-बदल बहन कहलाती थीं।

वह रूप और नयी उम्र जिसने एक दिन शुजाअत मामू को गुलाम बना लिया था अब उनकी आंखों में खटकने लगी। लंगड़ा बच्चा जब दूसरे बच्चों के साथ नहीं दौड़ पाता तो चिढ़ कर मचल जाता है कि तुम बेईमानी कर रहे हो। मुमानी उनके साथ दगा कर रही थीं। कभी-कभी तो उन्हें लड़की बालियों की तरह हंसता या दौड़ता देख कर उनके दिल में टीसें उठने लगतीं। वह जल कर कोयला हो जाते।

"लौंडों को लुभाने के लिए क्या-क्या नखरे कर चलती हो·" वह जहर उगलने लगे—"हां अब कोई जवान पट्ठा ढूंढ लो।"

मुमानी पहले तो हंस कर टाल देतीं फिर झेंप कर गुलनार हो जातीं। इस पर मामू और भी चिढ़ जाते और भारी-भारी इलजाम लगाते।

"पना में आगे लटा रही थीं डिमाके से तुम्हारा संबंध है··"

तब मुमानी सन्नाटे में रह जाती। मोटे-मोटे आसू छलक उठते। अलगनी से दुपट्टा घसीट वह अपना जिस्म ढक कर सिर झुकाये कमरे मे चली जाती। मामू का कलेजा कट जाता। उनके पैरों तले से जमीन खिसक जाती। वह उनके तलवे चूमते। उनके कदमो मे सिर फोड़ने, उनके आगे नाक रगड़ते रोने लगते

"मैं कमीना हू हरामजादा हूं "जूती लेकर जितना चाहो मारो"' मेरी जान, मेरी रूखी, मेरी मलका मेरी शहजादी "

और रुम्माना मुमानी उनके गले में अपनी रुपहली बाहे डाल कर भों-भों रोती!

"तुम्हारा आशिके जार (विह्वल प्रेमी) हू मेरी जान। ईर्ष्या और द्वेष से जल कर खाक हुआ जाता हू। तुम जब नन्हे को गोद मे लेती हो तो मेरा खून खौलने लगता है" जी चाहता है साले का गला घोट दू मुझे माफ कर दो मेरी जान "

वह झट माफ कर देती। इतना माफ करती कि शुजाअत मामू की आखो के हल्के और ऊदे हो जाते और वह बडी देर तक थके हुए खच्चर की तरह हाफा करते।

फिर ऐसे भी दिन आ गये जब वह माफी न माग सके। कई-कई दिन वह रूठे पडे रहते। बहनो की उम्मीदे बध जाती।

"भैय्याजान भाभी को कुढा-कुढा कर मार रहे है। अब कोई दिन जाता है कि यह दांना किल-किल रंग लायेगी।"

मुमानी छिप-छिपकर घटों रोती। आसू भरी आखो मे लाल डोरे और भी सितम ढाने लगते। मुना हुआ पीला चेहरा जैसे सोने मे किसी बेईमान सुनार ने चादी की मिलावट बढा दी हो। फीके-फीके होंठ। माथे पर उलझी-सी एक बिखरी हुई लट। देखने वाले कलेजा थाम कर रह जाते। वह मातम वाला हुस्न देखकर मामू के कधे और झुक जाते। आखो की वीरानी और भी बढ जाती।

एक बेल होती है—अमर बेल। हरे-हरे सपोलिये जैसे डठल। जड नहीं होती। ये हरे डंठल किसी भी हरे-भरे पेड पर डाल दिये जाते है तो बेल उसका

रंग घुल-घुल कर फैलती है जितनी यह बेल फैलती है उतना ही यह पेड़ सूखता जाता है।

ज्यूं-ज्यूं रुख़साना बेगम के चमन खिलते जाते थे मामू सूखते जाते थे। बच्चे सिर जोड़ कर गुपुर-गुपुर करते। भाई की दिन-ब-दिन खिलती जवानी को देख कर उनका कलेजा मुंह को आता था। बिल्कुल भूरे हो गये थे। गठिया की शिकायत तो थी ही नजला अलग जान-लेवा हो गया। डाक्टरों ने कहा खिज़ाब बिल्कुल भी मुआफ़िक़ (अनुकूल) नहीं पड़ता। मजबूर होकर मेंहदी लगाने लगे।

बेचारी रुख़साना एक-एक से बाल सफ़ेद करने के नुस्ख़े पूछती फिरती थीं। किसी ने कहा अगर गुलखैरू तेल डालो तो बाल जल्दी सफ़ेद हो जायेंगे। दुल्हिया ने इतर सिर में थोप लिया। मामू की नाक में जो गुलमालतुनाकर की मदहोश करने वाली ख़ुशबू की लपटें पहुंचीं तो वह कड़े ताने उन्होंने मुमानी पर लगाये कि अगर बच्चों का ख्याल न होता तो मुमानी कुएँ में कूद जातीं। उनके बाल सफ़ेद होने के बजाय और मुलायम और चमकदार होकर उगने लगे।

मुमानी की जवानी को तोड़ने के लिए मामू ने यूनानी हकीमों की तमाम माजूनें, पौष्टिक कुश्ते और तेल इस्तेमाल कर डाले। थोड़े दिन के लिए उनकी भागती जवानी थम गयी। वार उलट आया। मुमानी ने कुछ दुनियादारी के दाव-पेच तो सीखे न थे। अपने-आप उग आने वाला पौधा थीं। न कभी किसी ने बारीकियां समझायीं। अट्ठाईस बरस की थीं लेकिन अट्ठारह बरस जैसी ना-तजुर्बेकारी और अल्हड़पन था।

मोटर बहुत चलाओ तो इंजन जल जाता है। दवाओं का उलट-फेर जो शुरू हुआ तो शुजाअत मामू ढह गये। एकदम बुढ़ापा टूट पड़ा। अगर वह जिस्म और दिमाग को इतना न निकालते तो बासठ बरस में यों न लुढ़िया डूब जाती। अब वह अपनी उम्र से ज्यादा लगने लगे।

बहनें फूट-फूटकर रोतीं। हकीम, डाक्टर जवाब दे चुके थे। लोगों ने जवान बनने के तो लाखों नुस्खे बनाये लेकिन वक्त से पहले बूढ़ा होने की कोई दवा नहीं जो मुमानी को खिला दी जाती। ज़रूर उन पर कोई सदाबहार किस्म का जिन या पीर मर्द सवार था कि किसी तरह उनकी जवानी ढलने का नाम ही

न लेती थी। तावीज़-गंडे हार गये। टोटके चित हो गये।

अमर बेल फैलती रही!

बरगद का पेट सूखता रहा!

तस्वीर हो तो कोई फाड़ दे। मूर्ति हो तो पटक कर चकनाचूर कर दे। अल्लाह के हाथों का बनाया हुआ मिट्टी का पुतला, हसीन भी हुआ और जिंदा भी। उसकी हर सांस में जवानी की गर्मी महक रही हो तो फिर कुछ बस नहीं चलता। उसके चढ़ते हुए सूरज को उतारने की एक ही तरकीब हो सकती है कि खाने की मार दी जाये। घी, गोश्त, अंडे, दूध बिल्कुल बंद। जब से शुजाअत मामू का हाज़मा जवाब दे गया था मुमानी सिर्फ बच्चों के लिए गोश्त वगैरह मंगाती थीं। कभी-कभार एक निवाला खुद चख लेती थीं। अब उससे भी परहेज़ कर लिया। सब को उम्मीद बंध गयी कि अब इंशा-अल्लाह (भगवान ने चाहा तो) जरूर बुढ़ापा तशरीफ ले आयेगा।

"ऐ भाभी यह क्या उछाल-छक्का लौंडियों की तरह मुई सलवार कमीज़ पहनती हो। और भी नन्ही हो जाती हो।" ननदें कहतीं, "भारी-भरकम कपड़े पहनो कि अपनी उम्र की लगो · "

मुमानी ने टंका हुआ दुपट्टा और गरारा पहन लिया।

"किसी यार की बगल में जाने की तैयारी है?" मामू ने कचोके दिये और मामी कपड़ों से भी ख़ौफ खाने लगी।

"ऐ बी यह क्या एकाध वक्त की नमाज़ पढ़ती हो। पांचों वक्त की नमाज़ पढ़ने की आदत डालो।"

मुमानी पांचों वक्त की नमाज़ पढ़ने लगीं। जब से मामू की नींद बूटी और नखरीली हुई तहज्जुद (रात की नमाज़) के वक्त से जागना पड़ता था।

"मेरे मरने के नफल (शुकराने की नमाज़) पढ़ रही हो।" मामू बिसूरते।

दुबली तो थीं ही रोज की किलकिल से और भी धान-पान हो गयीं। घी गोश्त से परहेज़ हुआ तो रंग और भी निखर आया। चमड़ी ऐसी साफ चमकीली हो गयी कि जैसे कोई दम आइने की तरह आर-पार नज़र आने लगेगा। चेहरे पर एक अजब नूर-सा उतर आया। पहले देखने वालों की राल टपकती थी। अब उनके क़दमों में सिर पटकने की ख्वाहिश जागने लगी। जब सुबह-सवेरे फजर

(सुबह की नमाज) के बाद कुरान की तिलावत (पाठ) करती तो उनके चेहरे पर हज़रत मरियम का तक़द्दुस (पाक कर देना वाला रूप) और फातिमा और जोहरा की पवित्रता छा जाती। वह और भी कम उम्र की और कुआरी लगने लगती।

मामू की कब्र और पास खिसक आती और वह उन्हें मुह भर-भर कर कोसते और गालियां देते कि भाजो, भतीजों के बाद वह जिन्नों और फरिश्तों को वरगला रही हैं। चिल्ले[1] खींच-खींच कर (व्रत उपवास एकात साधना करके) जिन कानू में कर लिये हैं। उनसे जादू की बूटियां मगा कर खाती हैं।

खिजाब के बाद अब मेहदी भी मामू को आखें दिखाने लगी थी। मेहदी लगाते तो छींकें आकर नजला हो जाता। वैसे भी उन्हें मेहदी से घिन आने लगी थी। रुखसाना मुमानी उनके बालों में मेहदी लगाती तो हर तरह से सभालने के बावजूद उनके हाथों मे उसका रग दीपक की लौ-सा जगमगाने लगता। उनके हाथ देख कर शुजाअत मामू को ऐसा मालूम होता जैसे मेहदी मे नही मुमानी ने उनके दिल के खून मे हाथ डुबो दिये हैं। वही हाथ जिन्हें वह कभी चमेली की मुह-बद कलियां कह कर चूमा करते थे, आखो से लगाते थे अब शिकारी बाज के खूखार पजों की तरह उनकी आखो मे घुसे जाते थे।

जितना-जितना वह उनकी मुडिया[2] (जडी-बूटियां) जमीन पर घिसतीं मुमानी चदन की तरह महकती।

बहनें घर से तरमाल तैयार कर भाई को खिलाने लाती कि कहीं भावज जहर न खिला रही हो। अपने हाथ से सामने खिलाती मगर उन खानों से मामू का हाल और पतला हो जाता। बवासीर की पुरानी शिकायत ने वह जोर पकडा कि रहा-सहा खून भी निचोड लिया। अभी उस नामुराद कुश्ते[3] का असर बाकी था जो

---

[1]चालीस दिन की एकात साधना जिसमें अपनी कोई मनोकामना की पूर्ति के लिए नीयत बाधकर तत्र-मत्र किया जाता है।

[2]एक लट का डठल या जड़ जिसको घिसकर लगाया जाता है। इसका अर्क भी बनता है जो खून की सफाई के लिए दिया जाता है।

[3]पुरुषत्व के लिए खाया जाने वाला पौष्टिक।

उन्होंने मशहूर हकीम साहब का नुस्खा लेकर कई सौ की लागत से तैयार कराया था। नुस्खा बेहद शाही क़िस्म का था जिसे मुर्दा खा लेता तो तनतना कर खड़ा हो जाता मगर मामू गोदनी की तरह फोड़ों से लद गये।

दुखिया मुमानी घी को सैकड़ों बार पानी से धोती उसमें गंधक और कई दवाएं कूट-छानकर मिलाती। ढेरियों मरहम थोपा जाता। पतीलियों नीम के पत्तों का पानी औटाती और सुबह और शाम पीप खून धोती। उनमें से कुछ फोड़े मुस्तक़िल (हमेशा के लिए) नासूर बन गये थे और मामू को निगल रहे थे।

फिर एक दिन तो अंधेर हो गया। मामू बहुत कमज़ोर हो गये थे। बहनें बैठ भावज का दुखड़ा रो रही थी कि निज्जी बुढ़िया खुदा-जाने कहां से आन मरी। पहले तो गुज़ाअत मामू को नाना-जान समझ कर उनसे फ़्लर्ट करने लगी। किसी ज़माने में नाना-जान उस पर बहुत मेहरबान रह चुके थे। बुढ़िया नामुराद की मत मारी गयी थी। नाना-जान को मरे हुए बीस बरस हो चुके थ और वह अपनी चिपड़ भरी आखों में पुराने ख्वाब जगाने पर तुली हुई थी। बड़ी ले-दे के बाद मामू का सही रिश्ता समझी तो मरहूमा मुमानी का मातम ले बैठी।

"हैं है क्या बुढ़ापे में दुआ दे गयी?" अचानक उसकी नज़र मुमानी पर जा पड़ी। मुमानी आगन में कबूतरों को दाना डाल रही थीं। अजब प्यारे अदाज़ स वह गर्दन न्यूहढ़ाए बैठी थी जैसे तस्वीर खिचवा रही हो। कबूतर उनकी शीशे-सी दमकती हुई हथेली को गुदगुदा रहे थे और वह विवश होकर हस रही थी।

"हाय मैं मर गयी।" बुढ़िया ने अपना चपाती जैसा मुह कर रस्साना मुमानी की तरफ हवा में बलाए लेकर कनपटियों पर दसों उगलिया चड-चड चटखाई।

"अल्लाह पाक नज़र-ए-बद (बुरी नज़र) से बचाये चिड़िया तो चाद का टुकड़ा है मैं जानू मीठा[1] बरस लगा है। ऐ मियां—' वह कुछ सलाह की बात करने के लिए मामू के क़रीब खिसकी—"सौदागरों का मंझला बेटा विलायत पास करके आया है... अल्लाह कसम बस चाद और सूरज की जोड़ी रहेगी!"

किसी ज़माने में बुढ़िया मार्के की कुटनी थी। अब उसका बाज़ार बद हो

[1]कैशोर अवस्था को कहते हैं। औरतों की मोहावरे में लड़कियों के अट्ठारहवें वर्ष के लिये कहा जाता है।

चुरा था। चोटा[1] सफेद हुआ। हाथ-पैर से मजबूर हुई तो टुकड़े माग कर वक्त काटने लगी थी।

थोड़ी देर तक तो किसी की समझ ही में न आया कि बुढ़िया मुर्दार क्या बक रही है। सौदागरों का मझला बेटा जो विलायत पास था सब की निगाहों में था। किसी को सुबहा भी न हुआ कि बदमाश बुढ़िया रहमाना मुमानी का रिश्ता लगाने की ताक में है।

"इमाम हुसैन की कसम मियां मैं तो कंगनों की जोड़ी लूंगी। वाह छेड़ू?"

बात जो खुली और पानी मरा तो भिड़ों का छत्ता छिड़ गया। चारों तरफ से तोपें दगने लगीं।

"है है मुए जनम-पिटी को क्या खबर?" बुढ़िया गलीपर पहुंचती, रपटी बाहर की तरफ। चलते-चलते मामू की पिटी हुई सूरत की तरफ उसने मसर्रत से भरी नजर डाली। मुंह पर तो साफ बुआरापन बरस रहा है।"

उस दिन शुजाअत मामू ने कुरान उठाकर सबके सामने कह दिया कि यह दोनों बच्चे उनके नहीं, अड़ोस-पड़ोस की मेहरबानियों का फल है जिनसे रहमाना बेगम ताक-झांक किया करती है।

उस रात वह रोते रहे, कराहते रहे, अंगारों पर लोटते रहे। उस रात उन्हें बड़ी मुमानी बहुत याद आयीं। उनके बाल तो वक्त के पहले पक गये थे। उनकी जवानी उनका दुल्हनापा आंसुओं में बह गया। नेकी और पारसा की प्रतिमा, बस ही पुतली—उनके हिस्से का बुढ़ापा भी उन्होंने अपने-आप में समेट लिया। और सगीर बीवियों की तरह जन्नत सिधारीं। आज वह होतीं तो यह दर्द, यह जलन, यह सफेद बालों वाले मेंहदी लगे बाल, यह रिश्ते नासूर, यह तनहाई यह जाती। फिर बुढ़ापा यों न डसता। दोनों साथ बूढ़े होते, एक-दूसरे के दुख को समझते, सहारा देते।

अमर बेल दिन दूनी रात चौगुनी फैलती गयी। बड़ के पेड़ का तना खोखला हो गया। टहनियां सूख गयीं। पत्ते झड़ गये बेल पास के हरे-भरे पेड़ पर रेंग गयी।

---

[1] चूड़ा चोटी।

कैसा आत्मदाह का वातावरण था। शुजाअत मामू की मैय्यत आंगन में बनी, संवरी रखी हुई थी। बहनें पड़ी-पड़ी पछाड़ खा रही थी। मामू ने अपनी सारी जायदाद बहनों के नाम कर दी थी।

रुख़साना मुमानी सब से अलग-थलग दरवाज़े से लगी बैठी थी। कहने वाले कहते थे कि इतनी हसीन और मातम में डूबी बेवा ज़िंदगी में कभी नहीं देखी।

सफ़ेद कपड़ो में वह एक अजीब मोहक सपने-सी लग रही थी। रो-रो कर आंखें नशीली और बोझिल हो रही थी। पीला चेहरा पुखराज के नगीने की तरह दमक रहा था। जो लोग मातम-पुरसी में आये थे सब कुछ भूल कर बस उन्हें तकते रह जाते। उन्हें मरहूम की खुशनसीबी पर ईर्ष्या हो रही थी।

मुमानी पर बेपनाह बेबसी और मुर्दनी छायी हुई थी। ख़ौफ़ और परेशानी से उनका चेहरा और भी भोला लग रहा था।

दोनों बच्चे उनके पहलू से लगे बैठे थे। वह उनकी बड़ी बहन लग रही थी।

वह ऐसी गुम-सुम बैठी थी जैसे सृष्टि के सबसे निपुण कलाकार ने अपनी बेमिसाल क़लम से कोई चित्र बना कर सजा दिया हो।

दो हाथ

रामौतार लाम पर से वापस आ रहा था। बूढ़ी मेहतरानी अब्बा मिया से चिट्ठी पढ़वाने आयी थी। रामौतार को छुट्टी मिल गयी। जग खतम हो गयी थी ना। इसलिए रामौतार तीन साल बाद वापस आ रहा था। बूढ़ी मेहतरानी की चपड़-भरी आखो मे आसू टिमटिमा रहे थे। मारे कृतज्ञता के वह दौड़-दौड़ कर सबके पाव छू रही थी जैसे इन पैरो के मालिको ने ही उसका इकलौता पूत लाम से जिदा सलामत मगवा लिया हो।

साफ कहने वाले कहते थे गोरी थी ही छिनाल। रामौतार के जाते ही आफत आ गयी। कमबख्त हर वक्त "ही-ही", हर वक्त इठलाना, कमर पर मैले की टोकरी लेकर कासे के कड़े छनकाती जिधर से निकल जाती लोग बदहवास हो जाते। धोबी के हाथ मे साबुन की बट्टी फिसल कर हौज़ मे गिर जाती, बावरची की नज़र तवे पर सुलगती हुई रोटी से उचट जाती। भिश्ती का डोल कूए मे डूबता ही चला जाता। चपरासियों तक की तिल्ला लगी पगडियां ढीली होकर गर्दन मे भूलने लगती और जब यह आफत की पुतली घूघट मे से नयनों के बाण फेंकती गुजर जाती तो सारा शागिर्द-पेशा एक बार बेजान लाश की तरह सकते मे रह जाता। फिर एकदम से चौक कर वह एक-दूसरे की दुर्गत पर ताने मारने लगते। धोबिन मारे गुस्से के कलफ की कूडी उलट देती। चपरासिन गोद मे छाती से चिपटे लौंडे को बेबात घमाके जड़ने लगती। बावरची की तीसरी बीवी पर हिस्टीरिया का दौरा पड़ जाता।

नाम की गोरी थी पर कमबख्त स्याह-भुट्ट थी जैसे उल्टे तवे पर किसी फूहड़िया ने पराठे तलकर चमकता हुआ छोड दिया हो। चौडी फुकना-सी नाक, फैले हुए होंठ, दात माजने का उसकी सात पुश्त मे फैशन ही न था। आंखो मे पुल्लियों काजल थोपने के बाद भी दायीं आख का भैगापन ओझल न हो सका। फिर भी टेढी आख से ही जाने कैसे जहर से बुझे तीर फेंकती थी कि निशाने पर बैठ ही जाते थे। कमर भी लचकदार न थी। खासी कठला-सी थी। जूठन खा-खा कर दुबा हो रही थी। चौडे भैस के-से खुर। जिधर से निकल जाती कडवे तेल की सडाध छोड जाती। हा आवाज मे बला की कूक थी। तीज-त्यौहार पर लहक कर कजरिया गाती तो उसकी आवाज सब से ऊची लहराती चढती चली जाती।

बुढिया मेहतरानी यानी उसकी सास बेटे के जाते ही उस पर बेतरह शक करने लगी थी। बैठे-बिठाये बचाव के लिए गालिया दे देती। उस पर नजर रखने के लिए पीछे-पीछे फिरती। मगर बुढिया अब टूट चुकी थी। चालीस बरस मैला ढोने से उसकी कमर हमेशा के लिए एक तरफ लचक कर वही थम गयी थी। हमारी पुरानी मेहतरानी थी। हम लोगो के आवल नाल उसी ने गाड़े थे। जू ही अम्मा को दर्द लगते वह चौखट पर आकर बैठ जाती और कभी-कभी लेडी

डाक्टर तक को बहुत ही मुफीद सलाह दे देती। टोने-टोटके के लिए कुछ मनत-ताबीज़ भी लाकर पट्टी से बांध देती। मेहतरानी की घर में मामी बुजुर्ग की-सी हैसियत थी।

इतनी लाडली मेहतरानी की बहू यकायक लोगों की आंखों में कांटा बन गयी। चपरासिन और बावरचिन की तो बात और थी। हमारी अच्छी-भली भावजों का माथा उसे इठलाते देखकर ठनक जाता। अगर वह उस कमरे में झाड़ू देने जाती जिसमें उनके मियां होते तो वह हड़बड़ा कर दूध-पीते बच्चे के मुंह से छाती छीन कर भागतीं कि कहीं वह डायन उनके शौहरों पर टोना-टोटका न कर रही हो।

रागी क्या थी बस एक मरखना लम्बी-लम्बी सींगों वाला बिजार था जो छूटा फिरता था। लोग अपने कांच के बर्तन, भाड़े दोनों हाथों में समेट कर कलेजे से लगाते और जब हालत ने नाजुक सूरत पकड़ ली तो शरीफ़-पेशे की महिलाओं का एक बाकायदा प्रतिनिधि-मंडल मां के दरबार में हाजिर हुआ। बड़े जोर-शोर से होने वाले खतरों और उनके भयंकर नतीजों पर बहस हुई। पति रक्षा की एक कमेटी बनायी जिसमें सब भावजों ने जोर-शोर से वोट दिये। अम्मा को उस समिति की सम्मानित सदर का पद सौंपा गया। सारी औरतें अपने पद के हिसाब से पीढ़ों और पलंग की अदवाइनों पर निहायत इत्मीनान से बैठीं। पान के टुकड़े बांटे गये और बुढ़िया को बुलाया गया। बच्चों के मुंह में दूध देकर सभा में खामोशी कायम की गयी। मुकद्दमा पेश हुआ। हमारी अम्मा बड़ी रोब की आवाज में बोलीं—

"क्यों री चुड़ैल! तूने बदमाश बहू को छूट दे रखी है कि हमारी छातियों पर कोदों दले। इरादा क्या है तेरा? क्या मुंह काला करायेगी?"

मेहतरानी तो भरी ही बैठी थी। फूट पड़ी। बोली—"क्या करूं बेगम साहिबा? हराम-खोर को चार चोट मार भी दयी मैं तो। रोटी भी खाने को न दयी पर रांड मेरे तो बस की नहीं "

"अरे रोटी की क्या कमी है उसे।" बावरचिन ने ईंटा फेंका। सहारनपुर की खानदानी बावरचिन फिर तीसरी बीबी। क्या तेहा (जोश और गुस्सा) था कि अल्लाह की पनाह। फिर चपरासिन, मालिन, धोबिन ने मुकद्दमे को और संगीन

बना दिया। बेचारी मेहतरानी बैठी सब की लताड़ सुनती और अपनी खाज-भरी पिंडली खुजलाती रही।

"बेगम साहिबा आप जैसी बताओ वैसी करने को मोये ना थोड ई। पर का करू राड का टेटुआ दबाय देऊं ·"

टेटुआ दबने के हसीन ख्याल से जैसे उन सब औरतों के मन में खुशी की लहर दौड गयी और सब को बुढिया से बेहद हमदर्दी पैदा हो गयी ·

अम्मा ने राय दी—"मुई को मैके फिकवा दे।"

"ऐ बेगम साहिबा कही ऐसा हो सके है?"

मेहतरानी ने बताया कि बहू मुफ्त हाथ नही आती है। सारे उम्र की कमाई पूरे दो सौ झोके हैं तब मुस्टंडी हाथ आयी है। इतने पैसों मे तो दो गाये आ जातीं। मजे से भर कलसी दूध देती। पर यह राड तो दो लत्तिया ही देती है। अगर इसे मैके भेज दिया गया तो इसका बाप इसे फौरन दूसरे मेहतर के हाथ बेच देगा। वह सिर्फ बेटे के बिस्तर की शोभा ही तो नही। दो हाथों वाली है पर चार आदमियो का काम निपटाती है। रामौतार के जाने के बाद बुढिया से इतना काम क्या सभलता। यह बुढापा तो बहू के दो हाथो के सहारे बीत रहा है।

महिलायें कोई ना-समझ नहीं थीं। मामला सामाजिक चाल-चलन से हटकर आर्थिक सत्य पर आ गया था। सचमुच बहू का होना बुढिया के लिए जरूरी था। दो सौ रुपये का माल किसका दिल है जो फेंक दे। इन दो सौ के अलावा ब्याह मे जो बनिये से लेकर खर्च किया था, जजमान खिलाये थे। बिरादरी को राजी किया था। यह सारा खर्च कहा से आयेगा। रामौतार को जो तनख्वाह मिलती थी वह सारी उधार मे डूब जाती थी। ऐसी मोटी-ताजी बहू अब तो चार सौ से कम मे न मिलेगी। पूरी कोठी की सफाई के बाद और आस-पास की चार कोठिया निबटाती है। राड काम मे चौकस है वैसे।

फिर भी अम्मा ने अल्टीमेटम दे दिया—"अगर उस लुच्ची का जल्द-से-जल्द कोई इन्तजाम न किया गया तो कोठी के हाते में न रहने दिया जायेगा···"

बुढ़िया ने बहुत शोर-ओ-गुल मचाया और जा कर बहू को मुह भर-भर कर गालिया दीं। झोंटे पकड़ कर मारा-पीटा भी। बहू उसकी खरीदी हुई थी। वह

पिटती रही, बडबडाती रही और दूसरे दिन बदले के रूप में उसने सारे अमलों की धज्जियां बिखेर दीं। बावरची, भिश्ती, धोबी और चपरासियों ने अपनी बीवियों की मरम्मत की। यहां तक कि बहू के मामले पर मेरी सभ्य भाभियों और शरीफ भाईयों में भी खटपट हो गयी और भाभियों के मैके तार जाने लगे। गरज बहू हरे-भरे घर के लिए सुई का कांटा बन गयी।

लेकिन दो-चार दिन बाद बूढ़ी मेहतरानी के देवर का लड़का रतीराम अपनी ताई से मिलने आया और फिर वहीं रह पड़ा। दो-चार कोठियों का काम बढ़ गया था सो भी उसने संभाल लिया। अपने गांव में आवारा ही तो घूमता था। उसकी बहू अभी नाबालिग थी इसलिए गौना नहीं हुआ था।

रतीराम के आते ही मौसम लोट-पोट कर बिल्कुल ही बदल गया। जैसे घनघोर घटाएं हवा के झोंकों के साथ तितर-बितर हो गयीं। बहू के कहकहे खामोश हो गये। कांसे के कड़े गूंगे हो गये। जैसे गुब्बारे से हवा निकल जाये तो वह चुपचाप झूलने लगता है ऐसे बहू का घूंघट झूलते-झूलते नीचे की तरफ बढ़ने लगा। अब वह बे-नत्थे बैल के बदले निहायत शर्मीली बहू बन गयी। शागिर्द-पेशे की सभी महिलाओं ने इत्मीनान की सांस ली। स्टाफ के मर्दुए उसे छेड़ते भी तो वह छुई-मुई की तरह लजा जाती और ज्यादा आगे दिखाते तो वह घूंघट में से भीगी आंख को तिरछा करके रतीराम की तरफ देखती जो फौरन बाजू खुजलाता सामने आकर डट जाता। बुढ़िया शांत भाव से देहलीज पर बैठी अधखुली आंखों से यह सुहाना नाटक देखती और गुडगुड़ी पिया करती। चारों तरफ ठंडी शांति छा गयी जैसे फोड़े का मवाद निकल गया हो।

लेकिन अब बहू के खिलाफ एक नया मोर्चा बन गया और उसमें शागिर्द-पेशे के मर्द शामिल थे। बात-बेबात पर बावरची जो उसे पराठे तल कर दिया करता था थोड़ा न साफ करने पर गालियां देने लगा। धोबी को शिकायत थी कि वह कलफ लगा कर कपड़े रस्सी पर डालता है यह हरामजादी धूल उड़ाने आ जाती है। चपरासी मर्दाने में दस-दस बार झाड़ू दिलवाते फिर भी वह गदगी का रोना रोते ही रहते। भिश्ती जो उसके हाथ धुलाने के लिए मशक लिये खड़ा रहता अब घंटों आंगन में छिड़काव के लिए कहती मगर टालता रहता ताकि वह सूखी जमीन पर झाड़ू दे तो चपरासी गर्द उड़ाने का जुर्म लगा कर उसे गालियां दे सकें।

मगर वह सिर झुकाये सब की डाट-फटकार एक कान से सुनती दूसरे कान से उड़ा देती। न जाने मास से क्या जाकर कह देती कि वह काय-काय करके सब का भेजा चाटने लगती। अब उसकी नजर में वहू बिलकुल शुद्ध और नेक हो चुकी थी।

फिर एक दिन दाढ़ी वाले दारोगाजी जो तमाम नौकरों के सरदार थे और अब्बा के खास सलाहकार समझे जाते थे, अब्बा के हुजूर में हाथ जोड़े हुए हाजिर हुए और उस भयानक बदमाशी और गदगी का रोना रोने लगे जो वहू और रतीराम के नाजायज़ संबंधों से सारे शागिर्द-पेशे को गदा कर रहा था। अब्बा ने मामला सेशन सुपुर्द कर दिया यानी अम्मा को पकड़ा दिया। महिलाओं की सभा फिर से छिड़ी और बुढ़िया को बुलाकर उसके लत्ते लिये गये।

"अरी निगोड़ी तुझे पता है तेरी छिनाल वहू क्या गुल खिला रही है।"

मेहतरानी ने ऐसे चुधरा कर देखा जैसे कुछ नहीं समझती गरीब कि किसका जिक्र हो रहा है। और जब उसे साफ-साफ बता दिया गया कि आखों देखे गवाहों का कहना है कि वहू और रतीराम के संबध अशोभनीय हद तक खराब हो चुके हैं, दोनो बहुत ही भद्दे हालतो मे पकड़े गये हैं तो बुढ़िया बजाय इसके कि उसकी भलाई चाहने वालो का शुक्रिया अदा करे। उल्टे बिगड खड़ी हुई। बड़ा वावेला मचाने लगी कि रामौतरवा होता तो उन लोगों की खबर लेता जो उसकी मासूम वहू पर तोहमत लगाते हैं। वहू निगोडी तो अब चुपचाप रामौतरवा की याद मे आसू बहाया करती है, काम-काज भी जान तोड कर करती है। किसी को शिकायत नही होगी। ठठोल भी नही करती। लोग उसके नाहक दुश्मन हो गये हैं। बुढिया रोने लगी। बहुत समझाया मगर वह मातम करने लगी जैसे कि सारी दुनिया उसकी जान को लागू हो गयी है। आखिर बुढ़िया और उसकी मासूम वहू ने लोगों का क्या बिगाड़ा है। वह तो न किसी के लेने मे न देने मे। वह तो सब का भेद जानती है। आज तक उसने किसी का भाडा नही फोडा। उसे क्या जरूरत जो किसी के फटे मे पैर अड़ाती फिरे। कोठियों के पिछवाडे क्या नही होता? मेहतरानी से किसी का मैला नही छिपता। इन बूढे हाथो ने बड़े लोगो के गुनाह दफन किये है। यह दो हाथ चाहे तो रानियों के तख्त उलट दें। पर नही। उसे किसी से कोई दुश्मनी नही। अगर उसके गले पर छुरी

देने के बुढ़िया की मारे खुशी के बाछें खिल गयी। रामौतार के जाने के दो साल बाद पोता होने पर वह बिल्कुल चकित नहीं थी। घर-घर फटे-पुराने कपड़े और बधाई समेटती फिरी। उनका भला चाहने वालों ने उसे हिसाब लगा कर बहुत समझाया कि यह लौंडा रामौतार का हो ही नहीं सकता लेकिन बुढ़िया ने सब कुछ समझकर भी ना कर दिया। उसका कहना था कि आसाढ़ में रामौतार लाम पर गया जब बुढ़िया पीली कोठी के नये ढग के अंग्रेजी संडास में गिर पड़ी थी, अब चैत लग रहा है और जेठ के महीने में बुढ़िया को लू लगी थी मगर बाल-बाल बच गयी थी। जभी उसके घुटनों में दर्द बढ़ गया—"बैदजी पूरे हरामी हैं। दवा में खड़िया मिला कर देते हैं।" इसके बाद वह असल सवाल से हट कर फूहड़ों और बेवकूफों की तरह उलटा-सीधा बकने लगती। किसी के दिमाग में इतना बूता था कि वह बात उस काईंया बुढ़िया को समझाता जिसे न समझने का वह फैसला कर चुकी थी।

लौंडा पैदा हुआ तो उसने रामौतार को चिट्ठी लिखवायी। "'रामावतार को बाद चुम्मा प्यार के मालूम हो कि यहां सब कुशल है और तुम्हारी कुशलता भगवान से नेक चाहते हैं और तुम्हारे घर में पूत पैदा हुआ है सो तुम इस खत को तार समझो और जल्दी से आ जाओ।'

लोग समझते थे कि रामौतार कुछ नाराज होगा। मगर सब की उम्मीदों पर ओस पड़ गयी जब रामौतार का खुशी से भरा हुआ खत आया कि वह लौंडे के लिए मोजे और बनियानें ला रहा है। जंग खतम हो गयी है और अब बस वह आने ही वाला था। बुढ़िया पोते को घुटने पर लिटाये खाट पर बैठी राज किया करती। भला इससे खूबसूरत बुढ़ापा क्या होगा कि सारी कोठियों का काम तुरत-फुरत हो रहा हो। महाजन का सूद वक्त पर बाकायदा चुक रहा हो और घुटने पर पोता सो रहा हो।

खैर लोगों ने सोचा, रामौतार आयेगा, असलियत मालूम होगी, तब देख लिया जायेगा। और अब रामौतार जंग जीत कर आ रहा था। आखिर को तो सिपाही है। क्यों न खून खौलेगा। लोगों के दिल फड़क रहे थे। शागिर्द-पेशे का वातावरण जो बहू की तंग नजर हो जाने के कारण ठंडा पड़ गया था, दो-चार खून होने और नाकें कटने की आस में जाग उठा।

लौंडा साल भर का होगा जब रामौतार लौटा। शागिर्द-पेशे में सनसनी फैल गयी। बावर्ची ने हांडी में ढेर-सा पानी झोंक दिया ताकि इत्मीनान से कहानी का मजा उठाये। धोबी ने कलफ का पतीला उतार कर मुंडेर पर रख दिया और भिश्ती ने डोल कुएं के पास पटक दिया।

रामौतार को देखते ही बुधिया उसकी कमर पकड़ कर चिपटने लगी। मगर दूसरे ही क्षण सीने काढ़े लौंडे को रामौतार की गोद में देकर ऐसे हंसने लगी जैसे कभी रोई ही न हो।

रामौतार लौंडे को देख कर ऐसा शरमाने लगा जैसे वही उसका बाप हो। झटपट उसने सन्दूक खोल कर सामान निकालना शुरू किया। लोग समझे छुरी या चाकू निकाल रहा है मगर जब उसने उसमें से लाल बनियानें और पीले मोजे निकाले तो सारे नौकरों की मर्दानगी पर जैसे करारी चोट पड़ी।

"धत तेरी के! साला सिपाही बनता है... हिजड़ा जमाने भर का..."

और वह सिमटी-सिमटाई जैसे नयी-नवेली दुल्हन। कांसे की थाली में पानी भर कर रामौतार के बदबूदार फौजी बूट उतारे और चरण धो कर पीये।

लोगों ने रामौतार को समझाया। फबतियां कसीं। उसे गाऊदी कहा लेकिन वह गाऊदी की तरह खीसे काढ़े हंसता रहा जैसे उसकी समझ में न आ रहा हो। रतीराम का गौना होने वाला था सो वह चला गया।

रामौतार की इस हरकत पर तआज्जुब से ज्यादा लोगों को गुस्सा आया। हमारे अब्बा जो आमतौर पर नौकरों के बारे में दिलचस्पी नहीं लिया करते थे वह भी काफी भुंझला गये। अपने सारे कानून के ज्ञान को दाव लगा कर रामौतार को कायल करने पर तुल गये।

"क्यों बे तू तीन साल बाद लौटा है?"

"मालूम नहीं हुजूर कुछ कम-ज्यादा इत्ता ही रहा होगा..."

"और तेरा लौंडा साल भर का है?"

"इत्ता ही लगे है सरकार पर बड़ा बदमास है ससुर..."

रामौतार शरमा गया।

"अबे तो हिसाब लगा ले..."

"हिसाब? क्या लगाऊं सरकार?" रामौतार ने मरघुली आवाज में कहा।

"उल्लू के पट्ठे यह कैसे हुआ ?"

"अब जे मैं क्या जानूं सरकार। भगवान की देन है।"

"भगवान की देन ? तेरा सिर · यह लौंडा तेरा नहीं हो सकता · "

अब्बा ने उसे चारों ओर से घेर कर कायल करना चाहा कि लौंडा हरामी है तो वह कुछ कायल-सा हो गया। फिर मरी हुई आवाज़ में बेवकूफों की तरह बोला—

"तो मैं का करूं सरकार हरामजादी को मैंने बड़ी मार दी " गुस्से से वह बिफर कर बोला।

"अबे निरा तू उल्लू का पट्ठा है · निकाल बाहर क्यों नहीं करता कमबख्त को "

"नहीं सरकार कहीं ऐसा होवे सके है ?" रामौतार घिघियाने लगा।

"क्यों बे ?"

"हुजूर ढाई-तीन सौ दूसरी सगाई के लिये कहां से लाऊंगा ? और बिरादरी जिमाने में सौ-दो-सौ अलग खर्च हो जायेंगे · "

"क्यों बे तुझे बिरादरी क्यों खिलानी पड़ेगी बहू की बदमाशी का जुर्माना तुझे क्यों भुगतना पड़ेगा ?"

"जे मैं न जानूं सरकार। हमारे में ऐसे होवै है "

"मगर लौंडा तेरा नहीं रामौतार ··उस हरामी रतीराम का है।" अब्बा ने खीझकर समझाया।

"तो क्या हुआ सरकार ··मेरा भाई लगे है रतीराम···कोई गैर नहीं·· अपना ही खून है···"

"निरा उल्लू का पट्ठा है।" अब्बा भिन्ना उठे।

"सरकार लौंडा बड़ा हो जायेगा अपना काम समेटेगा।" रामौतार ने गिड़गिड़ा कर समझाया। "वह दो हाथ लगायेगा सो अपना बुढ़ापा तीर हो जायेगा ··"

रामौतार का सिर लज्जा से झुक गया और न जाने क्यों एकदम रामौतार के साथ-साथ अब्बा का सिर भी झुक गया जैसे उनकी प्रतिभा पर लाखों, करोड़ों हाथ छा गये···ये हाथ हरामी हैं न हलाली। यह तो बस जीते-जागते हाथ हैं जो दुनिया के चेहरे से गंदगी धो रहे हैं। उसके बुढ़ापे का बोझ उठा रहे हैं।

यह नन्हे-मुन्ने मिट्टी में लथड़े हुए स्याह हाथ धरती की मांग में सिंदूर सजा रहे हैं!

बच्छो फूफी

जब पहली बार मैंने उन्हें देखा तो वह रहमान भाई की पहली मंजिल की खिड़की में बैठी लंबी-लंबी गालियाँ दे रही थी और कोसने दे रही थीं। यह खिड़की हमारे आगन में खुलती थी और कानूनी तौर पर उसे बंद रखा जाना था क्योंकि परदे वाली बीबियों का सामना होने का डर था। रहमान भाई रंडियों के जमादार थे। कोई शादी-ब्याह, खतना, बिस्मिल्लाह की रस्म होती रहमान भाई औने-पौने उन रंडियों को बुला देते और गरीब के घर में भी वहीदा जान, मुशतरी बाई और अनवरी कहरवा नाच जाती।

मगर मोहल्ले टोले की लड़कियां बालियां उनकी नजर में अपनी सगी मां, बहनें थी। उनके छोटे भाई बुद्दू और गेदा आये दिन ताक-झांक के सिलसिले में सिर-फुट्टवल किया करते थे। वैसे रहमान भाई मोहल्ले की नजर में कोई अच्छी हैसियत नहीं रखते थे। उन्होंने अपनी बीवी की जिंदगी में ही अपनी साली से जोड़-तोड़ कर लिया था। उस अनाथ साली का सिवा इस बहन के और कोई मरा-जीता न था। बहन के यहां पड़ी थी। उसके बच्चे पालती थी। बस दूध पिलाने की कसर थी। बाकी सारा गू-मूत वही करती थी और फिर किसी नकचढ़ी ने उसे बहन के बच्चे के मुंह में एक दिन छाती देते देख लिया। भांडा फूट गया और पता चला कि बच्चों में आधे बिल्कुल साला की सूरत पर है। घर में रहमान की दुल्हन चाहे बहन की दुर्गत बनाती हो पर पंचों में कभी इकरार नहीं किया। यही कहा करती थी—"जो कुआरी को कहेगा उसके दीदे घुटनों के आगे आयेंगे।" हां वर की तलाश हमेशा सूखा करती थी पर उस कीड़े भरे कबाब को वर कहां जुड़ता। एक आंख में बड़ी कौड़ी-सी फुल्ली थी। पैर भी एक जरा छोटा था। कूल्हा दबाकर चलती थी।

सारे मोहल्ले से एक अजीब तरह का बायकाट हो चुका था। रहमान भाई से काम पड़ता तो लोग धौंस जमा कर कह देते। मोहल्ले में रहने की इजाजत दे रखी थी यही क्या कम कृपा थी। रहमान भाई इसी को अपना सबसे बड़ा सम्मान समझते!

यही वजह थी कि वह हमेशा रहमान भाई की खिड़की में बैठ कर लंबी-चौड़ी गालियां दिया करती थीं क्योंकि बाकी मोहल्ले के लोग अब्बा से दबते थे। मजिस्ट्रेट से कौन बैर मोल ले। उस दिन पहली बार मुझे मालूम हुआ कि हमारी इकलौती सगी फूफी बादशाही खानम हैं और यह नवी-नवी गालियां हमारे खानदान को दी जा रही थीं।

अम्मा का चेहरा फक था और वह अंदर कमरे में सहमी बैठी थीं जैसे बच्छो फूफी की आवाज उन पर बिजली बन कर फूट पड़ेगी। छटे-छमासे इसी तरह बादशाही खानम रहमान भाई की खिड़की में बैठकर चकारती। अब्बा मियां उनसे जरा-सी आड़ लेकर मजे से आराम कुर्सी पर लंबे लेटे अखबार पढ़ते रहते और कभी-कभी मौका देख कर किसी लड़के वाले से कोई ऐसी बात जवाब में कहला देते कि फूफी बादशाही फिर पटाखा हो जातीं और अंगारे बरसाने लगतीं! हम लोग सब खेल-कूद, पढ़ना-लिखना छोड़ कर आंगन में अलग-अलग गुट बना कर खड़े हो जाते। गुटुर-गुटुर अपनी प्यारी फूफी के कोसने सुना करते। जिस खिड़की में वह बैठी होतीं वह उनकी लंबी-चौड़ी डील-डौल से लबालब भरी रहती। उनका रूप-रंग अब्बा मियां से इतना मिलता था जैसे वही मोंछें उतार कर दुपट्टा ओढ़ कर बैठ गये हों—और कोसने और गालियां सुनने के बाद भी हम लोग बड़े इत्मीनान से उन्हें तका करते थे!

साढ़े-पांच फुट का कद, चार अंगुल चौड़ी कलाई, शेर का-सा कल्ला, सफेद बगुला बाल, बड़ा-सा दहाना, बड़े-बड़े दांत, भारी-सी ठोड़ी और आवाज भी क्या कहने, अब्बा मियां से एक सुर नीची ही होगी।

फूफी बादशाही हमेशा सफेद कपड़े पहना करती थीं। जिस दिन फूफा मसूद अली ने मेहतरानी के संग कुलेलें करनी शुरू कीं फूफी ने बट्टे से सारी चूड़ियां छनाछन तोड़ डालीं। रंगा दुपट्टा उतार दिया। उस दिन से वह उन्हें "मरहूम" या मरने वाला कहा करती थीं। मेहतरानी को छूने के बाद उन्होंने वह हाथ फिर अपने जिस्म को न लगाने दिये।

यह घटना खासी जवानी में घटी थी और वह जब से "रंडापा" झेल रही थीं। हमारे फूफा हमारी अम्मां के चाचा भी थे। वैसे तो न जाने क्या घपला था। मेरे अब्बा मेरी अम्मा के चचा लगते थे और शादी से पहले जब वह छोटी-सी

थीं तो मेरे अब्बा को देखकर उनका पेशाब निकल जाता था और जब उन्हें यह मालूम हुआ कि उनकी मगनी उसी भयानक देव से होने वाली है तो उन्होंने अपनी दादी यानी अब्बा की फूफी की पिटारी से अफीम चुरा कर खा ली थी। अफीम कुछ ज्यादा नहीं थी और वह कुछ दिन लोट-पोट कर अच्छी हो गयीं। उन दिनों अब्बा अलीगढ कालेज में पढते थे। उनकी बीमारी की खबर सुन कर इम्तहान छोड कर भागे। बडी मुश्किल से हमारे नाना जो अब्बा के फूफजाद भाई होते थे और उनके दोस्त भी—उन्होंने समझा-बुझा कर वापस इम्तहान देने भेजा था। जितनी देर वह रहे, भूखे-प्यासे टहलने रहे। अधखुली आखों से मेरी अम्मा ने उनका चौडा चकला साया पर्दे के पीछे बेकरारी से तड़पते देखा—

"उमराव भाई। अगर इन्हें कुछ हो गया तो "

देव की आवाज में कपन गूजती रही। नाना मिया खूब हसे।

"नहीं भाई भरोसा रखो·· कुछ न होगा।"

उस दिन मेरी मुन्नी-सी मासूम मा एकदम औरत बन गयी थी। उनके दिल से एकदम देव जाद इसान का डर निकल गया था। तभी तो मेरी फूफी बादशाही कहती थीं मेरी अम्मा जादूगरनी है और उसका तो मेरे भाई से शादी से पहले सबध होकर पेट गिरा था! मेरी अम्मा अपने जवान बच्चों के सामने जब यह गालिया सुनतीं तो ऐसी बिसूर-बिसूर कर रोतीं कि हमें उनकी मार भूल जाती और प्यार आने लगता। मगर यह गालिया सुन कर अब्बा की गभीर आखों में परिया नाचने लगतीं। वह बडे प्यार से नन्हे भाई से कहलवाते—

"क्यों फूफी आज क्या खाया है?"

"तेरी मैय्या का कलेजा।"

उस बेतुके जवाब से फूफी जलकर खाक हो जातीं। अब्बा फिर जवाब दिलवाते—"अरे फूफी तभी मुह मे बवासीर हो गयी है · जुलाब लो जुलाब···"

वह मेरे नौजवान भाई की मचमचाती लाश पर कौवों, चीलों को दावत देने लगतीं। उनकी दुल्हन को जो न जाने बेचारी उस वक्त कहा बैठी अपने सपनों के दुल्हा के प्रेम मे काप रही होगी। रडापे का आशीर्वाद देतीं और मेरी अम्मा कानों मे उगलिया देकर बुदबुदातीं—

"जल तू जलाल तू।
आयी बला को टाल तू।"

फिर अब्बा उकसाते और नन्हे भाई पूछते—

"फूफी बादशाही मेहतरानी फूफी का मिजाज तो अच्छा है।" और हमे डर लगता कि कही फूफी खिड़की में से फाद न पड़ें !

"अरे जा सपोलिए · मेरे मुंह न लग नही तो जूती से मुह मसल दूगी। यह बुड्ढा अदर बैठा क्या लौंडो को सिखा रहा है। मुगल बच्चा है तो सामने आकर बातें करे···"

"रहमान भाई, ऐ रहमान भाई, इस बौरानी कुतिया को सखिया क्यों नही खिलाते ?"

अब्बा के सिखाने पर नन्हे भाई डरते हुए बोलते। वैसे उन्हे डरने की तो कोई जरूरत थी नही क्योंकि सब जानते थे कि आवाज उनकी है मगर शब्द अब्बा मिया के है इसलिये गुनाह नन्हे भाई की जान पर नही ! मगर फिर भी बिल्कुल अब्बा की शक्ल की फूफी की शान मे कुछ कहते हुए उन्हें पसीने आ जाते थे।

कितना जमीन और आसमान का फर्क था हमारे ददिहाल और ननिहाल वालों में। ननिहाल हकीमो की गली मे थी और ददिहाल गाड़ीवानो के कटरे में। ननिहाल वाले सलीम चिश्ती के खानदान से थे जिन्हें मुगल बादशाहों ने मुरशिद की उपाधि देकर मुक्ति का रास्ता पहचाना। हिंदुस्तान मे रसे-बसे एक जमाना बीत चुका था। रंगतें संवला चुकी थी। नाक-नक्शे नर्म पड चुके थे। मिजाज ठंडे हो गये थे।

ददिहाल वाले बाहर से सबसे आखिरी खेप में आने वालों मे से थे। दिमागी तौर पर वह अभी तक घोड़ो पर सवार मंजिलें मार रहे थे। खून मे लावा दहक रहा था। खड़े-खड़े तलवार जैसे रूप-रंग। लाल फिरंगियों जैसे मुह। गुरिल्लों जैसी कद की ऊंचाई। शेरों जैसी गरजदार आवाजें। शहतीर जैसे हाथ-पांव !

और ननिहाल वाले नाजुक-नाजुक हाथ-पैरों वाले। शायराना तबीयत के धीमी आवाज मे बोलने के आदी। ज्यादातर लोग हकीम, आलिम और मौलवी थे। तभी मोहल्ले का नाम हकीमों की गली पड़ गया था। कुछ कारओबार, व्यापार में भाग लेने लग गये थे। शाल, कपड़े, सोने-चादी के व्यापारी और अत्तार आदि बन चुके थे। हालांकि हमारे ददिहाल वाले ऐसे लोगों को कुंजड़े

कसाई ही कहा करते थे क्योंकि वह खुद ज्यादातर फौज में थे। धींग मार-धाड़ का शौक अभी तक कम नहीं हुआ था। कुश्ती, पहलवानी, तैराकी में नाम पैदा करना, पंजा लड़ाना, तलवार और पट्टे के हाथ दिखाना और चौगर पचीसी को जो मेरे ननिहाल के अत्यंत प्रिय खेल थे, हिजड़ों का खेल समझना।

कहते हैं जब ज्वालामुखी पहाड़ फूटता है तो लावा घाटी की गोद में उतर आता है। शायद यही वजह थी कि मेरे ददिहाल वाले ननिहाल वालों की ओर अपने-आप खिंच कर आ गये! यह मेल कब और किसने शुरू किया सब शजरे (वंश वृक्ष) में लिखा है मगर मुझे ठीक से याद नहीं। मेरे दादा हिंदुस्तान में पैदा नहीं हुए थे। दादियां भी उसी वंश की थीं मगर एक छोटी-सी बहन बिन-ब्याही थी। न जाने क्योंकर वह सैय्यदों में ब्याह दी गयी। शायद मेरी अम्मा के दादा ने मेरे दादा पर कोई जादू कर दिया था कि उन्होंने अपनी बहन बादशाही फूफी के कथनानुसार कुजड़ों कसाईयों में दे दी। अपने मरहूम पति को गालियां देते वक्त वह हमेशा अपने बाप को कब्र में चैन न मिलने का श्राप दिया करतीं कि जिन्होंने चुगताई खानदान की मिट्टी पलीद कर दी।

मेरी फूफी के तीन भाई थे। मेरे ताऊ, मेरे अब्बा मियां और मेरे चचा! बड़े दो उनमें बड़े। चचा सब से छोटे थे। तीन भाईयों की एक लाडली बहन। हमेशा की नखरीली और तुनुक मिजाज थी! वह हमेशा तीनों पर रोब जमातीं और लाड करवातीं। बिल्कुल लौंडों की तरह पलीं। घोड़े की सवारी, तीर चलाने और तलवार चलाने में अभ्यस्त थीं। वैसे तो फैल-फाल कर ढेर मालूम होती थीं मगर पहलवानों की तरह सीना तान कर चलती थीं। सीना था भी चार-चार औरतों जितना!

अब्बा मजाक में अम्मा को छेड़ा करते।

"बेगम बादशाही से कुश्ती लड़ोगी?"

"उई तौबा मेरी।" आलिम फाजिल (विद्वान) बाप की बेटी मेरी अम्मा कान पर हाथ धर कर कहतीं। मगर वह नन्हे भाई से तुरत फूफी को चेलेंज भिजवाते!

"फूफी! हमारी अम्मा से कुश्ती लड़ोगी?"

"हां-हां बुला अपनी अम्मा को, आ जाये खम ठोक कर। अरे उल्लू न बना दूं

तो मिर्जा करीम बेग की औलाद नहीं। बाप का नुत्फा[1] हो तो बुला मुल्लाजादी को ..."

और मेरी अम्मां अपने लखनऊ के बड़े घेरे वाले पायजामे को समेट कर कोने में दुबक जाती।

"फूफी बादशाही। दादा मियां गवार थे ना? बड़े नाना-जान उन्हें आमद-नामा पढ़ाया करते थे ..."

हमारे परनाना के दादा-जान ने कभी दादा मियां को कुछ पढ़ा दिया होगा। अब्बा मियां छेड़ने को बात तोड़-मरोड़ कर कहलवाते।

"अरे वह इस्तंजे[2] का ढेला मेरे बाबा को क्या पढ़ाता? मुजाविर कहीं का। हमारे टुकड़ों पर पलता था।" यह सलीम चिश्ती और अकबर बादशाह के रिश्ते में हिसाब लगाया जाता। हम लोग यानी चुगताई अकबर बादशाह के खानदान से थे जिन्होंने मेरे ननिहाल के सलीम चिश्ती को पीर-ओ-मुरशिद (गुरु) कहा था!

मगर फूफी कहतीं—"खाक पीर-ओ-मुरशिद की दुम। मुजाविर[3] थे मुजाविर।"

तीन भाई थे मगर तीनों से लड़ाई हो चुकी थी और वह गुस्सा होतीं तो तीनों की धज्जियां उड़ा देतीं। बड़े भाई बड़े संत प्रकृति के थे। उन्हें घृणा से वह फकीर भिखमंगा कहतीं। हमारे अब्बा सरकारी नौकरी में थे, उन्हें गद्दार, अंग्रेजों का गुलाम कहतीं। क्योंकि मुगलशाही अंग्रेजों ने खतम कर डाली नहीं तो आज मरहूम पतली दाल के खाने वाले जौलाहे अर्थात मेरे फूफा के बजाये वह लाल किले में जेबुलनिसा की तरह गुलाब जल में नहा कर किसी देश के शहनशाह की मलिका बनी बैठी होतीं! तीसरे यानी मेरे चचा बड़े दस नंबर के बदमाशों में थे और सिपाही डरता-डरता मजिस्ट्रेट भाई के घर उनकी हाज़िरी लेने आया

---

[1] वीर्य, रक्त, खून।

[2] उस मिट्टी के ढेले को कहते हैं जिसे पेशाब करने के बाद प्राय. मर्द लोग अंग में लगे पेशाब को सुखाने के लिए इस्तेमाल करते हैं ताकि वह कपड़ों में न लगे। यहां अर्थ है इस्तेमाल करके बेकार कर देना और फिर फेंक देना।

[3] क़ब्र और मज़ारों की रखवाली करने वाले।

करता था। उन्होंने कई कत्ल किये थे। डाके डाले थे। शराब और रंडीबाजी में अपनी मिसाल आप थे। वह उन्हें डाकू कहा करती थी जो उनके कैरियर को देखते हुए बड़ा फुसफुसा शब्द था।

लेकिन जब वह अपने मरहूम पति से नाराज होती तो कहा करती—"मुंह-जले, निगोड़ी नाहटी नहीं हूं। तीन भाईयों की इकलौती बहन हूं। उनको खबर हो गयी तो न तू दुनिया का रहेगा न दीन का। और कुछ नहीं अगर छोटा सुन ले तो पल भर में अतड़िया निकालकर हाथ में थमा दे! डाकू है डाकू—उसमें बच गया तो मझला मजिस्ट्रेट तुझे जेल में सड़ा देगा। सारी उम्र चक्किया पिसवायेगा और उससे भी बच गया तो बड़ा जो अल्लाह वाला है तेरा परलोक मिट्टी में मिला देगा। देख मुगल बच्ची हूं। तेरी अम्मा की तरह नेमानी नहीं!"

मगर मेरे फूफा अच्छी तरह जानते थे कि तीनों भाई उन्हीं पर रहम खाते हैं—और वह बैठे मुस्कुराते रहते हैं। वही मीठी-मीठी जहरीली मुस्कुराहट जिसके जरिये से मेरे ननिहाल वाले मेरे ददिहाल वालों को बरसों से जला रहे हैं!

हर ईद-बकरीद को मेरे अब्बा मिया बेटों को लेकर ईदगाह से सीधे फूफी अम्मां के यहां कोसने और गालियां सुनने जाया करते थे। वह तुरत पर्दा कर लेती और कोठरी में से मेरी जादूगरनी मां और डाकू मामुओं को कोसने लगती। नौकर को बुला कर सिवैयां भिजवाती मगर यह कहती—"पड़ोसन ने भेजी हैं।"

"इन में जहर तो नहीं मिला हुआ है" अब्बा मिया छेड़ने को कहते और फिर सारे ननिहाल के चीथड़े बिखेरे जाते। सिवैयां खा कर अब्बा ईदी देते जो वह तुरंत जमीन पर फेंक देती कि—"अपने सालों को दो। वही तुम्हारी रोटियों पर पले है।" और अब्बा चुपचाप चले आते और वह जानते थे कि फूफी बादशाही वह रुपये आंखों से लगाकर घंटों रोती रहेंगी। भतीजों को वह आड़ में बुला कर ईदी देती—

"हरामजादे अगर अब्बा-अम्मा को बताया तो बोटियां काट कर कुत्तों को खिला दूंगी।"—अब्बा-अम्मा को मालूम था कि लड़कों को कितनी ईदी मिली। अगर किसी ईद पर किसी वजह से अब्बा मिया न जा पाते तो बुलावे पर बुलावे आते—"नुसरत खानम बेवा हो गयी। चलो अच्छा हुआ। मेरा कलेजा ठंडा हुआ।"

बुरे-बुरे पैगाम शाम तक आते ही रहते और वह खुद रहमान भाई के कोठे पर से गालियां बरसाने आ जाती !

एक दिन ईद की मिवैयां खाते-खाते कुछ गर्मी से जी मतलाने लगा, अब्बा मियां को उल्टी हो गयी।

"लो बादशाही खानम ! कहा-सुना माफ करना। हम तो चले।" अब्बा ने कराह कर आवाज बनायी। फूफी लस्तम-फस्तम पर्दा फेंक छाती कूटती निकल आयी। अब्बा को शरारत से हसते देख उल्टे पांव कोसती लौट गयी !

"तुम आ गयी बादशाही खानम तो मलकुलमौत भी घबरा कर भाग गये नहीं तो हम आज खतम हो जाते।" अब्बा ने कहा !

न पूछिये फूफी ने कितने भारी कोसने दिये। उन्हें खतरे से बाहर देख कर बोलीं—"अल्लाह ने चाहा तो बिजली गिरेगी। नाली में गिर कर दम तोड़ोगे, कोई लाश को कंधा देने वाला न बचेगा !"

और अब्बा चिढ़ाने को उन्हें दो रुपये भिजवा देते।

"भई हमारी खानदानी डोमिनियां गाली दे तो उन्हें बेल[1] तो मिलनी ही चाहिए।"

और फूफी बौखलाहट में कह जाती—

"बेल दे अपनी अम्मा बहनिया को..." फिर अपना मुंह पीटने लगती। खुद ही कहती—"ऐ बादशाही बदी तेरे मुंह में कालिख लगे। अपनी मैयतें[2] आप पीट रही है।"

फूफी को असल में भाई से ही बैर था। बस उनके नाम पर आग लग जाती। वैसे कहीं अब्बा के बिना अम्मां नजर आ जाती तो गले लग कर प्यार करती। प्यार से "नच्छो", "नच्छो" कहतीं—"बच्चे तो अच्छे हैं ?"—और यह बिल्कुल भूल जाती कि ये बच्चे उसी बदजात भाई के हैं जिसे वह सृष्टि की आदि से गालियां देती आ रही हैं और अंत तक कोसती रहेगी। अम्मां उनकी भतीजी भी तो थी। भई किनना घपला था। मेरे ददिहाल और ननिहाल के रिश्ते से मैं अपनी मां की बहन भी लगती थी ! इस तरह मेरे अब्बा मेरे दुल्हा भाई भी होते

1 नेग, इनाम।

2 लाश।

थे। मेरे ददिहाल को मेरे ननिहाल वालों ने क्या-क्या नाम न दिये। गजब तो तब हुआ जब मेरी फूफी की बेटी मसर्रत खानम मेरे जफर मामू को दिल दे बैठी!

हुआ यह कि मेरी अम्मा की दादी यानी अब्बा की फूफी जब आखिरी साँस तोड़ रही थीं तो दोनों तरफ के लोग देखभाल के लिए पहुँचे। मेरे मामू भी अपनी दादी को देखने गये और मसर्रत खानम भी अपनी अम्मा के साथ उनकी फूफी को देखने आयीं।

बादशाही फूफी को तो कुछ डर, भय था नहीं। वह जानती थीं कि मेरे ननिहाल वालों की तरफ से उन्होंने अपनी औलाद के दिल में अथाह घृणा भर दी है और पन्द्रह बरस की मसर्रत खानम की अभी उम्र ही क्या थी। अम्मा के कूल्हे से लग कर सोती थीं। दूध पीती ही तो उन्हें लगती थीं।

फिर जब मेरे मामू ने अपनी कजी शर्बत भरी आँखों से मसर्रत खानम के लचकदार सरापे को देखा तो वह वहीं की वहीं जम कर रह गयीं।

दिन भर बड़े-बूढ़े तीमारदारी करके थक, हार कर सो जाते तो यह आफतारी बच्चे सिरहाने बैठे रोगी पर कम एक-दूसरे पर ज्यादा निगाह रखते! जब मसर्रत जहाँ बर्फ से तर कपड़ा बड़ी बी के माथे पर बदलने को हाथ बढ़ाती तो जफर मामू का हाथ वहाँ पहले से मौजूद होता।

दूसरे दिन बड़ी बी ने पट से आँखें खोल दीं। सरहाने तकिये के सहारे उठ बैठीं। उठते ही खानदान के जिम्मेदार लोगों को बुलवाया। जब सब जमा हो गये तो हुक्म हुआ—"काजी को बुलाओ।"

लोग परेशान कि बुढ़िया काजी को क्यों बुला रही हैं? क्या आखिरी वक्त सोहाग रचायेंगी? किसको दम मारने की हिम्मत थी।

"दोनों का निकाह पढ़ाओ।" लोग चकरा गये कि दोनों का! मगर इधर मसर्रत जहाँ पट से बेहोश होकर गिरीं उधर जफर मामू बौखला कर बाहर चले। चोर पकड़ गये। निकाह हो गया। बादशाही फूफी सन्नाटे में आ गयीं।

यद्यपि कोई खतरनाक बात न हुई थी। दोनों ने सिर्फ हाथ पकड़े थे मगर बड़ी बी के लिए बस यही हद थी।

और फिर जो बादशाही फूफी को दौरा पड़ा है तो उन्होंने घोड़े और तलवार के बगैर ही लाशों पर लाशें गिरा दीं। खड़े-खड़े बेटी-दामाद को निकाल दिया।

विदा होकर अब्बा मियां दुल्हा-दुल्हन को अपने घर ले आये। अम्मा तो चांद-सी भाभी देखकर निहाल हो गयीं। बड़ी धूम-धाम से वलीमा[1] किया।

बादशाही फूफी ने उस दिन से फूफा का मुंह नहीं देखा। भाई से पर्दा कर लिया। मियां से पहले ही से नहीं पटती थी। दुनियां से मुंह फेर लिया और एक जहर था जो उनके दिल-ओ-दिमाग पर चढ़ता ही गया। जिंदगी सांप के फन की तरह डसने लगी।

"बुढ़िया ने पोते के लिए, मेरी बच्ची को फंसाने के लिए मकर (जाल) गांठा था।"

वह बराबर यही कहे जातीं क्योंकि वाकई वह इसके बाद बीस साल तक और जीती रहीं। कौन जाने ठीक ही कहती हो फूफी!

मरते दम तक बहन-भाई में मेल न हुआ। जब अब्बा मियां पर फालिज का चौथा हमला हुआ और बिल्कुल ही वक्त आ गया तो उन्होंने फूफी बादशाही को कहला भेजा—"बादशाही खानम हमारा आखिरी वक्त है दिल का अरमान पूरा करना हो तो आ जाओ..."

न जाने उस संदेश में क्या तीर छिपे थे। भैय्या ने फेंके बहिनिया के दिल में तराजू हो गये। बिलबिलाती छाती कूटती सफेद पहाड़ की तरह भूचाल लाती हुई बादशाह खानम उस ड्योढ़ी में उतरीं जहां अब तक उन्होंने कदम नहीं रखा था।

"लो बादशाही तुम्हारी दुआ पूरी हो रही है।' अब्बा मियां तकलीफ में भी मुस्कुरा रहे थे। उनकी आंखें अब भी जवान थीं।

फूफी बादशाही बावजूद सफेद बालों के वही मुन्नी-सी "बच्छो" लग रही थीं जो बचपन में भाईयों से मचल-मचल कर बात मनवा लिया करती थीं। उनकी शेर जैसी खुर्राट आंखें एक मेमने की मासूम आंखों की तरह सहमी हुई थीं। बड़े-बड़े आंसू उनके संगमरमर की चट्टान जैसे गालों पर बह रहे थे।

"हमें कोसो बच्छो बी" अब्बा ने प्यार से कहा। मेरी अम्मा ने झिझकते हुए बादशाही खानम से कोसने की भीख मांगी।

---

[1] सुहाग रात मनाने के बाद दुल्हा की तरफ से दी जाने वाली दावत।

"या अल्लाह… या अल्लाह"—उन्होंने गरजना चाहा मगर कांप गयीं। "या… या… या… अल्लाह… मेरी उम्र मेरे भैय्या को दे दे… या मौला… अपने रसूल का सदका…" और वह उस बच्चे की तरह झुंझला कर रो पड़ीं जिसे सबक न याद हो।

सब के मुंह फक हो गये। अब्बा के पैरों का दम निकल गया। या खुदा आज फूफी के मुंह से भाई के लिए एक कोसना न निकला!

सिर्फ अब्बा मियां मुस्कुरा रहे थे जैसे उनके कोसने सुन कर मुस्कुरा दिया करते थे।

सच है बहन के कोसने भाई को नहीं लगते। वह मां के दूध में डूबे हुए होते हैं।

आदान-प्रदान

प्रकाशित पुस्तकें

	रु.
1. आग का दरिया : कुरअतुलअैन हैदर	5 00
2. कथा पंजाब : (स.) हरभजन सिंह	5 00
3. जीवन : एक नाटक : पन्नालाल पटेल	5 00
4. ताश के महल : एम. रंगानायकम्मा	5 00
5 कथा भारती : तमिल कहानियां : (स.) सी.पा. सोमासुंदरम	4 50
6. कथा भारती : हिन्दी कहानियां : नामवर सिंह	4 50
7. पुराना लखनऊ : ए.एच. शरर	5.75
8. सफेद खून : नानक सिंह	4.25
9. ब्राह्मण कन्या : एस. वी. केतकर	4 00
10. पात्तुमा की बकरी और बाल्यकाल सखी : वी एम. बशीर	3 00
11. बनगरवाड़ी : व्यंकटेश माडगूलकर	3 00
12. कवि : ताराशंकर बंद्योपाध्याय	4.25
13. गंगा चील के पंख : लक्ष्मीनारायण बोरा	3.75
14. चार दीवारों में : एम.टी. वासुदेवन नायर	4.25
15. कथा भारती—मलयालम कहानियां : (सं.) एन.एन. पिल्ले	4 25
16. मृत्यु के बाद : शिवराम कारंत	4.00

"या अल्लाह · या अल्लाह"—उन्होंने गरजना चाहा मगर कांप गयीं। "या · या या ··अल्लाह···मेरी उम्र मेरे भैया को दे दे···या मौला···अपने रसूल का सदका···" और वह उस बच्चे की तरह झुंझला कर रो पड़ीं जिसे सबक न याद हो।

सब के मुंह फक हो गये। अब्बा के पैरों का दम निकल गया। या खुदा आज फूफी के मुंह से भाई के लिए एक कोसना न निकला !

सिर्फ अब्बा मियां मुस्कुरा रहे थे जैसे उनके कोसने सुन कर मुस्कुरा दिया करते थे।

सच है बहन के कोसने भाई को नहीं लगते। वह मां के दूध में डूबे हुए होते हैं।

आदान-प्रदान

प्रकाशित पुस्तकें

	रु.
1. आग का दरिया : कुर्रअतुलऐन हैदर	5.00
2. कथा पंजाब : (सं.) हरभजन सिंह	5.00
3. जीवन : एक नाटक : पन्नालाल पटेल	5.00
4. ताश के महल : एम. रंगानायकम्मा	5 00
5. कथा भारती : तमिल कहानियां : (सं.) पी.ना. सोमसुंदरम	4 50
6. कथा भारती : हिन्दी कहानियां : नामवर सिंह	4 50
7. पुराना लखनऊ : ए.एच. शरर	5 75
8. सफ़ेद खून : नानक सिंह	4.25
9. ब्राह्मण कन्या : एस. वी. केतकर	4.00
10. पात्तुमा की बकरी और बाल्यकाल सखी : वी.एम. बशीर	3 00
11. बनगरवाड़ी : व्यंकटेश माडगूलकर	3 00
12. कवि : ताराशंकर बंद्योपाध्याय	4.25
13. गंगा चील के पंख : लक्ष्मीनारायण बोरा	3.75
14. चार दीवारों में : एम.टी. वासुदेवन नायर	4.25
15. कथा भारती—मलयालम कहानियां : (सं.) एन.एन. पिल्ले	4.25
16. मृत्यु के बाद : शिवराम कारंत	4 00

भारत—देश और लोग

प्रकाशित पुस्तकें

			रु.
1.	फूलों वाले पेड़—एम एस. रधावा	सामान्य प्रति	6.50
		सजिल्द प्रति	9.50
2.	असमिया साहित्य—हेम बरुआ	सामान्य प्रति	5.00
		सजिल्द प्रति	7.50
3	कुछ परिचित पेड़—एच सतापाऊ	सामान्य प्रति	4 00
		सजिल्द प्रति	7 50
4.	भारत के खनिज पदार्थ—श्रीमती मेहर डी.एन. वाडिया		
		सामान्य प्रति	4 00
		सजिल्द प्रति	6 00
5.	वन और वानिकी—के पी. सागरीय		4 50
6.	बागीचे के फूल—विष्णु स्वरूप		6 00
7.	औषधीय पौधे—सुधांशु कुमार जैन		5 50
8	जनसंख्या—एस एन. अग्रवाल		3 75
9.	धरती और मिट्टी—एस.पी. रायचौधरी		4 50
10	भारत का आर्थिक भूगोल—वी एस. गणनाथन्		4 50
11.	पालतू पशु—हरवंस सिंह		4 25
12.	सब्जियां—विश्वजीत चौधरी		5 50
13.	निकोबार द्वीप—कोशल कुमार माथुर		4 50
14	राजस्थान का भूगोल—विनोदचन्द्र मिश्र		5 50
15.	हमारे परिचित पक्षी—सालिम अली और लईक फतेह अली		9 00

	रु.
16. भारत के सर्प—पी.जे. देवरस	4.75
17. राजस्थान—धर्मपाल	4 50
18. असम—एस. बरकटकी	5.25
19. पेड़-पौधों की बीमारियां—आर एस. माथुर	4.75
20. वर्षा की हवाएं—पी.के. दास	4.25
21. अंदमान द्वीपसमूह—एस.सी. चतुर्वेदी	5.00

राष्ट्रीय जीवन-चरित माला

प्रकाशित पुस्तकें

1. गुरु गोबिंद सिंह—गोपालसिंह	2.00
2 अहिल्याबाई—हीरालाल शर्मा	1.75
3. महाराणा प्रताप—राजेंद्र शंकर भट्ट	1.75
4. कबीर—पारसनाथ तिवारी	2 00
5. पंडित विष्णु दिगंबर—वि.रा. आठवले	1.25
6. पंडित भातखंडे—श्रीकृष्ण नारायण रतंजनकर	1.25
7. त्यागराज—सांबमूर्ति	1.75
8. रानी लक्ष्मीबाई—वृन्दावनलाल वर्मा	1.75
9. रहीम—समर बहादुर सिंह	1.75
10. समुद्रगुप्त—लल्लनजी गोपाल	1.25
11. चंद्रगुप्त मौर्य—लल्लनजी गोपाल	1 50
12. गुरू नानक—गोपालसिंह	2.00
13. काजी नजरुल इस्लाम—बसुधा चक्रवर्ती	1 50

	रु.
14. सुब्रह्मण्य भारती—प्रेमा नंदकुमार	2 25
15 हर्ष—वी डी. गंगल	1.50
16 शंकराचार्य—टी एम पी महादेवन	1 75
17. हरिनारायण आप्टे—महेश्वर अ करंदीकर	1 75
18 मिर्ज़ा ग़ालिब—मलिक राम	1 75
19. सूरदास—ब्रजेश्वर वर्मा	1.75
20 रणजीतसिंह—डी आर सूद	2 00
21 स्वामी दयानंद—वी के. सिंह	2 50
22 रामानुजाचार्य—आर पार्थसारथी	1 50
23 नाना फड़नवीस—वाई.एन. देवधर	1 75
24 शंकरदेव—एम नियोग	2.00
25 अमीर खुसरो—एम.जी. समनानी	1 75
26. ईश्वरचंद्र विद्यासागर—एस.के बोस	2 00
27. तुलसीदास—देवेंद्र सिंह	2 00
28 स्वामी रामतीर्थ—डी आर. सूद	2 25
29. मोतीलाल घोष—एस एल. घोष	2.75
30. जगदीशचंद्र बोस—एस.एन. बसु	2.00
31. सवाई जयसिंह—राजेन्द्र शंकर भट्ट	3.50